SAMKALIN HINDI KAVITA MEIN PARYAVARAN CHINTAN

A Thesis submitted to the University of Hyderabad
in partial fulfillment of the requirement for the award of

Doctor of Philosophy
in
Hindi

Submitted by
Om Prakash

DEPARTMENT OF HINDI
SCHOOL OF HUMANITIES
UNIVERSITY OF HYDERABAD
HYDERABAD – 500046
TELANGANA, INDIA

January, 2017

CERTIFICATE

This is to certify that the thesis entitled **"SAMKALIN HINDI KAVITA MEIN PARYAVARAN CHINTAN"** (समकालीन हिन्दी कविता में पर्यावरण चिंतन) submitted by Om Prakash Bearing Reg. No. 09HHPH17 in partial fulfillment of the requirements for the award of Doctor of Philosophy in Hindi is a bonafide work carried out by him under my supervision and guidance which is a plagiarism free thesis.

As far as I know the thesis has not been submitted previously in part or full to this or any other University or Institution for the award of any degree or diploma.

Head of the Department   Signature of the Supervisor

Dean of the School of Humanities

DECLARATION

I Om Prakash, hereby declare that this thesis entitled **"SAMKALIN HINDI KAVITA MEIN PARYAVARAN CHINTAN"** (समकालीन हिन्दी कविता में पर्यावरण चिंतन) submitted by me under the guidance and supervision of **Rtd. Prof. Shashi Mudiraj** is a bonafide research work. Which is also free from plagiarism. I also declare that it has not been submitted previously in any University or Institution for the award of degree or diploma. I hereby agree that my thesis can be deposited in Shodhganga/INFLIBNET

Date :

Name : **Om Prakash**

(Signature of the Student)
Regd. No. 09HHPH17

Signature of Supervisor

भूमिका

प्रकृति और मानव का रिश्ता आदिम काल से अटूट रहा है। प्रकृति के विविध उपादानों से मानव जीवन इन्द्रधनुषी बना है। मनुष्य हमेशा प्रकृति सौन्दर्य से अभिभूत होता रहा। इतना ही नहीं, वह साधक और पूजक भी रहा है। उसने प्रकृति के रौद्र एवं भीषण रूपों का प्रायः अन्वेषण किया है। अपनी वैज्ञानिक दृष्टि से मनुष्य ने प्राकृतिक इकाइयों के सन्दर्भ में मानवीय पृष्ठभूमि ढूढने का प्रयास किया है। प्रकृति का प्रखर ऊर्जा स्रोत सूर्य है। इसी कारण मनुष्य अपनी तीक्ष्ण मर्मग्राही बुद्धि सम्पदा का उपयोग कर प्रकृति के साथ एक रूपता स्थापित करने का प्रयास करता है। इन प्रयासों में प्रमुख साहित्य सृजन है। मनुष्य का प्रमुख साहित्य सृजन काव्य है। वेद साहित्य वेदेत्तर साहित्य, हिन्दी भक्ति कालीन, रीतिकालीन और आधुनिक साहित्य में प्रकृति वर्णन पाया जाता है। परन्तु इस वर्णन पद्धति में परिवर्तन भी होता आया है। परिवर्तित परिवेश के साथ मनुष्य की अभिव्यक्ति में बदलाव हुआ। अनेक नवीन भाव, विषय बोध, विचार, साहित्य के केन्द्र में आते गये। प्रकृति से मनुष्य दूर होता गया। हिन्दी साहित्य में प्रकृति बींसवी सदी के मध्य तक प्रमुख रही है। फिर धीरे–धीरे साहित्यकार समकालीन अन्य मुद्दों से जुड़ते गए। सन् 1960 ई0 के बाद की कविता में प्रकृति वर्णन न के बराबर है पर पर्यावरण के प्रति सजगता, पर्यावरण के असंतुलन पर कवियों की चिंता, विविध प्रदूषण आदि के कारण ढूढ़ने के प्रयास में आदि अनेक कवियों ने बेहतरीन कविताएँ लिखी है। कवि वर्तमान काल में इन सभी बातों के प्रति सजग हुए दिखाई देते हैं। आज मानव की स्वार्थ बुद्धि, बढ़ती जनसंख्या, प्रदूषण आदि के कारण निर्माण हुई गतिरोंधों स्थितियों के मूल्य गिरते जा रहे है। इन सभी से केवल वैज्ञानिक, समाज चिंतक अथवा प्रगति राष्ट्र ही चिंतित नही है, बल्कि साहित्यकार भी है। आज विचार सामने आया है कि प्रकृति का मूल रूप ही मानव के लिए हितकर है। न केवल प्रकृति के हर रूप का चित्रण, मानव जीवन में उसकी आवश्यकता महत्वपूर्ण है अपितु साथ

तादात्म्य होना भी। आधुनिक हिन्दी कविता में प्रकृति अंकन हुआ है परन्तु उसकी मानव जीवन के साथ कि अभिन्नता का गहरे रिश्तों का वर्तमान की दृष्टि से विवेचन नहीं हुआ था। पर्यावरण के प्रति प्रारम्भ से ही कवि सजग रहे है परन्तु स्वतंत्र रीति से 'पर्यावरण' को लेकर अभिव्यंजना के प्रयास 'समकालीन हिन्दी कविता' के दौर से आरम्भ हुए है।

जहाँ तक शोध विषय का सवाल है 'समकालीन हिन्दी कविता में पर्यावरण चिंतन' वर्तमान समय समाज और प्रकृति को उसकी समग्रता में प्रकट करती है। विषय की नवीनता, विविधता और प्रासंगिकता के कारण शोध–कार्य और भी रोचक और चुनौतीपूर्ण रहा है। क्योंकि अपने समय के रचनाकार उनके साहित्य तथा पर्यावरण का मूल्यांकन काफी कठिन कार्य है। अपने समय की चेतना और चुनौती को समझने की कोशिश करना, उस आधार पर भविष्य की संकल्पना को सूत्रबद्ध करना, एक अत्यंत प्रासंगिक, रोचक, किन्तु तनाव उत्पन्न करने वाला अनुभव है। पर्यावरण चिंतन समकालीन कवियों की प्रमुख चिंता है। समकालीन कवियों की कविताएँ अपने अन्तर्वस्तु में जीवनगत परिस्थितियों की बिडम्बनाओं तथा प्राकृतिक पर्यावरण समस्याओं से मूठभेड़ करती हुई अपना स्वरूप गढती है।

यूँ तो समकालीन कविता और पर्यावरण के विषय में अनेक विद्वानों ने अपने–अपने ढंग से विचार करने का प्रयास किया है। शोध–कार्य विरले ही उपलब्ध है। मेरे जैसे अल्पज्ञ के लिए समकालीन साहित्य तथा पर्यावरण चिंतन पर अग्रसर होना अपने आप को बौना सिद्ध करना है।

इस प्रकार 'समकालीन हिन्दी कविता में पर्यावरण चिंतन' शोध–प्रबन्ध लिखने का जो अवसर प्राप्त हुआ है वह मेरे लिए अत्यन्त सौभाग्य की बात है। प्रस्तुत शोध–कार्य के संभाव्य परिणामों के विषय में कुछ कहना अत्यन्त जोखिम का काम है। फिर भी आशा है कि शोध–प्रबन्ध कार्य द्वारा समकालीन हिन्दी कवि तथा

पर्यावरण से परिचित होने में सफलता मिलेगी। शोध प्रक्रिया के दौरान यह भी संभव है कि समकालीन हिन्दी कवि तथा पर्यावरण के सम्बन्ध में कुछ अनछुए पहलू भी उद्घाटित हो जाए जिनकी अब तक कोई पूर्व कल्पना न की गई हो।

शोध–लेखन व अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से शोध–कार्य को सात अध्यायों में बाँटा गया हैं।

प्रथम अध्याय 'पर्यावरण : आशय एवं स्वरूप' में पर्यावरण सम्बन्धी सभी सूचनाएँ उपलब्ध है। जिसमें पर्यावरण की परिभाषा, पर्यावरण की संरचना, पर्यावरण के संघटक, पर्यावरण प्रकृति एवं वन्य आचार संहिता, पर्यावरण का संस्कृति और समाज से सम्बन्ध, पर्यावरण प्रदूषण, प्रदूषण के मानवीय तथा प्राकृतिक स्रोत, पर्यावरण प्रदूषण के प्रकार, मुख्य रूप से वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण तथा ध्वनि प्रदूषण की चर्चा, प्रमुख पर्यावरणीय समस्याएँ जिसमें मरूस्थलीकरण, हरित गैस प्रभाव, अम्ल वर्षा, विश्वव्यापी तापन, अल–नीनो, स्मोज, शहरीकरण आदि की ओर संकेत किया गया तथा भारतीय पर्यावरण और विश्व पर्यावरण को बहुत ही अर्थपूर्ण ढंग से अभिव्यक्त किया गया है।

द्वितीय अध्याय 'समकालीन कविता : सीमांकन एवं स्वरूप' में समकालीन कविता क्या है। समकालीनता, समसामयिकता, तात्कालिकता के विषय में बताया गया है साथ ही समकालीन कविता के सीमांकन, समकालीनता का कालपरक और बोधपरक पहचान, समकालीन कविता का स्वरूप, समकालीन कविता की मुख्य प्रवृत्ति पर्यावरण चिंता तथा उसमें आने वाले समकालीन कवियों को भी चि0ित किया गया है। समकालीन कविता के स्वरूप के विषय में दर्शाते हुए उसकी विशेषताएँ तथा प्रवृत्तियों की ओर ध्यानाकर्षित किया गया है। जहाँ तक सवाल समकालीन कविता के स्वरूप का है, तो समकालीन कविता अपने समय के यथार्थ की अभिव्यक्ति है। यह कविता उन विमर्शों को उजागर करती है जो ज्वलंत होते है। इस कविता में मुख्य रूप से जन सामान्य की हित चिंता, व्यवस्था विरोध का उग्र तेवर, राजनीतिक अन्तर्विरोधों पर व्यंग्य, साम्प्रदायिकता का विरोध, आतंकवाद,

पर्यावरण चिंता, आदिवासी जीवन की पीड़ा, रंगभेद और औपनिवेशिक शोषण का विरोध आदि प्रवृत्तियाँ समकालीन कविता के स्वरूप को दर्शाती है।

तृतीय अध्याय 'पर्यावरण चेतना : संस्कृति और साहित्य' को चार भागों में विभाजित किया गया है। जिसमें भारतीय दर्शन : संस्कृति और पर्यावरण, भारतीय साहित्य और पर्यावरण, पर्यावरण परिरक्षण में नारी की भूमिका तथा पर्यावरण परिरक्षण में आदिवासी की भूमिका है। इन सभी के अन्तर्गत, वेदों में पर्यावरण, संहिताओं में पर्यावरण, धर्मसूत्रों में पर्यावरण, ब्राह्मण ग्रन्थों में पर्यावरण, स्मृतियों में पर्यावरण, पुराणों में पर्यावरण, जैन धर्म में पर्यावरण, भारतीय संस्कृति में पर्यावरण, रामायण में पर्यावरण, महाभारत में पर्यावरण, भारतीय कला में पर्यावरण, अभिलेखों में पर्यावरण, भारतीय साहित्य में पर्यावरण तथा पर्यावरण संरक्षण में नारी की भूमिका आदि की ओर संकेत किया गया है।

चौथा अध्याय 'आधुनिक हिन्दी कविता में पर्यावरण चिंतन की भूमिका' में औद्योगीकरण, औद्योगिक क्रांति, भारत में औद्योगिक क्रांति, औद्योगिक क्रांति का प्रभाव, औद्योगिक विकास का पर्यावरण पर प्रभाव, मनुष्य का मशीनीकरण तथा साहित्य पर विज्ञानवाद का प्रभाव दिखाया गया है। साहित्य पर विज्ञान और औद्योगिक विकास का प्रभाव किस प्रकार पड़ा है यह दिखाने का प्रयास किया है। पर्यावरण असंतुलन का प्रभाव न केवल विज्ञान या अन्य विषय ही अभिव्यक्त करते है बल्कि साहित्य भी इससे अछूता नही है। इसलिए आधुनिक हिन्दी कवियों ने पर्यावरण चिंतन को भी अपना विषय बनाया जो समकालीन कवियों के लिए आधार भूमि का कार्य करती है।

पाँचवा अध्याय 'समकालीन हिन्दी कविता में पर्यावरण चिंतन' में पर्यावरण का सामान्य परिचय, समकालीन कवियों की पर्यावरणीय चिंता, प्राचीन कवियों की अपेक्षा विराट रूप में है। समकालीन कवि प्रकृति में विद्यमान उसके सभी घटकों को उद्‌घाटित किया है। इसमें पर्यावरण विनाश के प्रति चिंता, मनुष्य और पर्यावरण के बीच सहज सम्बन्ध की चिंता तथा पर्यावरण के साथ तादात्म्य, एकात्म्य तथा उसके

संरक्षण और सुरक्षा के प्रति चिंता, इस अध्याय का प्रमुख विषय है। इसलिए पर्यावरण के प्रमुख घटकों को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया गया है जिसमें पृथ्वी, पत्थर, जंगल, पानी, नदियाँ, समुद्र और वृक्ष आदि को उद्‌घाटित किया गया है।

छठा अध्याय 'समकालीन हिन्दी कविता में पर्यावरण संरक्षण की प्रतिबद्धता' में कवि पर्यावरण सौन्दर्य को देखता है, मुग्ध होता है उसके बदले और बिगड़े स्वरूप के लिए आकुल होता है और उसके परिरक्षण के लिए प्रतिबद्धता व्यक्त करता है। इसलिए इस अध्याय को चार उप शीर्षकों में विभाजित किया गया है। जिसमें सौन्दर्य चित्रण और चिंता, परिरक्षण की आदिवासी भूमिका, संरक्षण की स्त्री भूमिका तथा विविध आदि में पर्यावरण संरक्षण सम्बन्धी विचार प्रस्तुत करते हुए उसके बिगड़ते हुए स्वरूप के प्रति चिंता भी व्यक्त की गई है।

सातवा अध्याय 'समकालीन कविता का भाषा–शिल्प : पर्यावरण चिंतन के संदर्भ में' भाषा और काव्य भाषा के सम्बन्ध में विद्वानों का विचार, समकालीन कवियों की भाषा सम्बन्धी अवधारणा, समकालीन कवियों की काव्य–भाषा और शब्द–विधान, बिम्ब–विधान तथा प्रतीक योजना आदि पर संक्षेप में चर्चा की गयी है।

मैं हृदय से आभारी हूँ अपने वरिष्ठ साथियों का जिन्होंने शोध–कार्य लेखन के दौरान ठीक बड़े भाई की तरह मेरी हर संभव मद्‌द की। इसके अतिरिक्त मेरे सहपाठियों ने भी जहाँ तक हो सका मेरी मद्‌द की, इसके लिए उन्हें धन्यवाद।

मैं अपने परिवार के सभी सदस्यों के प्रति हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने मुझे इस स्तर की शिक्षा प्राप्त करने का सौभाग्य प्रदान किया।

v/;k;&,d

पर्यावरण : आशय एवं स्वरूप

1- i;kZoj.k

1-1 ifjp;

1-2 i;kZoj.k dh lajpuk

1-3 i;kZoj.k ds l?kVd

1-4 i;kZoj.k izd`fr ,oa oU; vkpkj lafgrk

1-5 i;kZoj.k lekt vkSj laLd`fr

2- i;kZoj.k iznw"k.k

2-1 i;kZoj.k iznw"k.k ds lzksr

2-1-1 izkd`frd lzksr

2-1-2 ekuoh; lzksr

2-2 i;kZoj.k iznw"k.k ds izdkj

2-2-1 ok;q iznw"k.k

2-2-2 ty iznw"k.k

2-2-3 /ofu iznw"k.k

3- izeq[k i;kZoj.kh; leL;k,a

3-1 e:LFkyhdj.k

3-2 gfjr x`g izHkko

3-3 vEy o"kkZ

3-4 विश्व व्यापी तापन

3-5 vy&uhuks

3-6 LekWx

3-7 'kgjhdj.k

4- Hkkjrh; i;kZoj.k

5- fo'o i;kZoj.k

fu"d"kZ

1- i;kZoj.k

1-1 ifjp;

'Environment' (पर्यावरण) शब्द फ्रेंच शब्द 'environner' से लिया गया है जिसका अर्थ होता है 'घिरा हुआ या घेरना'।

'पर्यावरण' शब्द का शब्दको"ीय अर्थ होता है आस–पास या पास–पड़ोस, मानव, जन्तुओं या पौधों की वृद्धि एवं विकास को प्रभावित करने वाली वाह्य द"ााएँ, कार्य प्रणाली तथा जीवन यापन की द"ााएँ आदि। इस प्रकार किसी स्थान वि"ोष में मनुष्य के आस–पास भौतिक वस्तुओं, जैसे स्थल, जल, मृदा, वायु आदि के आवरण, जिसके द्वारा मनुष्य घिरा होता है, पर्यावरण कहा जा सकता है।

सामान्य रूप में प्रकृति को ही विज्ञान की भाषा में पर्यावरण कहा जाता है। जिसके अन्तर्गत ग्रहीय पृथ्वी के भौतिक घटकों को सम्मिलित किया जा सकता है। ए0 गडिडी ने अपनी पुस्तक 'The Nature of Environment' में पृथ्वी के भौतिक घटकों को ही पर्यावरण का प्रतिनिधि माना है। उन्होंने पर्यावरण को इस प्रकार परिभाषित किया है। उनके अनुसार –

''पर्यावरण वि"व का समग्र दृष्टिकोण है क्योंकि यह किसी समय–सन्दर्भ में बुहस्थानिक तत्त्वीय एवं सामाजिक आर्थिक तंत्रों, जो जैविक एवं अजैविक रूपों के व्यवहार, पद्धति तथा स्थान की गुणवत्ता तथा गुणों के आधार पर एक दूसरे से अलग होते हैं, के साथ कार्य करता है।''[1]

पर्यावरण को सविन्द्र सिंह ने इस प्रकार परिभाषित किया है। उनके अनुसार ''पर्यावरण एक अविभाज्य समष्टि है तथा भौतिक, जैविक एवं सांस्कृतिक तत्वों वाले पारस्परिक क्रिया"ाील तंत्रों से इसकी रचना होती है। ये तंत्र अलग–अलग तथा सामूहिक रूप से विभिन्न रूपों में परस्पर सम्बद्ध होते हैं। भौतिक तत्व (स्थान, स्थलरूप, जलीय भाग, जलवायु, मृदा, शैल तथा खनिज) मानव के निवास्य क्षेत्र की

[1] पर्यावरण भूगोल – सविन्द्र सिंह प्रयाग पुस्तक भवन 20–ए0 यूनिवर्सिटी रोड, इलाहाबाद–211002 प्र0स0 – 2008

परिवर्तन”ाील वि”ोषताओं, उसके सुअवसरों तथा प्रतिबंधक अवस्थितियों को नि”चत करते हैं। जैविक तत्व (पौधे, जन्तु, सूक्ष्म–जीव तथा मानव) जीव मण्डल की रचना करते है। सांस्कृतिक तत्व (आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक) मुख्य रूप से मानव निर्मित होते है तथा सांस्कृतिक पर्यावरण की रचना करते है।''

डब्ल्यू0पी0 कनिधम तथा एम0ए0 कन्निधम के अनुसार – ''(i) पर्यावरण उन परिस्थितियों तथा द”ााओं (भौतिक द”ााओं) को प्रद”िर्ात करता है जो किसी एकांकी जीव या जीव समूह को चारो ओर से आवृत्त करती है तथा उसे प्रभावित करती है अथवा (ii) उन सामाजिक एवं सांस्कृतिक द”ााओं को प्रद”िर्ात करता है जो एकल मानव या मानव समुदाय को प्रभावित करती है। चूँकि मनुष्य प्राकृतिक क्षेत्र से लेकर निर्मित या प्रौद्योगिकीय, सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में रहता है अतः ये सभी पर्यावरण की रचना करते हैं।''[2]

1-2 i;kZoj.k dh lajpuk

पर्यावरण को भौतिक एवं जैविक संकल्पना के रूप में माना गया है। अतः इसमें पृथ्वी के दोनों अर्थात अजीवित तथा जीवित संघटकों को सम्मिलित किया गया है। पर्यावरण की इस आधार भूत संरचना के आधार पर पर्यावरण को दो प्रमुख प्रकारों में विभक्त किया है – (i) अजैविक या भौतिक पर्यावरण, (ii) जैविक पर्यावरण।

भौतिक वि”ोषताओं तथा द”ाा के आधार पर अजैविक या भौतिक पर्यावरण तीन प्रमुख श्रेणियों में विभक्त किया गया है। (i) ठोस द”ाा, (ii) तरल द”ाा तथा (iii) वायु दशा। इस आधार पर भौतिक पर्यावरण के तीन प्रकार होते हैं। स्थलमण्डलीय पर्यावरण, वायुमण्डलीय पर्यावरण तथा जलमण्डलीय पर्यावरण। विभिन्न स्थानिक मापकों पर इन तीन प्रकार के पर्यावरणों को कई स्तरीय लघु इकाइयों में विभाजित किया जा सकता है – पर्वत पर्यावरण, पठार पर्यावरण, मैदान

[2] वही, पृ0 2

पर्यावरण, झील पर्यावरण, सरिता पर्यावरण, हिमनद पर्यावरण, मरूस्थल पर्यावरण, सागरतटीय पर्यावरण तथा सागरीय पर्यावरण आदि।

जैविक पर्यावरण की संरचना पौधों (वनस्पति) तथा मानव सहित जन्तुओं द्वारा होती है। इनमें मनुष्य महत्वपूर्ण कारक होता है। इस आधार पर जैविक पर्यावरण दो प्रकार में विभक्त किया जाता है, पहला वानस्पतिक पर्यावरण, दूसरा जन्तु पर्यावरण। सभी जीवधारी अपने विभिन्न स्तरीय सामाजिक समूह तथा संगठन की रचना हेतु कार्य करते हैं। इससे सामाजिक पर्यावरण का आविर्भाव होता है जिसके अन्तर्गत विभिन्न जीवधारी अपने जीवन निर्वाह, अस्तित्व तथा सम्बर्द्धन के लिए भौतिक पर्यावरण से पदार्थो को प्राप्त करने के लिए कार्य करते हैं। इस तरह जीवधारियों में मुख्य रूप से मानव द्वारा अपने निर्वाह तथा विकास के लिए भौतिक पर्यावरण से पदार्थों से प्राप्त करने की प्रक्रिया द्वारा आर्थिक पर्यावरण का निर्माण होता है। मनुष्य समस्त जीवधारियों में सर्वाधिक बुद्धिमान तथा सभ्य प्राणी है अतः इसका सामाजिक संगठन सर्वाधिक नियमित एवं व्यवस्थित होता है।

भौतिक मानव अन्य जैविक समुदायों में से एक है तथा उसे अन्य जीवधारियों की भाँति ही भौतिक पर्यावरण से मौलिक तत्त्वों की आव”यकता होती है तथा वह पारिस्थिकी में अपने अपf”ाष्ट पदार्थों को निर्मुक्त करता है। सामाजिक मानव अपने अस्तित्व, हक या हितों तथा सामाजिक कल्याण की सुरक्षा हेतु सामाजिक संस्थानों की स्थापना करता है सामाजिक संगठनों की रचना करता है तथा कानून नियमों तथा नीतियों की व्यवस्था करता है। आर्थिक मानव अपनी आर्थिक व्यवस्था को विकसित एवं सुदृढ़ बनाने के लिए अपनी बुद्धि तथा प्रौद्योगिकी द्वारा भौतिक तथा जैविक पर्यावरण के संसाधनों को प्राप्त करता है। तथा उनका उपभोग करता है। मानव के इन तीनों प्रकार के कार्यों को भौतिक, सामाजिक तथा आर्थिक कार्य कहते हैं। मनुष्य का तीसरा कार्य उसे पर्यावरणीय अथवा भूआकृतिक प्रक्रम के रूप में स्थापित करता है।

बढ़ती हुई आबादी और सिमटते हुए वन से बिगड़ी पारिस्थितिकी का परिणाम है कि हमारा पर्यावरण असुरक्षा के कगार पर पहुँच गया है, ओजोन परत में छेद हो जाना पर्यावरण की सुरक्षा की दि"ाा में एक विकराल समस्या है हम अपनी धरती पर ही प्रदूषण की इतनी अधिक मात्रा और किस्में फैला चुके हैं कि उससे निपट पाना आसान नहीं है। ऊपर से ओजोन परत में छेद होने से अंतरीक्षीय किरणों के कारण धरती पर प्रदूषण का कुप्रभाव धरती को झेलने के लिए मजबूर होना पड़ रहा है।

हमारे पर्यावरण को प्रभावित करने वाली अनेक इकाइयाँ है। लेकिन पर्यावरण जितना वनों से प्रभावित होता है उतना किसी अन्य से नहीं। पर्यावरण सूक्ष्म ग्राही होता है। यह न केवल अंतरिक्ष यानों में फैले और आणविक विस्फोटों से हुए प्रदूषण से प्रभावित होता है बल्कि घर से निकले धुँए और घर के भीतर और बाहर फैलाई गयी गन्दगी से बुरी तरह प्रभावित होता है।

वन विना"ा के कारण ऊँची धरती और पहाड़ों की मिट्टी वृक्षों के अभाव में बह–बहकर नीचे आती है, उस मिट्टी को अंतिम रूप से विश्राम मिलता है नदी के पेट में मिट्टी भरी होने के कारण नदियाँ थोड़ी बारि"ा देखकर ही 'अधजल गगरी छलकत जाय' के तर्ज पर उफना जाती है जिससे बाढ़ की विभिषिका झेलनी पड़ती है। बारि"ा की थोड़ी कमी होते ही नदियाँ बहने लगती है बाढ़ या बरसात के बाद धरती का अधिकतर भाग चटक–चटक कर पानी के लिए मुँह बा देता है, पानी के अभाव में न आदमी की प्यास बुझ पाती है और न खेत की ही, नालीजन खेती मारी जाती है और लोग भी भूख से तड़प–तड़प कर मरने लगते है।

दरअसल पर्यावरण की मुख्य ईकाई के विना"ा की कहानी सभ्यता के विकास के साथ ही जुड़ी हुई है। 1500 ई0 पू0 घुमक्कड़ कहानी आर्य भारत आये धीरे–धीरे वे गाँव और फिर नगर बसाते गये, परिणाम स्वरूप 600 ई0पू0 तक गंगा घाटी के एक भाग में वनों की पूरी तरह सफाई हो चुकी थी। वनों की अंधाधुंध कटाई से धरती उजड़ने लगती है इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है, राजस्थान और सिंध का

रेगिस्तान। चार हजार वर्ष पूर्व तक वहाँ हरे–भरे वन थे, उन वनों में शेर, हाथी, गैंडा आदि वन्य प्राणियों की बहुलता थी लेकिन वनों की कटाई ने पूरे क्षेत्र को रेगिस्तान बना दिया।

हरा–भरा वन प्रकृति की खु"ाहाली का प्रतीक है, पत्तों की हरियाली, चटकार फूलों की गरमाहट, स्वतंत्र घूमते परिन्दे और चरिन्दे, कही खु"ाी से नाचता मोर तो कही कोयल की मधुर कूँक, हिरण की निरीह कुचाले और शेर की खुँखार दहाड़ के साथ–साथ कलकलाते हुए झरनों और नदियों की छलछलाहट से किसका मन–मयूर नाचते नहीं लगता। मन को हरा–भरा करने वाले इन वनों से वर्षा होती है, भू क्षरण रूकता है तथा धरती की उर्वरता बढ़ती है। प्रदूषण की मार को वन अव"ाोषित करके हमारी धरती के पर्यावरण को बचाने में मद्द करता है।

पहाड़, वन, नदी आदि की तरह वन्य प्राणी भी पर्यावरण की महत्वपूर्ण इकाई है। भले दुनिया से सर्वाधिक वन्य प्राणी अफ्रीका के वनों में पाये जाते हैं लेकिन हमारे दे"ा में दुनियाँ के किसी भी दे"ा से सर्वाधिक प्रकार के वन्य प्राणी पाये जाते है। भारत की तरह पाँच स्तनपायियों, और बारह सौ पक्षियों की जातियाँ किसी भी दे"ा में नहीं पायी जाती, दुनियाँ के अन्य दे"ाों की तरह हमारे दे"ा में भी वन्य प्राणियों की संख्या में भारी कमी आयी है। अनेक प्राणियों का विलोपन हो चुका है, शेर, चिता, भेड़िया, गैंडा, भारतीय जंगली गधा, छोटी जाति का सुअर, जंगली भैसा, सुनहरी बिल्ली आदि प"ाु–पक्षियों और वनस्पतियों का अस्तित्व खतरे में है बाकी वन्य प्राणियों तथा वनस्पतियों को बचाने के लिए भी जोर–"ाोर से प्रयास जारी है।

''बड़ी–बड़ी बाँध परियोजनाओं वनों का गैर–वनिकी कार्य हेतु उपयोग, बढ़े हुए कल कारखानों, औद्योगिकीकरण की बहुलता और शहरीकरण के दौर ने पर्यावरण को तहस–नहस कर दिया है, वायु प्रदूषण और जल प्रदूषण के साथ ही ध्वनि तथा दृ"य माध्यमों में भी पर्यावरण को प्रदूषित कर दिया है। हमारे बच्चे, खास कर शहर के बच्चों की श्रवण शक्ति पर ध्वनि प्रदूषण का बहुत ही बुरा असर पड़ा है। स्थिति इतनी दयनीय हो गयी है कि हमारी श्रवण शक्ति भी कम होती जा

रही है, श्रवण शक्ति की तरह हमारी दृष्टि प्रदूषण के कारण कमजोर होती जा रही है।''[3]

''ढाई हजार साल पहले एक संवाद में बाढ़ का कुछ वर्णन मिलता है। संवाद भगवान बुद्ध और एक ग्वाले के बीच में है। ग्वाले के घर में किसी दिन भगवान बुद्ध पहुँचे है। काली घटाए छायी हुई है ग्वाला बुद्ध से कह रहा है कि उसने अपना छप्पर कस लिया है, गाय को मजबूती से खूटे में बाँध दिया है, फसल काट ली है। अब बाढ़ का डर नही बचा है आराम से चाहे कितना पानी बरसे, नदी देवी द"ान देकर चली जायेगी। इसके बाद भगवान बुद्ध ग्वाले से कह रहे है कि मैने तृष्णा की नावों को खोल दिया है। अब मुझे बाढ़ का कोई डर नहीं है। युग पुरूष साधारण ग्वाल की झोपड़ी में नदी किनारे रात बिताऐंगे। उस नदी के किनारे जिसमें रात को भी बाढ़ आ जायेगी। पर दोनों नि"चंत है। आज क्या ऐसा संवाद बाढ़ से ठीक पहले हो पायेगा।''[4]

साहित्यिक रचनाओं या फिल्मों में देखा जाय तो उनमें भारत की नदियों को हमे"ाा कालातीत, पवित्रता और स्वच्छता से परिपूर्ण चित्रित किया जाता रहा है। बे"ाक यह एक सुखद कल्पना है। खासकर पर्यटन पुस्तिकाओं में जिनमें भारत को 'अतुल्य' बताया जाता है लेकिन भारत में नदियों को पवित्र और शुद्ध मानना कल्पना को यथार्थ में मानने जैसा है। करीब एक द"ाक में भारत की प्रमुख नदियाँ प्रदूषित हो गयी, शहरी कचरा और औद्योगिक प्रदूषण तो वैज्ञानिक कारण है लेकिन उससे भी बड़ी वजह व्यक्तिगत लालच और प्र"ाासनिक लापरवाही है। पर्यावरणविदों का मानना है कि औद्योगिक प्रदूषण और जल–मल निकासी के अलावा, बुचड़खानों, धोबीघाटों, झुग्गी–झोपड़ियों की बढ़ती संख्या नदियों में बढ़ते प्रदूषण की बड़ी वजहें है। हर साल देवी–देवताओं की मूर्तियाँ विसर्जित की जाती है, जिसकी वजह से भी प्रवाह में अवरोध उत्पन्न होता है। 'साहित्य अमृत' नामक

[3] 'ज्ञान–विज्ञान' मासिक पत्रिका नवम्बर, 2010, अंक–23; सं0 डॉ0 विजयनारायण तिवारी, (केन्द्रीय औषधि अनुसंधान संस्थान, लखनऊ–226001)
[4] तैरने वाला समाज डूब रहा है – अनुपम मिश्र, वागर्थ – 140, मार्च–2007; सं0 एकांत श्रीवास्तव, पृ0 126

मासिक पत्रिका में तरूण कुमार ने यमुना में होने वाले प्रदूषण का कारण बताया है। उन्होंने कहा है –

> ''सीवरों और नालों का कीचड़ यमुना में न गिरे इसलिए वैकल्पिक व्यवस्थाएँ करनी होगी। गंदे नालों का मुँह दूसरी ओर मोड़ना होगा और प्रभाव"ाली संयत्रों की सहायता से कचरे का उपयोग किसी अन्य रूप में करने की व्यवस्था करनी होगी, चमड़े, रंग–रोगन और प्रदूषण पैदा करने वाले कारखानों को हटाकर यमुना से दूर ले जाना होगा। सार्वजनिक शौचालयों के साथ जन–सुविधा परिसरों का निर्माण करना होगा। यमुना तट पर सुन्दर घाटों का निर्माण करने के साथ वृक्षारोपण भी कम आव"यक नहीं है। निर्माण कराये गए सीवेज ट्रीटमेंट प्लान्ट को पुनः जीवित करने के साथ–साथ सं"ोधन संयंत्र लगाना भी आव"यक है।''[5]

वर्तमान समय में मानव अपने को प्रकृति से अगल एक शक्ति के रूप में स्थापित करने के रूप में लगा हुआ है और प्रकृति को अपने अधीन करने की नाकाम कोि"ा कर रहा है। आज मनुष्य जाति ने अत्यधिक वैभव विलासिता का जो अदूरद"ीं दृष्टिकोण अपनाया है और जिस क्रम में हमारी कथित प्रगति प्राकृतिक संतुलन को बिगाड़ रही है उससे यह स्पष्ट होता है कि तात्कालिक लाभ में अंधे होकर हम भविष्य की घोर अंधकारमय बनाने के लिए आतुर हो रहे है।

पर्यावरण का संरक्षण मनुष्य जाति के लिए एक युगधर्म के समान है। यह मात्र स्थूल प्रकृति तक सीमित नहीं है। 'डीपइकोलाजी' के प्रवर्तक एवं जर्मन प्राणी शास्त्री अर्नेस्ट हेकेल (1869) एवं इससे सम्बन्धित अन्य विद्वानों ने अपने विचार दिये हैं। जिससे ज्ञात होता है कि प्रकृति समग्र इकोसिस्टम के रूप में एक विराट हृदय के समान धड़कती भी है श्वास भी लेती है समष्टि मे ंव्यष्टि रूपी घटक की तरह हम भी उसके अंग है। सुप्रसिद्ध पुस्तक 'वेब आफ लाइफ' में फिटजाफ काप्रा

[5] 'यमुना, कब होगे द"ीन तेरे' तरूण कुमार साहित्य अमृत (मासिक) जनवरी – 2011

जैसे नोवल पुरस्कार प्राप्त भौतिकविद ने विस्तृत वर्णन कर मानवीय ह्रदय के भाव और संवेदनाओं को प्रकृति तथा पर्यावरण के साथ जोड़ उनका अविच्छिन्न सम्बन्ध स्थापित किया है। आज से 3500 वर्ष पूर्व मंत्र दृष्टा ऋषि–मुनियों ने भी मानव को प्रकृति के साथ मैत्री, करूणा, एवं भक्ति भाव के साथ जोड़कर उनकी रक्षा करने का निर्दे"ा दिया है जिसका वर्णन वेदों में है।

1-3 i;koj.k d l?kVd

(i) अजैविक संघटक – स्थल, जल, वायु, मृदा आदि

(ii) ऊर्जा संघटक – सौर्यिक एवं भूतापीय ऊर्जा

(iii) जैविक संघटक – पौधें एवं जन्तु

(iv) सांस्कृतिक संघटक – सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं धार्मिक संघटक।

1-4 i;koj.k] ikdfr ,o oU; vkpkj lfgrk

प्रकृति का शब्दको"ाीय अर्थ होता है – बाहरी, दुनिया, मुख्य रूप से वह क्षेत्र जो मनुष्य द्वारा अछूता हो। अतः सामान्य रूप से ग्रहीय पृथ्वी के उस भाग को प्रकृति कहते है जहाँ पर मानव के कदम न पहुँच सके। जब मनुष्य सर्वप्रथम पृथ्वी पर अवतरित हुआ तो समस्त पृथ्वी वन्य क्षेत्र थी तथा भौतिक पर्यावरण अपने प्राकृतिक द"ाा में था। परन्तु जैसे–जैसे मनुष्य की जनसंख्या तथा उसकी बुद्धि एवं कौ"ाल में वृद्धि होती गयी, अधिकाधिक प्राकृतिक क्षेत्र, कृषि फार्मो, गाँवों, नगरों तथा कस्बों, सड़क मार्गों तथा कई आर्थिक प्रतिष्ठानों एवं सामाजिक संस्थानों में बदलते गये। इस प्रकार प्राकृतिक या वन्य क्षेत्र में तेजी से संकुचन होता गया। अपने अस्तित्व के भयानक खतरे से बेखबर, उत्कृष्ट प्रौद्योगिकी से लैस आर्थिक मानव प्राकृतिक संसाधनों के अनियोजित ढंग से तथा तीव्र गति से विदोहन में संलग्न रहा है और अब भी संलग्न है। प्रकृति के इस अनियोजित, अवैज्ञानिक एवं निर्मम विदोहन से उत्पन्न दुष्परिणाम मानव के लिए न केवल भयावह एवं जानलेवा

होगे एवं समस्त मानव समुदाय के अस्तित्व को ही समाप्त कर सकते है। इन पर्यावरणवादियों ने अब तक मनुष्य द्वारा अल्पतम प्रभावित कुछ 'वन क्षेत्रों' जो अब भी अव”ोष है के संरक्षण की वकालत की है। भारत में वन रक्षण के लिए भाट एवं सुन्दर लाल बहुगुणा द्वारा चिपको आन्दोलन चलाया गया था। इस अभियान के द”ोन को 'वन्य आचार संहिता कहते है।' इस विचारधारा के समर्थकों के विपरीत लोगों का एक दूसरा वर्ग है जो इस विचारधारा का समर्थक है कि – प्राकृतिक संसाधन मनुष्य के लिए बने है अतः उनका भरपूर उपयोग होना चाहिए, कृषि भूमि में वृद्धि तथा आर्थिक विकास, नगरीय क्षेत्रों में विस्तार, औद्योगिक संस्थानों में वृद्धि, जल की आपूर्ति आदि के लिए, प्राकृतिक भू दृ”यों को परिवर्तित किया जाना चाहिए। इस विचारधारा को आर्थिक नि”चयवाद कहते है।

भारत में भी कुछ प्राकृतिक क्षेत्रों तथा वन्य क्षेत्रों को जीवमण्डल आगार, राष्ट्रीय उद्यानों या 'वन्य जीव अभयारण्यो' के रूप में सुरक्षित रखने के अनेक प्रयास किये गये हैं। इस सन्दर्भ में 'ने”ानल वाइल्ड लाइफ ऐक्”ान प्लान' की शुरूआत 1983 में की गयी। इस योजना का प्रमुख उद्दे”य है – (i) भविष्य में वन्य जीवों के संरक्षण के लिए रणनीतियों, कार्यक्रमों एवं परियोजनाओं का नियमन तथा कार्यान्वयन तथा (ii) वन्य क्षेत्रों में विस्तार करना।

1-5 i;koj.k lekt vkj lLdfr

पर्यावरण एवं समाज एक दूसरे से इतने अधिक अन्र्तसम्बन्धित है कि वे एक दूसरे पर निर्भर करते है। अर्थात पर्यावरण एवं समाज परस्परावलम्बी हैं। यह स्थापित सत्य है कि यह समाज के विभिन्न पक्ष की आधारि”ाला है। इस तरह सामाजिक संगठनों एवं संस्थाओं का विकास मानव संस्कृति एवं सभ्यता के विकास की विभिन्न अवस्थाओं के दौरान प्राकृतिक पर्यावरण एवं उसकी अपार संसाधनों की सम्पदा के आधार पर ही हुआ है। प्रारम्भिक प्राचीन सभ्यताएँ सतत् वाहिनी नदियों के किनारे विकसित हुई क्योंकि इन नदियों ने ही पीने के लिए पर्याप्त जल, कृषि के लिए उर्वर भूमि तथा अधिवास के लिए समतल भूमि उपलब्ध कराया।

समय के साथ मनुष्य के बुद्धि कौ"ाल में विकास के साथ ही मनुष्य की भूमिका बदलती गयी, यथा प्रारम्भिक 'भौतिक मानव' से सामाजिक मानव, आर्थिक मानव तथा अंततः वर्तमान समय में प्रौद्योगिक मानव के रूप में। परिणामस्वरूप मनुष्य आधुनिक सामाजिक संरचनाओं के निर्माण के लिए प्राकृतिक संसाधनों का और तेजी एवं दक्षता से विदोहन करने लगा। जिस कारण प्राकृतिक पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है।

किसी भी पर्यावरणीय समस्या का निदान एवं समाधान उपयोगिता निर्णय के आधार पर ही किया जा सकता है। पर्यावरण की समस्या के निदान की उपयोगिता का निर्णय इस आधार पर लिया जा सकता है कि पर्यावरण सुधार के कार्यक्रम का पूरे समाज पर कैसा और कितना प्रभाव पड़ता है तथा समाज पर्यावरण सुधार के इन कार्यक्रमों के प्रति किस तरह प्रतिक्रिया करता है। सदा बढ़ती मानव जनसंख्या के लिए लकड़ी की बढ़ती माँग तथा आहार की माँग की आपूर्ति के लिए कृषि क्षेत्रों में विस्तार हेतु सामूहिक रूप वनों के विना"ा के कारण मृदा क्षरण की वृद्धि होती है। इस मृदा क्षरण के कारण नदियों की तलियों का तलछटीकरण, द्वारा भराव होता है। परिणाम स्वरूप नदियों की घाटियों में डालधारण की क्षमता घटने से बाढ़ की आवृत्ति तथा परिणाम में वृद्धि होती है।

अब समाज पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति संवेदन"ील एवं सचेत हो चुका है। पर्यावरण के प्रति जन समुदाय की अभिरूचि भावनात्मक ि"ाखर तक पहुँच चुकी है।

मानव की प्राकृतिक पर्यावरण के साथ दो तरफा भूमिका रही है। एक तरफ तो भौतिक पर्यावरण के जैविक संघटक का एक महत्वपूर्ण भाग तथा घटक है तो दूसरी तरफ वह पर्यावरण का महत्वपूर्ण कारक भी है। इस तरह मनुष्य प्राकृतिक पर्यावरण तंत्र को भौतिक मनुष्य के रूप में, सामाजिक मनुष्य के रूप में, आर्थिक मनुष्य के रूप में तथा प्राद्योगिक मनुष्य के रूप में प्रभावित करता है। मनुष्य के सभी प्राकृतिक गुण यथा जन्म, वृद्धि स्वास्थ्य, मृत्यु आदि प्राकृतिक पर्यावरण से उसी तरह प्रभावित तथा नियंत्रित होते हैं, जैसे कि पर्यावरण के अन्य जीवों के

प्राकृतिक गुण प्रभावित तथा नियंत्रित होते हैं। चूँकि मानव अन्य प्राणियों की तुलना में शारीरिक एवं मानसिक स्तरों अतः प्रौद्योगिकीय स्तर पर भी सर्वाधिक विकसित प्राणी है। अतः वह प्राकृतिक पर्यावरण को बड़े स्तर पर परिवर्तित करके, अपने अनुकूल बनाने में समर्थ भी है। प्रारम्भ में आदिमानव की भौतिक पर्यावरण की कार्यात्मकता की भूमिका दो तरह की होती थी। ग्रहणकर्त्ता और दाता दोनों रूपों में। मनुष्य भौतिक पर्यावरण से अन्य जीवों के समान संसाधन प्राप्त करता था तथा पर्यावरणीय संसाधनों में अपना योगदान भी करता था। इस तरह मानव संस्कृति के विकास के प्रथम चरण में मनुष्य भौतिक पर्यावरण का अन्य कारकों के समान एक कारक था परन्तु जैसे–जैसे उसके समाज तथा उसकी संस्कृति के विकास के साथ उसकी बुद्धि, उसका कौ"ाल तथा उसकी प्रौद्योगिकी विकसित होती गयी, पर्यावरण के साथ उसकी भूमिका तथा सम्बन्ध में भी उत्तरोत्तर परिवर्तन होता गया। इस तरह यदि ऐतिहासिक परिवे"ा में देखा जाय तो मानव की प्राकृतिक पर्यावरण के साथ भूमिका प्रारम्भ से पर्यावरण के कारक के रूप में थी, जो समय के साथ बदलती गई। जैसे आरम्भ में पर्यावरणीय कारक, फिर पर्यावरण का रूपान्तरकर्ता, फिर पर्यावरण का परिवर्तनकर्ता, फिर पर्यावरण का विध्वंसकर्ता तक पहुँच गया। जो मानव प्रारम्भ में प्रकृति का अंग तथा साझीदार था, वही आगे चलकर उसका स्वामी बन बैठा। अतः मानव एवं पर्यावरण के मध्य सहभागिता तथा परस्परावलम्बन का सम्बन्ध चरमरा गया। और मानव प्राकृतिक पर्यावरण का कारक एवं पालक न होकर उसका विध्वंसक हो गया।

मानव–पर्यावरण के मध्य बदलते या बिगड़ते सम्बन्धों का मूल कारण मानव की प्रौद्योगिकी ही है क्योंकि इसी ने प्रागैतिहासिक काल से लेकर वर्तमान औद्योगिक काल तक मानव–पर्यावरण सम्बन्धों में आमूल–चूल परिवर्तन किया है। वास्तव में प्रौद्योगिकी, चाहे वह अति पुरातन हो या वर्तमान समय की अत्यधिक आधुनिक एवं प्रगति"ील हो, पर्यावरण में किसी न किसी प्रकार का परिवर्तन अव"य करता है। मानव की धार्मिक विचारधारा तथा भौतिकवादी दृष्टिकोण ने भी मानव–पर्यावरण सम्बन्धों को बड़े पैमाने पर बदलने में अमृत तथा महत्वपूर्ण भूमिका

निभाई है। अत्यधिक विकसित प्रौद्योगिकी तथा भौतिकवादी दृष्टिकोण के न”ो में धुत आधुनिक प्रौद्योगिकी मानव ने अपने निहित स्वार्थो की पूर्ति के लिए प्राकृतिक पर्यावरण को बड़े पैमाने पर कुप्रभावित किया है। तथा उसका विध्वंसात्मक कार्य अब भी अबाध गति से चल रहा है। परिणामस्वरूप न केवल पर्यावरण में बड़े पैमाने पर Ðास तथा अवनयन हुआ अपितु उसका अस्तित्व ही खतरे में पड़ गया है। जबकि प्रागैतिहासिक काल में आदि मानव तथा पर्यावरण के मध्य मित्रवत सम्बन्ध था परन्तु आज वह शत्रुतापूर्ण हो गया है। मनुष्य के प्राकृतिक पर्यावरण के साथ सम्बन्धों में इतने व्यापक परिवर्तन के कारण भंयकर परिणाम वाली कई पर्यावरणीय समस्याएँ पैदा हो गयी है।

2- i;kZoj.k inZ"k.k

पर्यावरण एक वि”वव्यापी व्यवस्था है जो पृथ्वी के दो ध्रुवों पर जमीं बर्फ की मोटी परत समुद्रों से जल का वाष्पीकरण, वायुमण्डल और सूर्य की किरणों से निर्धारित होती हैं। पर्यावरण में तेजी से बढ़ते प्रदूषण से इन प्राकृतिक अवयवों के आपसी तालमेल से जो गड़बड़ी आई है उसका परिणाम हम वि”व के बढ़ते तापमान के रूप में भुगत रहे है। मानवीय कारणों द्वारा स्थानीय स्तर पर पर्यावरण की गुणवत्ता मे Ðास पर्यावरण प्रदूषण के रूप में जाना जाता है। पर्यावरण अवनयन के अन्तर्गत प्राकृतिक एवं मानव–जनित दोनों कारणों से स्थानीय, प्रादे”ाक एवं वि”व स्तरों पर पर्यावरण की गुणवत्ता में गिरावट को सम्मिलित किया जाता है। पर्यावरण प्रदूषण नगरीकरण, औद्योगिक क्रांति, प्रौद्योगिकी के विकास प्राकृतिक संसाधनों के लोलूपतापूर्ण अंधाधुंध विदोहन, पदार्थ तथा ऊर्जा के विनिमय की बढ़ी दर तथा औद्योगिक अप”ाष्ट पदार्थों, नगर मल–जल तथा न सड़ने–गलने वाली उपभोक्ता सामग्रियों के उत्पादन में निरंतर वृद्धि का ही परिणाम है। पर्यावरण प्रदूषण को विद्वानों ने अपने–अपने तरीके से परिभाषित करने का प्रयास किया है। संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति की विज्ञान सलाहकार समिति ने प्रदूषण को इस प्रकार परिभाषित किया है –

''मनुष्य के कार्यों द्वारा ऊर्जा प्रतिरूप, विकिरण प्रतिरूप, भौतिक एवं रासायनिक संगठनों तथा जीवों की बहुलता में किये गए परिवर्तनों से उत्पन्न प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभावों के कारण आस–पास के पर्यावरण में अवांछित एवं प्रतिकुल परिवर्तनों को प्रदूषण कहते है।''[6]

ने"ानल एनवारनमेण्ट रिसर्च कौसिंल (NERC 1976) के अनुसार –

''मनुष्य के क्रिया–कलापों से उत्पन्न अपf"ाष्ट उत्पादों के रूप में पदार्थों एवं ऊर्जा के विमोचन से प्राकृतिक पर्यावरण में होने वाले हानिकारक परिवर्तनों को प्रदूषण कहते है।''[7]

डॉ0 सविन्द्र सिंह पर्यावरण प्रदूषण को इस प्रकार परिभाषित करते है –

''पर्यावरण प्रदूषण उसे कहते हैं जब मनुष्य के इच्छित या अनिच्छित कार्यों द्वारा प्राकृतिक पारिस्थिक तंत्र में इतना अधिक परिवर्तन हो जाता है, कि वह उसकी (पारिस्थितक तंत्र) सहन शक्ति से अधिक हो जाता है, परिणामस्वरूप पर्यावरण की गुणवत्ता में आव"यकता से अधिक Ðास होने से मानव समाज पर दूरगामी हानिकारक प्रभाव पड़ने लगता है।''[8]

2-1 i;koj.k in"k.k d lkr

पर्यावरण प्रदूषणों के उत्पत्ति के स्रोतों के आधार पर पर्यावरण प्रदूषण के स्रोतों को दो प्रकारों में विभाजित किया जाता है –

2-1-1 ikdfrd lkr

इसके अन्तर्गत ज्वालामुखी, राख एवं धूल, भूकम्पयीय घटनाओं के कारण उत्पन्न दरारों के द्वारा धरातलीय सतह पर लाये गये तत्वों बाढ़ के जल, भूमि अपरदन द्वारा उत्पन्न अवसाद आदि प्रदूषणों को सम्मिलित किया जाता है।

---

[6] पर्यावरण भूगोल – सविन्द्र सिंह, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद, पृ0 401
[7] वही, पृ0
[8] पर्यावरण भूगोल – सविन्द्र सिंह, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद, पृ0 482

2-1-2 ekuoh; lzksr

प्रदूषण के मानवजनित स्रोत विभिन्न प्रकार के होते हैं तथा ये पर्यावरण प्रदूषण के प्रमुख अपराधी है। जिसमें औद्योगिक स्रोत, कृषि स्रोत तथा जनसंख्या स्रोत। अधिकां”ा प्रदूषणों का जनन औद्योगिक एवं नगरीय क्षेत्रों से होता है। औद्योगिक स्रोत से निस्सृत प्रदूषणों गैसीय प्रदूषण और ठोस प्रदूषण जिसमें तमाम प्रकार की जहरीली गैसे तथा घुले हुए निलम्बित ठोस पदार्थ, कई प्रकार के रासायनिक हानिकारक पदार्थ मिश्रीत अपf”ाष्ट जल उष्मा आदि। नगरीय स्रोत तमाम प्रकार के प्रदूषणों का आविर्भाव होता है। जिसमें सीवेज जल, ठोस अपf”ाष्ट पदार्थ, कूड़ा–कचरा, स्वचालित वाहनों से निस्तृत गैस, कारखानों की चिमनियों से निकलने वाले, विभिन्न प्रकार के प्रदूषण, गंदे नालों से होकर बहने वाला गंदा जल आदि। कृषि क्षेत्रों से जनित प्रदूषणों में प्रमुख है – रासायनिक उर्वरक कीटना”ाी, शाकना”ाी तथा रोगना”ाी, कृत्रिम रसायन आदि। मानव जनसंख्या प्रदूषण मनुष्य के क्रिया कलापों के कारण उत्पन्न होते है। निर्धनता तथा बेरोजगारी भी प्रदूषण का प्रमुख स्रोत है।

2-2 i;kZoj.k iznw"k.k ds izdkj

1. वायु प्रदूषण
2. जल प्रदूषण
3. ध्वनि प्रदूषण

2-2-1 ok;q iznw"k.k

वायुमण्डल एक गैसीय आवरण है जो पृथ्वी को चारों तरफ से घेरे हुए है तथा वायु विभिन्न गैसों का यांत्रिक मिश्रण है। इनमें नाइट्रोजन, आक्सीजन, आर्गन तथा कार्बन डाई आक्साइड का 78.09 प्रति”ात, 20.95 प्रति”ात, 0.95 प्रति”ात तथा 0.03 प्रति”ात का योगदान हैं। इसके अलावा निऑन, क्रिप्तान, हीलियम, हाइड्रोजन, जेनान आदि गैसे भी वायुमण्डल में मौजूद है। जीवमण्डल में वायु का सभी

जीवधारियों के लिए अत्यधिक महत्व है। मानव जीवन तो वायु के बिना तो असंभव है। क्योंकि मनुष्य आहार के बिना कुछ सप्ताह तक या बिना जल के कुछ दिन तक तो जिन्दा रह सकता है परन्तु वायु के बिना कुछ मिनट तक भी जीवित नही रह सकता है। एक व्यक्ति प्रतिदिन जितनी वस्तुओं को ग्रहण करता है उसका लगभग 80 प्रति"ात वायु का होता है। एक व्यक्ति प्रतिदिन 22000 बार साँस लेता है। इस तरह एक व्यक्ति प्रतिदिन आक्सीजन युक्त वायुमण्डल से 35 गैलन या 16 किलोग्राम वायु का सेवन करता है। दमा, अस्थमा–ब्रोंकाइटिस, टी0बी0, राजयक्ष्मा आदि फेफड़ों सम्बन्धी रोग प्राण रक्षक वायु की मात्रा में कमी और उसमें प्राप्त प्रदूषण के कारण ही हैं। इसके लिए पर्यावरण को धूल, धुंआ और जहरीली गैसों से मुक्ति दिलानी होगी और पर्यावरण में प्राणवायु की स्वच्छ मात्रा को बढ़ाने के लिए देव संस्कृति को प्रोत्साहित करना होगा। वैज्ञानिकों को यह चिंता सता रही है कि यदि वायुमण्डल में गंधक–सल्फरडाइक्साइड का स्तर बढ़ता है तो इससे ताजमहल जैसी ऐतिहासिक धरोहर जो धवल संगमरमर पत्थरों से निर्मित है, उसका रंग प्रभावित होगा और अम्लीय प्रभाव से संगमरमर का कैल्सियम कार्बोनेट प्रभावी होगा। वायुमण्डल में गंधक की यह वृद्धि बरसात को अम्लीय भी बना सकता है जिससे धरती पर प्राप्त अनेक प्राकृतिक संसाधन तो नष्ट होगे ही साथ ही जीव जगत भी प्रभावित हुए बिना न रह सकेगा।

2-2-2 ty in"k.k

जल मानव जीवन का मुख्य आधार है। यह प्रकृति की अमूल्य देन है। मानव को जीवित रहने के लिए वायु के बाद दूसरा स्थान जल का है। इसके अतिरिक्त कोई भी आर्थिक कार्य ऐसा नही है जो जल के बिना संभव है। वस्तुतः जल के बिना जीवन ही संभव नही है और न ही इसका कोई विकल्प है। श्री पी0 विवियर के अनुसार ''प्राकृतिक या मानव जनित कारणों से जल की गुणवत्ता में ऐसे परिवर्तनों को प्रदूषण कहा जाता है जो आहार एवं मानव एवं जानवरों के स्वास्थ्य कृषि मत्स्य या आमोद प्रमोद के लिए अनुपयुक्त या खतरनाक होते है। जल सभी प्रकार के जीवों के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है। दूसरी तरफ यह जीवमण्डल में

पोषक तत्वों के संचरण तथा चक्रण में सहायता करता है। इसके अलावा जल बिजली के निर्माण, नौका परिवहन, फसलों की सिंचाई, सीवेज के निस्तारण आदि के लिए महत्वपूर्ण होता है। औद्योगिकरण, नगरीकरण तथा मानव जनसंख्या में तीव्र वृद्धि के कारण, जल की माँग में गुणोत्तर वृद्धि हुई है।''

वि”व के नगरीकरण एवं औद्योगीकरण में अंधाधुंध विस्तार के कारण कई प्रकार क`जल प्रदूषणों का प्रतिवर्ष निर्माण हो रहा है। एक अनुमान के अनुसार प्रतिवर्ष 2000 रसायनों का प्राकृतिक पर्यावरण में प्रवे”ा हो रहा है। इन प्रदूषणों का नगरीय कारखानों से निकले गन्दे जल के मल नालों और मल नालियों से एवं कृषि क्षेत्रों से नालों एवं छोटी सरिताओं द्वारा नदियों एवं झीलों में प्रवे”ा होता रहता है। जल जीवन का प्रमुख साधन है जो पृथ्वी की लगभग 71 प्रति”ात भाग घेरे हुए है। पृथ्वी का अधिकतर जल समुद्री है एवं खारा होने के कारण पीने योग्य नही है। पृथ्वी पर जीतना पानी है उसका क्षेत्रफल 0.3 प्रति”ात ही शुद्ध है। यह विडम्बना है कि जल के बढ़ते हुए उपयोग के साथ जल प्रदूषण भी बढ़ा है। यह समस्या दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। जल प्रदूषण के फलस्वरूप जल की गुणवत्ता में Ðास हो जाता है, औद्योगिक केन्द्रों, यातायात के साधनों तथा कृषि क्षेत्रों से निकलने वाले रसायनों जैसे अमोनिया, नाइट्रेट, पारा, सीसा, ब्रोमियम क्लोराइटस इत्यादि जल को प्रदूषित करते है। प्रदूषित जल पीने से हैजा, पेचिस, मलेरिया, पीलिया, गैस्ट्रो तथा मस्तिष्क ज्वर हो जाता है।

2-2-3 /ofu i:n"k.k

आज आदमी के स्वास्थ्य को सबसे बड़ा खतरा ध्वनि–प्रदूषण से है। दुनिया में हर 10 सालों में पहले से दो गुनी शोर बढ़ जाती है। गतवर्षों में ध्वनि के स्तर मे काफी वृद्धि हुई है। आमतौर पर एक सामान्य शान्त कमरे में 50 डेसीबेल ध्वनि होती है। पुस्तकालयों एवं रेडियों रिकार्डिग स्टूडियों जैसे शान्त स्थानों पर 30 डेसीवेल के स्तर पर आ जाती है। ट्रकों, बसों, स्कूटरों से 90 डेसीबेल तक का शोर होता है। एक भारी फैक्टरी में 100 डेसीबेल तक की आवाज होती है। उड़ाने

भरते समय जेट विमान 150 डेसीबेल की ध्वनि करता है। 100 डेसीबेल के ऊपर का ध्वनि स्तर असुविधापूर्ण और 120 डेसीबेल से ऊपर कष्टकारी माना जाता है।

शोर अथवा ध्वनि आदमी के स्वास्थ्य पर कई प्रकार से प्रभाव डालता है। आमतौर पर इसका असर नीद में कमी आना है जिससे अन्य शारीरिक व्याधियाँ भी जुड़ी है। आमतौर पर आदमी उच्च ध्वनि स्तर के कारण मानसिक और भौतिक दोनों रूप में पीड़ित होता है इससे रक्तचाप एवं मस्तिष्क से सम्बन्धित विभिन्न बिमारियाँ होने का भय रहता है। विभिन्न शोधों से यह निष्कर्ष सामने आया है कि ध्वनि का दुष्प्रभाव गर्भस्थ एवं नवजात f”ा”ुओं पर भी पड़ता है। ध्वनि प्रदूषण नियन्त्रण के लिए संचालक तत्व ही आम आदमी। इस मामले में नागरिक पुलिस या कानून व्यवस्था बनाये रखने वाली अन्य संस्थाएँ प्रमुख भूमिका निभा सकती है। ध्वनि प्रदूषण से होने वाली हानियों के प्रति जागरूकता और ज्ञान को बढ़ावा देना आव”यक है। केवल जागृत समाज ही ध्वनि प्रदूषण पर नियत्रंण कर सकता है।

3- ie[k i;kZoj.kh; leL;k,¡

ओजोन परत् का विघटन, मरूस्थलीकरण, हरितगृह प्रभाव, अम्लवृष्टि, जनसंख्या विस्फोट, औद्योगीकरण, अपशिष्ट निस्तारण, निर्वनीकरण, स्मोग शहरीकरण, भीड़, नम भूमि, बंजर भूमि, जल और अन्न की कमी, कुपोषण, स्वास्थ्य, सुविधाओं का अभाव, पारिस्थितिकी असंतुलन, ग्लोबल वार्मिग, वन्य संरक्षण में कमियाँ, पर्यावरणीय अज्ञानता, विश्वव्यापी वर्तमान समय की प्रमुख पर्यावरणीय समस्या, ओजोन परत का क्षय होना है। वायुमण्डल में नाइट्रोजन, आक्सीजन, कार्बन–डाई आक्साइड आदि गैसों के अलावा ओजोन नामक गैस भी पायी जाती है। वायुमण्डल में स्थित समताप मण्डल के उपरी भाग मे लगभग पच्चीस किलोमीटर मोटी ओजोन गैस की एक परत पायी जाती है, जिसे ओजोन मण्डल कहते है। समताप मण्डल में स्थिति यह ओजोन सूर्य से निकलने वाली पराबैगनी विकिरण को सोखकर धरती पर निवास करने वाले जीव–जन्तुओं की रक्षा करती है। यदि निचले वायुमण्डल में यह गैस जम गई तो वहाँ जरूरत से ज्यादा गर्मी पैदा हो जायेगी। यह गैस नाइट्रोजन के आक्साइड, मीथेन हाइड्रोजन और अन्य

कार्बनिक योगिकों के आपसी क्रिया से बनी होती है। इसकी कितनी मात्रा होती है इसका सही तरह से पता नहीं लगाया जा सकता। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि यदि ओजोन का क्षरण होता है तो पर्यावरण में गर्मी बढ़ेगी, जो पृथ्वी पर सम्पूर्ण जीवन के लिए अत्यन्त घातक होगा। ओजोन के विनाशकारी रूप से पराबैगनी किरणों की मात्रा बढ़ेगी। जो मानव एवं पशु–पक्षियों के लिए घातक होगा और इससे कैंसर, नेत्र ज्योति, Ðास, मोतिया बिन्द का होना, आँख के लेंस का विरूपण, शरीर के प्रतिरोधी तंत्र का Ðास, फसलों के उत्पादन में कमी, वनों की हानि तथा समुद्री जीवन का Ðास होता है। वर्तमान में विश्व व्यापी तापन पराबैगनी किरणों के कारणों में एक यह भी है।

3-1 e:LFkyhdj.k

वर्तमान में वैज्ञानिक ग्लोबल वार्मिंग के नये खतरों में पृथ्वी पर बढ़ते रेगिस्तान को जोड़ रहे हैं क्योंकि आज मरूस्थलीय का विस्तार इतनी तीव्र गति से बढ़ रहा है कि विश्व के अल्प विकसित विकासशील और विकसित लगभग 110 से अधिक देश इनमें शामिल हो गये है। वैज्ञानिक अध्ययनों से पता चला है कि 19वीं सदी की अपेक्षा 20वीं सदी में धरती का औसतन तापमान 6 डिग्री सेल्सियस अधिक रहा है। सन् 1800 से पृथ्वी का तापमान रिकार्ड किया जा रहा है। और समय के इन दो सौ से अधिक वर्षों से हमारे वातावरण का तापमान निरन्तर बढ़ता जा रहा है। वातावरण की इस गर्माहट में कुछ गैसों जिसमें कार्बन डाई आक्साइड की मात्रा 30 प्रतिशत से अधिक बढ़ गई है, इस वातावरण के घटते प्रभावों को देखते हुए ऐसा लगता है कि 21वीं सदी के उत्तरार्द्ध तक पृथ्वी का औसतन तापमान आज की तुलना में 1.0 से 3.5 डिग्री सेल्सियस तक बढ़ जायेगा। यह स्थिति अगर नियंत्रित नही की गई तो आने वाली सदी में एक और जहाँ विश्व के अधिकांश हिस्से ग्लेशियरों की बर्फ पिघलने के कारण जलमग्न हो जायेगें तो वही दूसरी ओर शेष बची दुनिया मरूस्थल में बदल जायेगी। ये दोनों ही स्थितियाँ मानव के जीवन के लिए शुभ नहीं दिख पड़ती।

मानव जीवन तथा पशुधन एवं वनस्पतियों को मुश्किल से बचाने के लिए मनुष्य को ग्लोबल वार्मिंग को रोकना होगा। इसके साथ ही व्यक्तिगत हितों को छोड़कर मनुष्य को ऐसे बुद्धिमत्ता पूर्ण कार्य करने होगे जो अधिक से अधिक लोगों के लिए लाभदायक हो इसके अलावा भी निम्न उपाय भी मरूस्थलीकरण को रोकने में सहायक हो सकते है। वृक्षारोपण पर बल दिया जाना चाहिए। भूमि का प्रबंधन वैज्ञानिक आधार पर होना चाहिए। पशु चारण की उचित एवं नियंत्रित व्यवस्था हो, ईंधन के वैकल्पिक स्रोतों की तलाश हो। जल के संरक्षण और प्रबंधन की व्यवस्था हो तथा शैक्षिक जागरूकता का प्रसार–प्रचार किया जाय।

3-2 gfjr xl iHkko

हमारी पृथ्वी की जलवायु सूर्य की ऊष्मा द्वारा जीवन पाती है अर्थात् सूर्य से उत्पन्न ऊर्जा का मानव जीवन से सीधा सम्बन्ध होता है। यह प्रकृति के आरम्भ से लेकर वर्तमान तक श्रृंखला वृहद प्रक्रिया के तहत चलता रहता है। सूर्य से ली गई इस विकिरण विधि से ऊर्जा पृथ्वी पर उत्सर्जित भी होती रहती है। इस प्रक्रिया से पृथ्वी अतिरिक्त ऊर्जा से सुरक्षित भी रहती है। बार–बार विकीर्णन एवं उत्सर्जन की प्रक्रिया में पर्यावरण से कुछ रेडियोएक्टिव किरणें, ऊर्जा इन से शोषित कर लेती है। और कुछ गैसे निकाल देती है। इस प्रक्रिया से निकलने वाली कुछ हरित गैसे होती हैं। जिनका निर्माण जलवाष्प, पानी के वाष्पन से होता है। कार्बन डाई आक्साइड, कार्बन मोनो आक्साइड, क्लारों फ्लोरो कार्बन, मिथेन, ओजोन, नाइट्रस आक्साइड आदि गैसों के द्वारा पृथ्वी के चारों ओर घना आवरण बन जाता है। अतः हरित ग्रह प्रभाव वह क्रिया है जो पार्थिव विकिरण को वायु मण्डल द्वारा रोक लिए जाने के कारण पृथ्वी के तापमान बढ़ने से सम्बन्धित है। इसकी खोज सर्वप्रथम 1827 में जे0 फेरियर महोदय ने की।

मानव की प्रकृति विरोधी नीतियों एवं कार्यों के कारण संतुलित वातावरण असंतुलित हो गया है। ग्रीन हाउस प्रभाव उत्पन्न करने वाली प्रमुख गैसों की मात्रा वायुमण्डल में आवश्यकता से अधिक बढ़ गयी है। जिससे पृथ्वी का तापमान

औसतन से अधिक बढ़ता जा रहा है। यदि यह स्थिति जारी रही तो आने वाले समय में पृथ्वी के प्राणी जगत, वनस्पति जगत व मौसम चक्र का तालमेल असंतुलित हो जायेगा।

ग्रीन हाउस प्रभाव के बारे में यूरोप के भू–वैज्ञानिकों ने एक संगोष्ठी के माध्यम से (1986) में भविष्यवाणी की थी कि आगामी 2050 तक पृथ्वी के तापमान में 1.5 से 4.5 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि होने की संभावना है। और वर्तमान में इसके दुष्परिणाम भी सामने आने लगे हैं। मार्च 2002 में लंदन के वैज्ञानिकों ने सुदूर संवेदन उपग्रह से प्राप्त आंकड़ों के आधार पर बताया कि अण्टार्टिका के पूर्वी प्रायद्वीप भाग से जुड़ा लार्सन बी हिमनद टूट गया। 1250 वर्ग मील क्षेत्रफल एवं 650 फुट मोटाई वाली बर्फ की इस चट्टान के टूटने को दुनिया के लिए खतरा बताया जा रहा है।

उद्यानों के उत्पादन में हरित ग्रह प्रभाव भी असर करेगा, एक निश्चित तापमान न उपलब्ध होने के कारण उत्पादन घटेगा जिससे अमेरिका विशेष रूप से प्रभावित होगा क्योंकि 1.5 से 4.5 डिग्री सेल्सियस ताप की वृद्धि होने के कारण समुद्रों में वाष्पीकरण की प्रक्रिया बढ़ जायेगी जिससे वायुमण्डल में आर्द्रता बढ़ेगी साथ ही क्षेत्रीय वायुदाब में पर्याप्त परिवर्तन होने के कारण ताप, दाब, एवं आर्द्रता स्थितियों में परिवर्तन के कारण क्षेत्रीय जलवायु में परिवर्तन होने के कारण फसलों के उत्पादन व फसल चक्र परिवर्तन होगें जिससे अमेरिका, भारत, आस्ट्रेलिया, पूर्वोत्तर अफ्रीका व मध्य पूर्व के देशों की अर्थ व्यवस्थाएँ प्रभावित होगी। इससे साथ ही मौसम के इस परिवर्तन से क्षेत्रीय परिस्थिति तंत्र भी लड़खड़ा जायेगा। और वहाँ की घास–वनस्पतियाँ तो नष्ट होगी साथ में पशु–पक्षियों का जलवायु परिवर्तन के कारण क्षेत्र भी बदल जायेगा। वैश्विक परिवेश में अलनीनों की ठंडी जल धारा जो अमेरिका के तट पर बहती थी। आज वह गर्म हो गई है जिसमें इससे रहने वाले जीवों को अनेक कष्ट उठाने पड़ जाते है।

वर्तमान में बढ़ती उपभोक्तावादी संस्कृति का प्रसार वि”व स्तर पर रोका जाना चाहिए। प्रकृति में स्नेह रखते हुए मानव को आज सादगीपूर्ण जीवन को अपना लक्ष्य बनाना चाहिए। यह एक ऐसी जागरूकता है जो किसी के दबाव में नही हो सकती है। बस इसके लिए जरूरत है दृढ़ इच्छा शक्ति की इसके अलावा कुछ सैद्धान्तिक उपायों द्वारा भी हरित ग्रह प्रभाव को पूर्णतया से समाप्त नही किया जा सकता है। हाँ इसमे कमी अव”य की जा सकती है।

- वृक्षारोपण अधिक से अधिक किया जाना चाहिए।
- वि”व की जनसंख्या वृद्धि पर रोक होनी चाहिए।
- जीवाव”ोष ईधन के स्थान पर सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा एवं ज्वारीय ऊर्जा के उपयोग में अधिक से अधिक वृद्धि की जाये।
- सोलर एवं गोबर गैस प्लाण्ट को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।
- स्वचालित वाहनों में पेट्रोल व डीजल के स्थान पर सी0एन0जी0 एवं एल0पी0जी0 आदि का प्रयोग किया जाना सुनि”िचत हो।
- अधिक से अधिक प”ाु पालन हो।
- जन जागरूकता के द्वारा जन सामान्य को औपचारिक व अनौपचारिक ि”ाक्षा द्वारा ग्रीन हाउस प्रभाव के कारण होने वाली हानियों एवं दुष्परिणामों को अवगत कराया जाये जिससे समाज का प्रत्येक व्यक्ति जागरूक व सचेष्ट हो सके।

3-3 vEy o"kkZ

वर्षा के जल में अम्लों की बढ़ी मात्रा को या उपस्थिति को अम्लीय वर्षा कहा जाता है। वैज्ञानिकों का मानना है कि यह अम्लीय वर्षा औद्योगिक एवं परिवहन स्रोतों तक सीमित नही है वरन् यह हवा एवं बादलों के माध्यम से दूर तक फैल जाते है। नार्वे, स्वीडन, डेनमार्क आदि यूरोपीय राष्ट्र ब्रिटेन और फ्रॉस पर यह आरोप लगा रहे है कि उनके कल कारखानों से निकलने वाले धुँए से पर्यावरण

प्रदूषित हो रहा है तथा उनके दे"ाों में अम्लीय वर्षा हो रही है। वही खाड़ी युद्ध के समय इराक द्वारा कुवैत के तेल कुओं को जला देने के परिणाम स्वरूप इसके निकले धुएँ से ईरान तथा भारत के जम्मू क"मीर क्षेत्र तक व्यापक प्रभाव पड़ा। आज यू0एस0ए0 तथा पि"चमी यूरोपीय दे"ाों में अम्ल वर्षा ने व्यापक रूप ले लिया है। क्योंकि यहाँ के विभिन्न जल स्रोतों, झीलों, तालाबों एवं छोटे जल भण्डारों आदि के जलीय जीवों की मृत्यु का उत्तरदायी कारक अम्लीय वर्षा को ही माना जा रहा है। अम्लीय वर्षा से आज सजीव–निर्जीव दोनों प्रभावित हो रहा है। पर्यावरण पर इनके हानिकारक प्रभावों के कारण विभिन्न क्षेत्रों की पारिस्थितिकी संतुलन को गड़बड़ा दिया है। इसके प्रभाव से नदियों, तालाब व झीलों के अस्तित्व पर संकट मंडराने लगा है। आज अम्लीय वर्षा का प्रभाव बालू–पत्थर व चुना या संगमरमर से बने भवनों व मूर्तियों पर स्पष्ट दिखने लगा है। इससे ऐतिहासिक इमारतों में स्टोन लिपर्सी (पत्थर का फोड़) हो जाता है। उदाहरण के लिए ताजमहल का अम्लीय वर्षा के कारण शनैः शनैः क्षरण हो रहा है जिसका मुख्य कारण आगरा के निकट स्थित मथुरा रिफाइनरी द्वारा प्रदूषणकारी तत्वों का उत्सर्जन है। इसके साथ दूसरा कारण अम्लीय वर्षा से भवनों में छोटे–छोटे छिद्र हो जाते है। साथ ही पत्थर की चमक घट जाती है। इसी तरह से भारत की अन्य ऐतिहासिक इमारतें मोती मस्जिद, लाल किला तथा कुतुबमीनार अपनी प्राकृतिक चमक खोते जा रहे है।

1. सरकार द्वारा बनाये गए पर्यावरण सम्बन्धी कानूनों का कठोरता से पालन करवाया जाए।
2. औद्योगीकरण के मानक बनाकर उसमें निकलने वाले प्रदूषण को कम किया जाए।
3. ऐसे नवीन ऊर्जा स्रोतों को खोजा जाए जो प्रदूषण न फैलाते हों।
4. वायुमण्डल में हो रहे परिवर्तन को लेकर निरंतर अध्ययन को अनिवार्य किया जाना चाहिए।
5. सरकारी व गैर सरकारी स्वयं समूहों द्वारा जन चेतना तथा जागरूकता के सामूहिक प्रयास किये जाने चाहिए।

3-4 विश्वव्यापी तापन

वि"वव्यापी तापन यानी पृथ्वी के तापमान में वृद्धि और मौसम में अनचाहे परिवर्तन को कहा जाता है। आज का मानव यदि अपने स्वर्णिम प्राकृतिक अतीत की यादें ताजा करें तो उसके वार्षिक कार्यों का लेखा–जोखा ऋतुओं पर आधारित होता था। चाहे वह बसंत ऋतु हो या शरद ऋतु एक नि"चत समय सीमा में ही शुरू होती थी। पहले मानसून एक नि"चत समय पर अपनी दस्तक देता था अर्थात प्रकृति के अपने नियम नि"चत थे और इसी के अनुसार मानव उपक्रम करता था। एक आपसी प्रबन्ध का समझौता था और इस पर मानव एवं प्रकृति झूमते मल्हार गाते रहते थे। आज सब कुछ उल्टा–सीधा हो रहा है। मानसून कब आया, कब गया, कुछ नि"चत नही है। उन सब कारकों के पीछे मानव द्वारा प्रकृति का अत्यन्त दोहन, पेड़ों का काटा जाना, पहाड़ों का नष्ट होना जिसके कारण कार्बन डाई आक्साइड गैस की मात्रा बढ़ रही है। फलस्वरूप पृथ्वी पर तापमान की अधिकता हो गयी है। पृथ्वी पर इस लगातार बढ़ रहे तापमान के लिए मुख्य रूप से ग्रीन हाउस प्रभाव ही उत्तरदायी है। तापमान बढ़ने से ध्रुवों की बर्फ पिघलेगी, परिणामस्वरूप समुद्र की सतह उठेगी और निचले तटवर्ती क्षेत्र डूब जायेगा। भारत में मुम्बई, कोलकाता और चेन्नई समुद्र में समा जायेगे। अंडमान–निकोबार लक्ष्यद्वीप और मालावार जैसे द्वीप समूह भविष्य में अस्तित्वहीन हो जायेगें।

- मौसम में तेजी से परिवर्तन होगा। ध्रुवों की बर्फ पिघलने से पारिस्थिकी संतुलन बिगड़ेगा। आने वाले कुछ वर्षों में समुद्र में भयंकर तुफान और चक्रवात आयेगे। ऋतुओं का क्रम बदलेगा, बे मौसम बारि"ा होगी।
- समुद्र स्तर बढ़ने से कहीं–कहीं सूखा की पड़ेगा।
- मलेरिया, डेगू और हैजा जैस संक्रामक बीमारियाँ फैलेगी।
- मरूस्थलीय क्षेत्रों का विस्तार होगा।

- साथ ही हरे–भरे वनों के लिए प्रसिद्ध हिमालय का तराई वाला क्षेत्र भी एक दिन बंजर होकर अंततः रेगिस्तान में परिवर्तित हो जायेगा। मौसम वैज्ञानिकों ने चेतावनी दी है कि यदि जल्द ही बढ़ते तापमान के ग्राफ का थामा नही गया तो इसके गम्भीर परिणाम भुगतने होगें।

3-5 vy&uhuk

यह समस्या तापमान के बढ़ने से होती है। इसकी वजह से मौसम का सामान्य चक्र गड़बड़ा जाता है और बाढ़ व सूखे जैसी प्राकृतिक आपदाएँ शुरू हो जाती है। अलनीनों की घटना हर दस वर्ष के अंतराल में सम्पन्न होती है। भू–मंडल के तापमान में वृद्धि से इसकी आवृत्ति बढ़ जाती है। अल–नीनों के बारे में मौसम विभाग का कहना है कि सन 2007 में अल–नीनों के लौटने की 50 प्रति”ात संभावना है।

3-6 Lek t

यह अंग्रेजी Smoke के स्मोज Fogue व फोग शब्दों से मिलकर बना है। जिसका शाब्दिक अर्थ 'धुँआ' अथवा कोहरा होता है। स्मोग का निर्माण सल्फर डाई आक्साइड, नाइट्रोजन आक्साइड के धुंए व कोहरे के संयोग से बनता है। धुंए के कण स्मोग के बनने के लिए नाभिक का कार्य करते है। सल्फर डाई आक्साइड, नाइट्रोजन आक्साइड व हाइड्रोजन इन नाभिकों पर घनीभूत होकर वायुमंडल में घातक, आयन या अम्ल का निर्माण करते है। जो कोहरे के रूप में वायुमण्डल में धरती के नजदीक फैल सा जाता है। अत्यधिक मात्रा में स्मोग का बनना मानव के लिए घातक सिद्ध होता है। सर्वप्रथम यह 1940 में अमेरिका में प्रयोग में लाया गया। लन्दन में सन 1952 में दिसम्बर महीने में पाँच हजार से अधिक लोग मृत्यु के गाल में समा गये थे। एक प्रमुख बात यह है कि अधिकतर स्मोग शहरी क्षेत्रों में बनता है क्योंकि इन स्थानों में प्रदूषण अधिक मात्रा में बनता है। स्मोग की रोकथाम के लिए सबसे उचित उपाय प्रदूषण पर नियंत्रण है। इसके लिए एल0पी0जी0, सी0एन0जी0 का प्रयोग करे। और हो सके तो स्वचालित वाहन बाइसकिल का प्रयोग करें।

3-7 'kgjhdj.k

गाँवों में दिनों दिन बढ़ रहे अभाव, जीवन की असुरक्षा और संचार तथा यातायात के सीमित साधनों में वहाँ के लोगों को शहर की ओर मोड़ा है। यही कारण है कि आज शहरों में अत्यधिक जनसंख्या का दबाव हो गया है। इस अत्यधिक आबादी और बढ़ते औद्योगिकरण ने शहरीकरण की समस्या उत्पन्न कर दी है। यहाँ लोगों के बढ़ने से भारी घनत्व हो जाने के कारण उचित आवास का अभाव, स्वच्छ पानी पीने की कमी, जीवन की अस्त–व्यस्तता, परिवार के लिए समय का अभाव, यातायात की कठिनाई, मंहगी जिंदगी, मंहगी f"k्षा, मंहगा मनोरंजन, मंहगी चिकित्सा इसके साथ ही जल, वायु, वाहन और ध्वनि प्रदूषण से अनेक तरह की बीमारियाँ, असुरक्षित जीवन जैसी अनेक समस्याएँ, शहरीकरण के लिए अभि"ाप बनते जा रहे है। शहरीकरण की यही समस्या भीड़ के रूप में एक नया रूप धारण कर लेती है जो सम्बन्धों में अजनबीपन ला देती है। डा0 एम0के0 गोयल इस ओर संकेत करते है कि भीड़ के लोगों के व्यवहार आ"चर्यजनक रूप में भावूक, अनसमझपूर्ण, मूर्खतापूर्ण तथा बेवकूफों जैसे हो जाते है। सारा सामाजिक वातावरण आवे"ापूर्ण और विवेक"ाून्य होने लगता है। आपस में वैमनस्यता बढ़ जाती है, बड़े समूह छोटे–छोटे समूहों में बँटकर सदैव के लिए एक दूसरे के दु"मन बन जाते है।

4- Hkkjrh; i;kZoj.k

भारत एक वि"ाल दे"ा है। भारत का विस्तार उद्धोष्ण जलवायु प्रदे"ा में है कर्क रेखा इसके मध्य से होकर गुजरती है। यह हिन्द महासागरों के मध्यवर्ती भाग के शीर्ष पर स्थित है। इसका धरातल सभी भागों में बाटा जा सकता है जो अपनी भौतिक एवं भूगर्भिक वि"ाषताओं में एक दूसरे से भिन्न है। नन्द कि"ाोर गुप्ता के अनुसार हमारे दे"ा का कुल क्षेत्रफल 3287263 वर्ग किलोमीटर है जो वि"व के क्षेत्रफल का 2.4 प्रति"ात आता है इसकी भू–सीमा 15200 किलोमीटर तथा तटीय सीमा 6.100 किलोमीटर है। गोपीनाथ श्रीवास्तव के अनुसार बढ़ती हुई आबादी के लिए मूलभूत आव"यकताओं की समुचित व्यवस्था करना सरल नही है, जहाँ तक भारत का प्र"न है उसके पास वि"व की कुल भूमि का 2012.4 प्रति"ात है। जबकि

उसकी आबादी वि"व की आबादी के 15 प्रति"ात से भी अधिक है। इस प्रकार भारत में प्रति व्यक्ति .40 हेक्टेयर जमीन उपलब्ध है। भारत में आबादी अधिकतर जल सिंचित मैदानों पर केन्द्रित है। क्योंकि भारत मुख्यतः वर्षा आधारित कृषि पर निर्भर है। प्रति व्यक्ति भूमि का अनुपात इस दे"ा में जहाँ तक कृषित भूमि का सम्बन्ध है .20 हेक्टेयर है। जो एक कृषि प्रधान दे"ा के लिए बहुत कम है।

इस दे"ा में वन 750 लाख हेक्टेयर क्षेत्रफल में फैले है। राष्ट्रीय वन नीति का लक्ष्य है कि वन कम से कम 11 करोड़ हेक्टेयर क्षेत्रफल में लगे होने चाहिए। जिससे पर्यावरण की स्थिरता और पारिस्थितिकीय संतुलन बना रहे। हमारे दे"ा में स्थिति पर काबू पाने के लिए और उपज ज्यादा बढ़ाने के उद्दे"य से रासायनिक उर्वरको और एक लाख टन कीटना"ाी दवाइयाँ खेतों में इस्तेमाल की जाती है। ये कीटना"ाी और कीटमार तथा डी0डी0टी0 औषधियाँ फसल पर या खेतों में पानी छिड़काव के समय पानी में घुलकर अंततः पोखरों, नदियों और भूमिगत जला"ायों में पहुँच जाती है। कृषि सचिव डॉ0 गिल के अनुसार 31 दिसम्बर 1992 तक भारत सरकार ने बारह कीटना"ाी औषधियों का प्रयोग निषिद्ध कर दिया था। और तेरह कीटमार दवाइयों के प्रयोग पर रोक लगा दी थी जिसमें से डी0डी0टी0 का प्रयोग भी शामिल है। इन दवाइयों सहित सिंचित खेती से प्राप्त खाद्यान्नों द्वारा हमारे शरीर में विषैली दवाइयाँ प्रवे"ा कर जाती हैं। और स्तनपान तथा ि"ा"ाु खाद्य पदार्थों के जरिये ि"ा"ाुओं के पेट में पहुँच जाती हैं और हम सबको साध्य असाध्य रोगों से ग्रसित कर देती है। इस प्रकार मिट्टी, पानी, पेड़—पौधे, जीव—जन्तु के प्राकृतिक तालमेल अथवा सामंजस्य को हम अपनी नादानी से असंतुलित कर देते हैं और परिस्थिति को अस्त—व्यस्त कर देते हैं। पर्यावरण संतुलित करने के लिए भारत में कई संगठन तथा संस्थाए कार्य कर रही है जैसे — बाम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसाइटी, बम्बई, गोविन्द वल्लभ पन्त हिमायली पर्यावरण एवं विकास संस्थान अल्मोड़ा, भारत सरकार का पर्यावरण एवं वन मंत्रालय, नई दिल्ली, भारतीय वन्य प्राणी संस्थान, देहरादून पर्यावरणीय ि"ाक्षा केन्द्र, अहमदाबाद परिस्थितिकीय अनुसंधान एवं प्र"िाक्षण केन्द्र बंगलौर इत्यादि।

5- विश्व पर्यावरण

इस समय सम्पूर्ण पृथ्वी या वि"व पर्यावरणीय प्रदूषण समस्याओं के जाल से घिरा है। पृथ्वी का पर्यावरण स्वयं में एक सम्पूर्ण निकाय है जिसमें न कुछ बाहर से आकर जुड़ता है और न कोई पदार्थ बाहर छूट कर जाता है। भूमि के विभिन्न अवयवों जैसे, वन, दलदल, जल स्रोत आदि के बीच एक जटिल अंतः सम्बन्ध होता है जो पर्यावरण में संतुलन को कायम रखते है। राष्ट्र संघ पर्यावरण कार्यक्रम के अन्तर्गत सन् 1980 में चेतावनी दी गई थी कि जलवायु पर कार्बन डाई आक्साइड गैस की मात्रा बढ़ने से अपरिवर्तनीय जलवायु परिवर्तित होने लगेगी जिसका पता देर से चलेगा। इक्कीसवीं शताब्दी का यह वि"वव्यापी उष्मीकरण सबसे बड़ा खतरा है। यदि पृथ्वी का उष्मीकरण 2–6 डिग्री बढ़ जाता है जैसा वायुमण्डल में कार्बन डाई आक्साइड की मात्रा दो गुनी हो जाने की द"ाा में संभव है तो समुद्र जल का स्तर 20–140 सेन्टीमीटर ऊँचा हो जायेगा। और कितनी ही भूमि जलमग्न हो जायेगी। वर्षा ऋतु और मौसम में अनेक परिवर्तन हो जायेंगे। गोपीनाथ श्रीवास्तव ने कहा है कि, शुद्ध पर्यावरण के लिए वायु में 78 प्रति"ात नाइट्रोजन, 0.3 प्रति"ात कार्बन डाई आक्साइड, 21 प्रति"ात आक्सीजन होना चाहिए। साथ ही बहुत थोड़ी मात्रा में ओजोन, हाइड्रोजन, सल्फर डाई आक्साइड, आर्गन होना चाहिए। औसतन प्रतिदिन मनुष्य तेरह किलो वायु का उपयोग करता है। यदि यह वायु प्रदूषित हो और कार्बन–मोनो आक्साइड, कार्बन डाई आक्साइड, सल्फर डाई आक्साइड, सीसा, नाइट्रस आक्साइड से परिपूर्ण हो तो मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए घातक होगा।

वर्तमान में पर्यावरण विषय सिर्फ स्थानीय न होकर सम्पूर्ण भू मण्डल पर चर्चा का विषय बना हुआ है। पर्यावरण की शुरूआत 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जीन जैक, रूसो के प्रकृतिवादी द"ान के प्रवर्तन के साथ माना जा सकता है। सन 1899 में पैट्रिक गेडिस इंडिनवर्ग इग्लैण्ड में 'दी आउटलुक टावर' नामक संस्था की स्थापना की। संस्था का उद्दे"य पर्यावरण और ि"ाक्षा में गुणवत्ता पैदा करना था। सन 1965 में सर्वप्रथम अमेरिका के कीले वि"वविद्यालय द्वारा पर्यावरण को ि"ाक्षा के पाठयक्रम के अनिवार्य अंग के रूप में करने का निर्णय लिया गया। सन 1972 में

संयुक्त राष्ट्रसंघ द्वारा मानव और पर्यावरण नामक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन के आयोजन के साथ पर्यावरण विषय के अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप ग्रहण किया। इस सम्मेलन में यूनाइटेड ने"ांस एनवायरमेंट प्रोग्राम की स्थापना हुई। यूनेस्को के संयुक्त प्रयास से 1975 में इन्टरने"ानल एनवायरमेंटल एजुके"ान प्रोग्राम की स्थापना हुई। आई0ई0इ0पी0 तत्वाधान में बेलग्रेड में एक अन्तर्राष्ट्रीय कार्य"ाला (1975) का आयोजन किया गया। बेलग्रेड चार्टर में पर्यावरण जागरूकता ज्ञान अभिवृत्ति, कौ"ाल, मूल्यांकन, सहभागिता आदि उद्दे"यों को निर्धारित किया गया। क्षेत्रीय मीटिंग बैकांक (1976) में पर्यावरण ि"ाक्षा कार्यक्रम, व्यक्तिगत प्रि"ाक्षण, अनौपचारिक पर्यावरण ि"ाक्षा की व्यवस्था, पर्यावरण ि"ाक्षा की ि"ाक्षण सामग्री तैयार करना। जार्जिया के तिबिल्सी, नगर में पर्यावरण, ि"ाक्षा पर अन्तर्राष्ट्रीय तिबिल्सी सम्मेलन (1977) का आयोजन किया। पर्यावरण विषय को प्रभावी बनाने के लिए बैकांक क्षेत्रीय मीटींग (1980) का आयोजन किया गया। 5 जून 1990 में आस्ट्रेलिया में 'पृथ्वी संधि' का प्रस्ताव किया गया। इस अवसर पर 1990 से 2000 तक के द"ाक को 'अर्थरिपेयर द"ाक' के रूप में बनाने का नि"चय किया। इस सन्धि के प्रस्तावों का दुनिया के सभी दे"ाो ने अनुमोदन किया। पर्यावरण की रक्षा हेतु रियोंडी, जेनरो (ब्राजील) में एक विराट सम्मेलन 'पृथ्वी ि"ाखर सम्मेलन' (1992) का आयोजन संयुक्त राष्ट्र द्वारा किया गया। वि"व में हजारों संगठन तथा संस्थाएँ आज पर्यावरण के कार्यों से जूड़ी है।

ये संस्थाएँ न केवल व्यवहारिक रूप से सक्रिय है वरन इनमें से कुछ अनुसंधान ि"ाक्षा और प्रि"ाक्षण कार्य भी करती है। इनमें से छः अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं ने न केवल शोध कार्य किया वरन् पर्यावरण संतुलन के लिए सक्रिय योगदान भी दिया है। इसमें प्रमुख संस्था है – फ्रेण्ड्स ऑफ द अर्थ, ग्रीनपीस, संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण प्रोग्राम, वि"व संरक्षण मानीटरिंग केन्द्र, वि"व संरक्षण यूनियन और वि"व वन्य जीवन फण्ड आदि।

fu"d"k

इस अध्याय में पर्यावरण सम्बन्धी सभी सूचनाएँ उपलब्ध है। जिसमें पर्यावरण की परिभाषा, पर्यावरण की संरचना, पर्यावरण के संघटक, पर्यावरण प्रकृति एवं वन्य आचार संहिता, पर्यावरण का संस्कृति और समाज से सम्बन्ध, पर्यावरण प्रदूषण, प्रदूषण के मानवीय तथा प्राकृतिक स्रोत, पर्यावरण प्रदूषण के प्रकार, मुख्य रूप से वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण तथा ध्वनि प्रदूषण की चर्चा, प्रमुख पर्यावरणीय समस्याएँ जिसमें मरूस्थलीकरण, हरित गैस प्रभाव, अम्ल वर्षा, विश्वव्यापी तापन, अल–नीनो, स्मोज, शहरीकरण आदि की ओर संकेत किया गया तथा भारतीय पर्यावरण और विश्व पर्यावरण को बहुत ही अर्थपूर्ण ढंग से अभिव्यक्त किया गया है।

v/;k;&nks

समकालीन कविता : सीमांकन और स्वरूप

1- lhekdu dk loky
2- ledkyhurk dh dkyijd vkSj ck/kijd igpku
3- ledkyhu dfork dk Lo:i
4- ledkyhu dfork dh eq[; izo`fÙk & i;kZoj.k fpark
5- ledkyhu dfo Kkusanzifr dk dkO;&lalkj

fu"d"kZ

हिन्दी साहित्य के हजार वर्षों के इतिहास पर यदि हम अपनी दृष्टि केन्द्रित करे, तो पाते है कि चाहे वह आदिकालीन रासो वीर रस की कविता हो, या सन्तों की भक्ति–भावना से ओत–प्रोत कविता हो, या श्रृंगार एवं देह उत्सवों पर लिखी जाने वाली कविता हो या फिर आधुनिकता को ध्वनित करने वाली हो, सब में यदि कोई शा”वत सत्य या तत्व है तो वह है अपने समय के यथार्थ से सीधी मुठभेड़। जीवन के भीतर से पाये गये दृ”य में अभिव्यक्त कुछ ऐसे बिन्दु है जो कई पीढ़ियों को एक मंच पर लाते हैं वह है समकालीनता का मंच। इसलिए समकालीनता को अर्जित करना होता है, अपने समय के साथ मुठभेड़ करते हुए, उसमें हस्तक्षेप करते हुए, हर रचनाकार को अपनी समकालीनता स्वयं अर्जित करनी होती है। दूसरे शब्दों में – समकालीन का सामान्य अर्थ वह चेतना जो अपने काल या समय से संबद्ध हो और सामयिक संदर्भों के दबावों और तकाजों को स्वीकार करती हुई काव्य को ताजगी व नवीनता प्रदान करने में समर्थ हो। समकालीनता एक बहुआयामी और व्यापक शब्द है जो आधुनिकता का आधार तत्त्व भी है। तथा अनुभूत सत्य और भोगे हुए यथार्थ मूल्यगत विघटन एवं संक्रांत मनःस्थितियों का चित्रण भी है।

1- Ihekdu dk Ioky

समकालीनता के विषय में आनंद प्रका”ा दीक्षित का कहना है –

> ''समकालीनता काल बोध के लिए प्रयुक्त की जाने वाली भाव वाचक संज्ञा ही नही वरन सर्जना के धरातल पर जीवंतता प्रदान करने वाली सर्जनात्मक शक्ति है और सर्जक के लिए एक ऐसा उत्स है जो कृति को नवीनता प्रदान करता है। तथा ग्रहीता को कृति से आलीय भाव से जुड़ जाने का सम्बन्ध देता है। सामान्य मनुष्य के लिए समाज और दे”ा के वृत्त में उसके जीवन में घटित ही समकालिक है जबकि संवेदन”ाील मनुष्य इनका अतिक्रमण सम्पूर्ण वि”व में मानवता से अपना सम्बन्ध जोड़ता है।''[1]

[1] ''समकालीन हिन्दी कविता और रघुवीर सहाय'' ले0 डा0 गीता सक्सेना 'मृगतनया' प्रका”ान 1एफ0–9, दादा बाड़ी कोटा 7 324009 प्र0स0 – 2004

समकालीनता रचना में एक दृष्टि की सृष्टि करती है जिसमें अतीत समाहित हो जाता है और भविष्य की संभावना का स्पंदन होता है। समकालीनता रचना को नवीनता, अन्तः आकर्षण, स्थैर्य एवं शा"वता प्रदान करता है। समकालीन काव्य धारा की कविताओं का संकेन्द्रक विचार तत्व है। इसमें प्रत्यक्षानुभूति पर अधिक बल दिया जाता है। अतएव समकालीन कविता के सीमांकन की दो दिशायें स्पष्ट होती हैं, पहली कालपरक और दूसरी बोधपरक।

2- ledkyhurk dh dkyijd vkj ck/kijd igpku

हिन्दी साहित्य में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद विभिन्न काव्यान्दोलनों का आरम्भ हुआ। स्वतंत्रता पूर्व की काव्य–धाराओं का काल निर्धारण जहाँ हम स्पष्ट रूप से कर पाते है वही स्वतांत्र्योत्तर काव्य–धाराओं के बीच स्पष्ट विभाजक रेखा खीचना जटिल है। ऐसी स्थिति में कविता के सामने भी असमंजस की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। हिन्दी कविता के क्षेत्र में प्रयोगवाद के प"चात् जन्मी नयी कविता का सम्पूर्ण आन्दोलन, मोहभंग, अवसाद, खिन्नता, श्रम के परायेपन की पीड़ा, आत्म निर्वासन, अकेलापन, संत्रास, कुण्ठा, घुटन आदि का भावबोध लेकर आया।'' यहाँ तक कि 1956 के बाद की कविता में तो निषेध का एक व्यापक वातावरण समा गया। व्यवस्था के प्रति एक आक्रामक विद्रोह की भावना भी क्रम"ाः बलवती होने लगी। दिखाई देने लगा कि हमें जिन नयी मानवीय लोकतांत्रिक उपलब्धियों की कामना थी वह एक पूरी समर्थ पीढ़ी ने विकृत कर दी है। भविष्य की आ"ाा और दिलासे सब झूठे पड़ गये। (नयी कविता : सीमाएँ और संभावनाएँ, गिरिजा कुमार माथुर प्रसाद)

सन् 1951 से सन् 1960 तक की नयी कविता में कथ्य एवं ि"ाल्प से जो बासीपन की स्थिति पैदा हुई थी उसी रूढ़िग्रस्तता के प्रतिक्रिया स्वरूप 1960 के बाद अनेक काव्यान्दोलन प्रारम्भ हुए। साठ के द"ाक में ही मोहभंग और निरा"ाा का एक नया दौर शुरू हो गया। सत्ता, जनतंत्र, का खोखला पन और उसमें आम आदमी की दुर्द"ाा, निि"चत ही साठोत्तरी कवियों की चिंता का विषय है। मुक्तिबोध

ने लिखा है, ''स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त भारत में एक और अवसरवाद की बाढ़ आई। िशक्षित मध्यवर्ग में भी उसकी जोरदार लहरें पैदा हुई। साहित्यिक लोग भी उसके प्रवाह में बहे। इस भ्रष्टाचार और स्वार्थ परता की पा"र्व भूमि में नयी कविता के क्षेत्र में पुराने प्रतिवाद पर जोरदार हमले किये गयें और कुछ सिद्धान्तों की एक रूप रेखा भी प्रस्तुत की गई। ये सिद्धान्त और उनके हमले वस्तुतः उस शीत–युद्ध के अंग थे जिनकी प्रेरणा लंदन और वाि"ागटन से ली गई थी।''[2]

संभवतः यह वजह है कि विद्वानों का एक वर्ग स्वाधीनता आन्दोलन की स्मृति और मोहभंग से मुक्ति के कारण 1970 के बाद की कविता को समकालीन कविता की संबल देता है।

15 अगस्त 1947 को अंग्रेजों का शासन समाप्त होने के साथ ही आजाद भारत की बागडोर नेहरू के हाथों में आई, स्वतंत्रता प्राप्ति के प"चात् नेहरू युग (1947–1962) की घटनाओं ने जन–साधारण के मन में एक मोहभंग की स्थिति उत्पन्न कर दी। ''आजादी के प्रति हमारे मोहभंग में अधिक समय नही लगा और पिछले चार–पाँच द"ाकों में जो पीढ़ी वयस्क हुई उसने देखा प्रजातंत्र के नाम पर व्यक्ति तंत्र, राजनीति का गिरता चरित्र, भ्रष्टचार का सरलीकरण, मुखौटो वाले चेहरे, दूसरे नाम से मध्यकाल की वापसी।''[3]

मोहभंग की इस स्थिति में जनविरोधी व्यवस्था के विरूद्ध मुक्ति–प्रसंग, पटकथा, मोचीराम, बलदेव खटीक, जैसी कविताएँ छठे द"ाक के अंत में सामने आने लगी थी। इसलिए कतिपय आलोचक कविता को धुमिल की विद्रोह कविता और 1967 के नक्सलवादी आन्दोलन से जोड़ने का आग्रह करते हैं तो कुछ विद्वान 1962 के भारत–चीन युद्ध से उत्पन्न मोहभंग से।

अब सवाल उठता है कि समकालीन कविता की शुरूआत कहाँ से मानी जाएँ? मोटेतौर पर नयी कविता के बाद की कविता को समकालीन कविता कह सकते है क्योंकि यहाँ कविता तर्क और संवेदना की सम्मिलित भूमि पर अपने समय

[2] नयी कविता का आत्म संघर्ष तथा अन्य निबंध – मुक्ति बोध – पृ0 45
[3] प्रेम शंकर : समकालीन कविता और जीवन यथार्थ, आलोचना अंक 1985, अक्टूबर–दिसम्बर, पृ0 47

का आकलन करती है। सन् 1962 में चीन से युद्ध, 1965 में भीषण अकाल, 1965 में और 1972 में पाकिस्तान के युद्धों ने स्थितियों को काफी असंतोषजनक बनाया इसके बाद 1967 के आम चुनाव में कांग्रेस, तमिलनाडू और उड़ीसा समेत लगभग दस राज्यों में गैर–कांग्रेसी सरकारे बनी। ''1975 में आपातकाल की घोषणा भी हमारी अब तक की पूरी राजनीतिक व्यवस्था पर बड़ा आघात था। इससे भी बड़ा आघात यह था कि आपात काल की समाप्ति के बाद जो दूसरी आजादी हमें मिली वह देखते–देखते धूल–धूसरित हो गयी।''[4]

समकालीनता से अभिप्राय समय को व्यक्त करने वाली धारणा से है। समकालीन न तो प्रवृत्ति के आधार पर बनाई गई श्रेणी है, न विचारधारात्मक श्रेणी, जैसा की नाम से ही स्पष्ट है यह अपने समय को व्यक्त करने वाली धारणा है। अतः जिस युग में हम जी रहे है उसे समकालीन युग कह सकते हैं पर सवाल यह है कि उस युग के शुरूआत और अंत का निर्धारण हम किस आधार पर करेंगे? इसलिए प्र"न यह भी उठता है कि युगों के अंतर को हम किन आधारों पर तय करते हैं। हालाँकि आज समकालीनता के पर्याय रूप में समसामयिकता, सामयिकता, तात्कालिकता, वर्तमानता आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है। जिस युग में हम जी रहे हैं वह अगर समकालीन है तो वह वर्तमान से कैसे अलग है। 'वर्तमान' शब्द जहाँ सिर्फ अपने काल का द्योतक है वही समकालीनता काल के बोध पर आधारित होते हुए भी काल बोधक नहीं है। इसलिए समकालीनता में केवल वर्तमान का अं"ा नहीं रहता, अतीत की निरंतरता भी रहती है। यही कारण है कि किसी भी समय समकालीनता में एक से अधिक प्रवृत्तियाँ उलझी हुई चलती है क्योंकि समाज भी तो अनेक प्रकार की शक्तियों की क्रिया–प्रतिक्रिया से बनता है। कुछ विद्वानों का मानना है कि समकालीनता ऐसी प्रक्रिया है जिसमें वर्तमान के साथ बोध के सामंजस्य का सतत द्वन्द्व मौजूद रहता है। किसी भी ऐतिहासिक क्षण (युग, आन्दोलन, प्रवृत्ति) में बोध और वास्तविकता के सामंजस्य से समकालीनता का ढ़ाँचा

[4] "ांभु गुप्ता : नकार और अंधेर और अनिर्णय के खिलाफ कविता ...... वसुधा अंक–8, 29–30 दिसम्बर 1994, पृ0 117

जन्म लेता है। समकालीनता में परिवे"ा का वि"ोष महत्व है। विजय कुमार ने लिखा है कि –

> ''समकालीन हिन्दी कविता में परिवे"ा महत्वपूर्ण है जिसके बीच समस्त लीला व्यापार घटित होता दिखलाई पड़ता है। एक ओर व्यक्तियों और स्थितियों की खास स्थानीयता की पहचान और दूसरी ओर उनके संदर्भों में सार्वजनिकता के तत्व ढूँढ लेने की क्षमता इन दो विपरीत से दिखलाई पड़ने वाले गुणों की परस्पर संबद्धता ने आज की कविता के समूचे कन्टेन्ट को बहुत राजनीतिक बना दिया है।''[5]

कई बार समकालीनता और समसामयिकता की अवधारणा को लेकर भी असमंजस की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। दोनों का अर्थ एक ही ग्रहण कर लिया जाता है लेकिन समसामयकिता समय का बोधक तो है पर वहाँ चिरस्थायी होने की संभावना कम है जबकि समकालीनता में यह संभावना निहित है। इसका कारण यह है कि समकालीनता किसी सिद्धान्त या आंदोलन के तहत विकसित होने वाली अवधारणा नही है। बल्कि वह समाज को अपने से पूर्ववर्ती कविताओं की तुलना में ज्यादा सतर्कता, प्रखरता और चौकन्नेपन के साथ ग्रहण करती है। जब कोई अवधारणा सतर्कता से अपने समय की पड़ताल करती है तो वर्तमान के साथ भूत एवं भविष्य के प्रमुख, अन्तर्विरोधो, विरोधाभासों और विसंगतियों की पहचान करती है। रघुवीर सहाय ने लिखा भी है कि –

> ''मेरी दृष्टि में समकालीनता मानव भविष्य के प्रति पक्षधरता का दूसरा नाम है। .... मनुष्य की प्रतिभा और सामर्थ्य की अनंत संभावनाओं का हार अपने अनुभव के लिए खुला रखकर सप्रयत्न उसके वर्तमान को बदलने में जो संलग्न होता है वही समकालीनता का धर्म निर्वाह करता है।''[6]

---

[5] कविता की संगत, विजय कुमार, पृ0 20
[6] समकालीन काव्य – यात्रा, नंद कि"ाोर नवल, पृ0 8

समकालीनता पर बात करते हुए यह बताना भी महत्वपूर्ण होगा कि इसका अर्थ किसी कालखण्ड के वि"ोष परिस्थितियों तक ही समझना पर्याप्त नही है बल्कि उन्हें ऐतिहासिक अर्थ में समझना तथा उनके मूल स्रोत तक पहुँचना भी इसका प्रमुख गुण है। इसलिए समकालीनता का अभिप्राय तात्कालिकता से भी नहीं लगाया जाना चाहिए। कविता की यह वि"िाष्टता है – वह तात्कालिकता का अतिक्रमण करती है क्योंकि कविता 'जो है' के साथ 'जैसी होनी चाहिए' अर्थात् संभात्यता और भविष्य पर बल देती है। इस प्रकार तात्कालिकता वि"ोष की अभिव्यक्ति है तो कविता सार्वभौम की। धुमिल ने लिखा है कि –

> ''समकालीनता क्या है? रूप रंग और अर्थ के स्तर पर आजाद रहने की सामने बैठे आदमी की गिरफ्त में ने आने की तड़प, एक आव"यक और समझदार इच्छा जो आदमी को आदमी से जोड़ती है। .... स्वतंत्रता की तीव्र इच्छा और उनके लिए पहल तथा उस पहल के समर्थन में लिखा गया साहित्य ही समकालीन साहित्य है।''[7]

समकालीन कविता में पुराने मध्यवर्ती और युवा कवियों की पीढ़ी लगभग साथ–साथ सर्जनरत है और कुछ अपवादों को छोड़कर सभी सामयिक जीवन के दबावों को महसूस कर रहे हैं अगर अंतर है तो वह दृष्टि और अभिव्यक्ति का। यहाँ एक ओर नागार्जुन त्रिलोचन, एवं शम"ोर जैसे कवियों को लेकर सप्तक से जुड़े कवि केदार नाथ सिंह एवं कुँवरनारायण जैसे रचनाकार अपने अनुभवों के द्वारा नयी काव्यात्मक पहचान को प्रतिष्ठित कर रहे थे वही दूसरी ओर ज्ञानेन्द्रपति, राजे"ा जो"ाी, उदय प्रका"ा, अरूण कमल, आलोक धन्वा, विष्णु खरे, प्रयाग शुक्ल, संजय चतुर्वेदी, अ"ोक वाजपेयी, मंगले"ा डबराल, जैसे रचनाकार अपने–अपने स्तर पर समय और समाज की गति"ाीलता का परीक्षण कर रहे हैं इसी अर्थ में समकालीन कविता, अपने पूर्ववर्ती कविताओं से प्रवृत्तिगत बदलाव की कविता है। यह बदलाव पारम्परिक कविता का एकदम से निषेध न होकर जीवन के प्रति

---

[7] समकालीन हिन्दी कविता : ए अरविंदाक्षन, पृ0 59

निरंतर अपनी पहुँच बनाये रखने का बदलाव है। इस आधार पर समकालीन कविता के तीन दौर माने जा सकते है। पहला दौर 1950 से 1960 तक का है, इस दौर को भी तीन उपवर्गों में विभाजित किया जा सकता है। पहले वर्ग में शम"ोर, अज्ञेय, कुँवर नारायण, रघुवीर रहाय, नरे"ा मेहता, आदि कवियों की कविताएँ आती है। दूसरा वर्ग लोकप्रिय कविता का है जिसमें भवानी प्रसाद मिश्र, भारत भूषण अग्रवाल, गिरजा कुमार माथुर, आदि कवियों की कृतियाँ आती है। तीसरे वर्ग में मुक्तिबोध सर्वे"वर दयाल सक्सेना, जैसे कवि आते है। इस पूरे दौर में कविता अपने परिवे"ा की वास्तविकता का उद्घाटन करती है और उसे बदलने की प्रतिबद्धता के निर्वाह का सार्थक प्रयास करती है।

समकालीन कविता का दूसरा दौर (1960 से 1970) नकार, निषेध, विद्रोह, आक्रो"ा, अस्वीकृति का है। इस समय अनेक काव्यान्दोलन उभरकर सामने आए। भूखी पीढ़ी बीटनिक पीढ़ी युयुत्सावादी पीढ़ी कविता, सनातन सूर्योदयी कविता, अकविता आदि। इनमें से अधिकां"ा काव्यान्दोलन अल्पजीवि रहे किन्तु अकविता ने अपना वि"ोष स्थान बनाया। इस आन्दोलन के मुख्यतः दो पक्ष है, पहले पक्ष में वे कविताएँ आती है जिसमें वर्तमान परिवे"ा की विसंगति को उजागर करके उसके प्रति नकार, निषेध, अस्वीकृति के भाव को अभिव्यक्ति दी गई। इसे वर्ग में जगदी"ा चतुर्वेदी, श्याम परमार, सौमित्र मोहन, गंगा प्रसाद विमल, आदि की रचनाएँ है। दूसरा पक्ष उन कवियों का है जिन्होंने काव्य भाषा का आरम्भ तो अकविता आन्दोलन से किया किन्तु कालांतर में लोहियावादी समाज से प्रेरित होकर तात्कालन व्यवस्था के विरूद्ध विद्रोह एवं आक्रो"ा को कविता का विषय बनाया। राजकमल चौधरी, धूमिल, रमे"ा गौड़ इसी वर्ग के कवि हैं।

समकालीन कविता की तीसरा दौर 1970 से अब तक का है। इस दौर की कविता में सामाजिकता आग्रह प्रधान है। इसलिए ''समकालीन वही नही होता जो समकालीन की तरह लगता है बल्कि वह भी हो सकता है जो बिल्कुल वैसा न लगे।''[8]

---

[8] साभार – समकालीन काव्य यात्रा, नंद कि"ोर नवल, नामवर सिंह

इस दौर के कवियों में चन्द्रकांत देवताले, कुमार विमल, विष्णुखरे, राजे”ा जो”ाी, अरूण कमल, मंगले”ा डबराल, केदारनाथ अग्रवाल, उदय प्रका”ा, लीलाधर जगूड़ी, बद्रीनारायण इत्यादि के नाम उल्लेखनीय हैं।

3- ledkyhu dfork dk Lo:i

समकालीन कविता अपने समय के यथार्थ का अभिव्यक्ति है। समकालीन कविता उन विम”ाों को उजागर करती है जो ज्वलंत होते हैं। समकालीन कविता में जन सामान्य की हित चिंता, व्यवस्था, विरोध का उग्रतेवर राजनीतिक अन्तविरोधों पर व्यंग्य साम्प्रदायिकता युद्ध का विरोध आतंकवाद पर्यावरण चिंता, आदिवासी जीवन की पीड़ा रंग भेद और औपनिवे”ाक शोषण का विरोध, आदि प्रवृत्तियाँ समकालीन कवियों की कविताओं में दिखाई देता है। समकालीन कविता के मनुष्य केन्द्रित होने की चर्चा विस्तार से इसलिए कि कुछ समय पूर्व कविता में फूल, पेड़ तथा सौर्न्दयीकरण की उपस्थिति देखकर समीक्षकों को यह लगने लगा था कि कविता मानवीय सरोकारों से दूर जा रही है। लेकिन समकालीन कविता की मूल चिंता मनुष्य हित की चिंता है। कविता का विषय जो मनुष्य है, वह अपने अन्तर्विरोधों, अभावों और मृदुकटु तेवरों से युक्त जनसाधारण या सर्वहारा का पर्याय है। समकालीन कवि मदन डागा ने जनसाधारण की ओर इ”ाारा किया है –

मैं अकेला कभी न था
और न आज हूँ
क्योंकि मै तो
सर्वहारा की आवाज हूँ।[9]

समकालीन हिन्दी कविता के केन्द्र में स्थित आदमी मुख्यतः सर्वहारा है। इस सर्वहारा को कविता में ''लोकराम'' मामूली आदमी भोलानाथ 'बलदेव खटिक' रामसेवक 'हरिया' आदि विभिन्न नामों से और रूपों में व्यक्त किया जाता है। यथार्थ की तीखी पहचान और जन साधारण की दुर्द”ाा के लिए जिम्मेदार तत्त्वों की

[9] समकालीन कविता का परिदृ”य – डॉ0 वेदप्रका”ा अमिताभ, अनंग प्रका”ान, बी0–202 गली मंदिर वाली उचरी घोण्डा, प्र0स0 – 2000, पृ0 26

ि"ानाख्त को रामदर"ा मिश्र की कविता 'दिन एक नदी बन गया' में व्यक्त हुआ है। धूमिल के कविता संग्रह 'सुदामा पाण्डे का प्रजातंत्र' में जन संघर्ष का खुला आह्वान है। वे इस सत्य से अवगत है कि अभी जन साधारण निर्णायक युद्ध के लिए पूरी तरह से तैयार नहीं है। फिर भी आज के माहौल में उचित कार्यवाही हो गई है। धूमिल आगे लिखते है कि –

उठो और हरियाली पर हमला करो
जड़ो से कहो की अंधेरे में
बेहिसाब दौड़ने के बजाय
पेड़ों की तरफदारी के लिए/
जमीन से बाहर निकल पड़े
बिना इस डर के कि जंगल
सूख जायेगा।[10]

अधिकतर कवि वस्तु स्थिति से अवगत है सर्वहारा के अन्तर्विरोधों और वर्ग शत्रुओं की सम्मिलित और संगठित शक्ति से पूरी तरह परिचित है इसलिए उनकी कविता में उग्र क्रांतिकारिता कही–कही है। वे स्थितियों का सही वि"लेषण करते हुए यथार्थ को उसकी सं"िलष्टता में आँकते हैं और उसका विरोध करते है। इसी सन्दर्भ में समकालीन कवि केदारनाथ सिंह ने कहा है –

मुझे थाने से चिढ़ है
मैं थाने की धज्जियाँ उड़ाता हूँ
मै उस तरफ इ"ाारा करता हूँ
जिधर थाना नहीं है।
जिधर पुलिस कभी नही जाती
मैं उस तरफ इ"ाारा करता हूँ।[11]

समकालीन कविता में बदलाव का आ"ाावाद बार–बार व्यक्त हुआ है। कवियों को लगता है जन साधारण में पर्याप्त समझदारी पनप रही है। उसे वर्ग

[10] समकालीन कविता का परिदृ"य – वेद प्रका"ा अमिताभ, पृ0 27
[11] यहाँ से देखो – केदारनाथ सिंह

शत्रुओं की पहचान होने लगी है और उसकी मूक असहायता सबल सिंहनाद का रूप ले रही है उनकी हुंकार से शी"ामहल कांपने लगेगें।

जिनका रंग काला ही सही पर
खून बहुत लाल है
जब वे अपनी पीठ सीधी करेगें
तो उनतालीसवीं मंजिल के सरमायेदार
भरभराकर अपनी लंबी घुमावदार सीढ़ियों पर
फना हो जायेगें।[12]

समकालीन कवि हिंसा को अपना समर्थन देते हुए कोरी भावूकता से संचालित नहीं लगता। उसे पता है कुछ शाषकों के अंत से कुछ नही होगा। यदि अधिसंख्यक 'सामान्यजन' महज तमा"ाबीन बने हुए हो। अतः समकालीन कवि पूरी तैयारी के साथ सही समय पर चोट करने का हामी है। इस सोच को अनिल जनविजय की कविता 'गोरिल्ला' के साक्ष्य से बखूबी समझा जा सकता है। इस कविता में कवि सामान्यजन को वही रणनीति अपनाने की सलाह देता है जिसे आज तक शोषक तत्व अपनाते रहे है।

फसल पक गई/हथियार तेज करो/फसल कट रही है/
तैयार हो जाओ/फसल गाड़ी पर लद गयी है/कूद पड़ो,
वार करो/यह फसल तुम्हारी है/तुम्हारे खेत की/अब ये
खेत भी तुम्हारे है।[13]

विनोद दास के साथ बातचीत के दौरान केदारनाथ सिंह ने कहा था कि ''कविता खुद क्रांति नही करती लेकिन क्रांति के उपयुक्त वातावरण बनाने में उसकी भूमिका असंदिग्ध है। कविता क्रांति ले आयेगी, ऐसे खु"ाफहमी मैनें कभी नहीं पाली, क्योंकि क्रांति एक संगठित प्रयास का परिणाम होती है। जो कविता के दायरे के बाहर की चीज है। इसलिए बेहतर होगा कि हम कविता से वही माँग करे

[12] प"यंती : कविता वि"ोषांक, पृ0 134
[13] 'प्रसंग' स0 शंभु बादल, प्रवे"ांक

जो वह दे सकती है। मेरी मान्यता है कि अच्छी कविता क्रांति के उपयुक्त वातावरण बनाने में सैकड़ों राजनीतिक प्रस्तावों से कही ज्यादा काम करती है। कविता यही कर सकती है।''[14] केदारनाथ सिंह का यह कथन अधिकतर समकालीन कवियों की मानसिकता का प्रतिनिधित्व करती है। समकालीन कविता में क्रांति के लिए तैयार हो रहे सामान्य जन को कवि का समर्थन इसी दृष्टिकोण के तहत देखा जाना चाहिए।

समकालीन कविता में तात्कालिक प्र"नों और समस्याओं से साक्षात करने की प्रवृत्ति उल्लेखनीय है। भोपाल गैस काण्ड और पंजाब समस्याओं से जुड़े आतंकवाद पर लिखी गयी कविताएँ इसका ज्वलंत उदाहरण है। पंजाब समस्या को चाहे अंग्रेजो की सौगात मानी जाय या असमान विकास से उत्पन्न असंतोष की देन या हिन्दुओं की कथित आधिपत्य की प्रतिक्रिया, इसमें कोई विवाद का विषय नहीं है कि अपने सम्पूर्ण दे"ा को मानस को झकझोरा है। 'आपरे"ान ब्लू स्टर' से लेकर इदिरा गाँधी की हत्या और बाद के दंगों तक हिंसा, अमानवीयता और क्रूरता का एक लंबा सिलसिला है जिसके लिए धार्मिक संकीर्णता, पुनरूत्थानवाद, राजनीतिक अवसरवाद के साथ–साथ पंजाब के एक खास वर्ग की आर्थिक राजनीतिक आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति भी जिम्मेदार है। बस, रेलों में बम विस्फोट, निर्दोषों की हत्या, पुलिस द्वारा संदेहव"ा निर्दोष सिखों का उत्पीड़न आदि घटनाएँ चौकाती है। इन हादसों पर समकालीन कवि इससे जुड़ी आतंकवाद की कई स्तरों से उजागर करने का प्रयास किया है क्योंकि आतंकवाद उग्रवाद आज की सबसे बड़ी समस्या बनकर सामने आयी है।

समकालीन कवि महेन्द्र भटनागर की कविता 'आतंक के घेरे मे' उस ओर इ"ाारा करती है जो आतंवाद के मूल में है। 'आरजू' नामक कविता में महेन्द्र भटनागर ने जीवन पर धर्म और ई"वर की गहरी पकड़ का उल्लेख करते हुए कल्पना की है एक दिन दुनिया के प्राणी ई"वर से अनभिज्ञ होगे। वे कहते है –

[14] ि"ाखर, दूसरा अंक, पृ0 15

फिर
न मंदिर होंगे
ना मस्जिद
ना गुरूदारे
ना गिरजाघर[15] –

आतंकवाद का भय वि"व पर इस प्रकार हावी हो गया है। लोगों के मन में यह बैठ गया है कि राह चलते या कही यात्रा करते हुए व्यक्ति कब हादसे का ि"ाकार हो जायेगा, कोई नहीं जानता। समकालीन कवि ऋतुराज की कविता 'पंजाब' उस असुरक्षा और आतंक का तीखा बयान करती है जिसे कई सालों से पंजाब के बहुत से निर्दोष व्यक्ति झेलने को अभि"ाप्त है। वह कहते है –

कोई भी दीवार अब सुरक्षित नही है
फट पड़ेगी छतें
हर कोने में अंधेरा हमला करने को तैयार है
आदमी ने पहचानी है मौत
वह दीवार से चिपका जा रहा है
लेकिन छत से ऊपर बैठी चील उड़ गयी है
देने खबर कि एक छिपे आदमी की हत्या हो गयी है।[16]

'चील' यानी कि मांसाहारी पक्षी का उड़ना हिंसा के उभार और मानवता के चील–कौवों का आहार बनने की त्रासदी की ओर संकेत करता है। जिनके हाथो में व्यवस्था की बागडोर है ये बिल्कुल असहाय और अकर्मण्य लगते है। इस विडम्बना को व्यक्त करते हुए समकालीन कवि योगे"ा प्र"ाान्त ने लिखा है –

पहले मरते थे हैजे से, प्लेग से
आज कल मरते हैं
उग्रवादी तेज से
और हमारी सरकार कहती है
हम कर भी क्या सकते है।[17]

---

[15] आरजू – महेन्द्र भटनागर, समकालीन कविता का परिदृ"य – डॉ0 वेदप्रका"ा अमिताभ, पृ0 54
[16] सुरत–निरत, ऋतुराज, पृ0 90

समकालीन कवियों की चिंता आतंकवादी हवाओं से उत्पन्न भय की चिंता है। जो अकारण नही है तात्कालिक समय में आतंकवाद प्रमुख मानवीय जीवन के लिए सबसे बड़ा खतरा है। जो कही न कही मानव अस्तित्व को नुकसान पहुँचाने का प्रयास है। समकालीन कवि वि"वंभरनाथ उपाध्याय विध्वस्त कविता में सपाट ढंग से न कहकर इसे प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त किया है। वे कहते है –

आतंकवादी हवाओं में
भय से फड़फड़ाते पीपल से पूछा
लाल–लाल धाव खाए हरे गुलमोहर से
प्र"नाकुल पीले पड़ते कनेर
दह"ात में दूध उगलती जूही
दही की फुतकें फेंकती चॉदनी से दर्याफ्त किया
पता लगाया झौकों में झीम लेते नीमों से
प्रतिक्षण प्राण सुखाते रूण्डमुण्ड मरूस्थल से
यह शताब्दी का अंत है या दे"ा का।[18]

आतंकवाद ने एक ओर जहाँ दे"ा की एकता और अखंडता को खुली चुनौती दी है। वही आम आदमी की भीरू, संत्रस्त्र और कायर भी बनाया है। पंजाब के हिन्दी कवि कमले"ा भारतीय ने 'ला"ा' कविता में तब और अब की जो स्थितियाँ बयान की है। वे यह बताने के लिए पर्याप्त है कि जनतांत्रिक व्यवस्था के बावजूद औसत आदमी किस कदर सहमा हुआ और भयभीत है। इसी सन्दर्भ समकालीन कवि प्राणे"ा कुमार ने आतंकवादियों द्वारा मारे गये युवकों को शहीद बताते हुए लिखा है कि इनका संघर्ष और बलिदान व्यर्थ नहीं जायेगा। उनके अनुसार –

भले ही न लिखी जाय
तुम्हारी संघर्ष गाथा
किताबों के पन्नों पर ओ संघर्ष"ील युवक
लेकिन अनजान रास्तों में

---

[17] अभिनव भावांजलि, अप्रैल 1989, नरमुण्डों का व्यापार, पृ0 6
[18] वर्तमान साहित्य, सितम्बर 1989, पृ0 33

तुम्हारे जिस्म की धूल
कई पीढ़ियों को संघर्ष”ील करेगी
ओ सतत संघर्ष युवक।[19]

रेलों–बसों में बम रखकर निर्दोष व्यक्तियों को मार देने की अनेक घटनाएँ गत वर्षों में घटी है। लोग न घर में सुरक्षित है न बाहर। हर तरफ आतंक का कहर जारी है। हर तरफ आतंकी भय दिखाई देता है तथा आतंक के दुष्परिणाम उत्पन्न कराह की वेदना भी सुनाई देती है। समकालीन कवियत्री रेखा ने अपनी कविता में आतंकवादी गतिविधियों को व्यक्त किया है। उनकी एक कविता ''बच्चा माँ'' में वह कहती है –

आतंक हम देख सकते हैं
वह बस में चढ़ता है
सीट पर बैठता है
× × ×
साथ बैठे आदमी से
फसलों का हाल पूछता है
फिर एक सुनसान जगह
पास बैठे आदमी को
गोली मार देता है।[20]

गोपाल दास 'नीरज' समकालीन कवियों में महत्वपूर्ण कवि है। वे आतंकवादी गतिविधियों को बखूबी अपनी कविताओं में उभारने का प्रयास करते है। वह आतंकवादी समस्या के अन्तर्विधों और दुस्परिणामों को रेखांकित करने का प्रयास किया है। तथा साथ ही मानवीय मूल्यों के प्रति पक्षधरता जताई है। नीरज की कविताओं में आतंकवादी भयावहता की गूँज सुनाई देती है। जिसका जिम्मेदार वह मजहबी मांसिकता को ठहराते है। अंततः वह मजहब के बनाने का प्रस्ताव करते है। वह कहते है –

[19] यादो के आर–पार : सं0 सुबाष चन्द्र सक्सेना, महे”ा दिवाकर, पृ0 61
[20] नवान्न, जनवरी–मार्च 1988, पृ0 75

अब तो मजहब कोई ऐसा भी चलाया जाये
जिसमें इंसान को इंसान बनाया जाये।[21]

समकालीन कवियों की कविता काल को अंकित करने की कविता है। तथा साथ में सार्थक सर्जन"ीलता भी उसका उद्दे"य है। समकालीन कवि तत्कालीन समय और समाज में उत्पन्न तमाम प्रकार की घटनाओं तथा सामाजिक वैमन"यता को भी उजागर करने का प्रयास किया है। समकालीन कवि अपने समय की तमाम विपत्तियों तथा आपदाओं के साथ–साथ मानव द्वारा उत्पन्न की गई सामाजिक आपदाओं को भी प्रकट किया है चाहे वह भोपाल गैस त्रासदी हो, चाहे, पंजाब की आतंकवादी समस्या हो, चाहे तिब्बत का जनसंघर्ष हो या फिर चाहे अयोध्या काण्ड हो। इन सबमें समकालीन कवियों ने तात्कालिक और सामयिक घटनाओं हलचलों, और समस्याओं के घात–प्रतिघात का परिणाम दखने का प्रयास किया है। क्योंकि कविता सहज हो जैसे जीवन की आंतरिक प्रक्रिया, बाहरी विसंगतियों हलचलों, और व्यतिक्रमों को झेलकर भी वह अपना संतुलन नही खोती।

अयोध्या में छः दिसम्बर 1992 को हुई घटना को कोई अयोध्या ट्रेजडी कहता है, कोई कुकर्म की संज्ञा देता है, कोई इसे गांधी का दूसरी शहादत मानता है, कोई इसे दे"ा विभाजन के बाद की सबसे महत्वपूर्ण घटना मानता है, कोई इसे 'हिन्दुत्व की अभिव्यक्ति न होकर उसका निषेध मानता है, कोई इसे हिन्दू स्वाभिमान की रक्षा तथा गुलामी का नष्ट होने का प्रतीक मानता है। पर अधिकतर कवियों ने अयोध्या काण्ड को 'सत्ता' की भूख और राजनीतिक कुचक्र से जुड़ा हुआ माना है। मान बहादुर सिंह कृत 'अयोध्या : छ दिसम्बर 1992' में उन्होंने कहा है –

हा–हा वि"वास मानो
तुम्हारे ठीक के ठीहे पर हलाल होने को
नतमस्तक गर्दनें पड़ी होगी
जब तक तुम्हारा अयोध्या रथ
दिल्ली नही पहुँच जाता।[22]

[21] नीरज की कविताएँ – गोपाल दास 'नीरज', पृ0 67

अयोध्या काण्ड धर्म से जुड़ा है। धर्म ही इस काण्ड का मुख्य कारण है। क्योंकि किसी भी समाज को दि"ाा निर्दे"ा करने का कार्य धर्म ही करता है लेकिन जब धर्मान्धता समाज में व्याप्त हो जाती तो कहीं न कही वह मानवता का ही हनन करती है। समकालीन कवि नरेन्द्र जैन ने अपनी कविता 'मैं कहूँगा' में तीखे स्वरों में धर्म की खबर लिया है। उन्होंने कहा है –

जानता हूँ मैं
धर्म अब वह दलाल है
जो सीधे सत्ता के कोठे तक ले जाता है।[23]

जिस धर्म संस्थान को आस्था का केन्द्र माना जाता रहा है जहाँ श्री राम भगवान का निवास माना जाता है, जहाँ के द"र्ान करने से लोगों को मुक्ति मिलती है, जहाँ हिन्दू मुस्लिम लगातार आपस में लड़ने के लिए मजबूर है तथा वे एक दूसरे के खून के प्यासे हैं वह अयोध्या है। लेकिन आज उस अयोध्या में मर्यादा और आस्था का प्रतीक कही खो गया है वहाँ बचा है तो सिर्फ और सिर्फ सत्ता–लिप्सा, हिंसक आचरण आदि अवमूल्य। इसी संदर्भ में समकालीन कवि शलभ श्रीराम सिंह अपनी कविता 'वनवास' में इसे व्यक्त करने का प्रयास किया है। वह कहते है –

सत्ता के मोह का वही वही वातावरण
वही वही आचरण हिंसा प्रतिहिंसा का
स्वार्थ और लिप्सा का वही आचरण ज्यो का त्यों
अयोध्या वापस लौटने का कोई मतलब नहीं।[24]

भारत में पहले धर्म का प्रगति"ाील स्वरूप रहा है। बाद में वह शासक वर्ग सामन्त वर्ग के लिए वह शोषण का माध्यम बन गया। शासक वर्ग की नीतियों द्वारा धर्म प्रतिमाभी नकारात्मक शक्ति बन जाता है। यह अनेक शोषकों द्वारा मेहनतक"ाों के उत्पीड़न और बौद्धिक दासत्व का हथियार बन गया है। यह शोषकों के शासन

[22] समकालीन कविता का परिप्रेक्ष्य – डॉ0 वेदप्रका"ा अमिताभ, पृ0 62
[23] वही, पृ0 62
[24] 'वनवास' – शलभ श्रीराम सिंह, समकालीन कविता का परिप्रेक्ष्य – डॉ0 वेदप्रका"ा अमिताभ, पृ0 63

को मजबूत करने का साधन है। लेनिन ने कहा है – ''मार्क्स का कथन है कि धर्म जनता के लिए अफीम है, धर्म सम्बन्धी पूरे मार्क्सवादी दृष्टिकोण का आधार िशल्प है। ऊपरी आधेय का एक अंग होने के कारण धर्म वैमनस्यपूर्ण वर्ग समाज में उस आर्थिक आधार को सुदृढ़ करने की कोिशश करता है जिस पर की समाज का पूरा ढ़ाँचा खड़ा होता है। धर्म शोषण व्यवस्था का सुदृढ़ करता है।''[25]

धर्म के नाम पर हिन्द और पाकिस्तान के शहर कस्बों में हुए दंगों में शमशेर की कविता 'हैवाँ' प्रासंगिक रूप से सही साबित हो रही है। उसका एक भी अंश इंसानियत के सौन्दर्य की गवाही नही देता। शमशेर बहादुर सिंह लिखते है कि –

> इतिहास में आपने पहले कभी/
> क्या कर्ण और हुसैन भी थे शमशेर/
> इंसान ही थे शायद वे भी/
> इंसान के हम दुश्मन ही सही।[26]

धर्म की आड़ में साम्राज्यवादी पूँजीवादी शक्तियाँ किस तरह शोषण हेतु ईसामसीह वाली चर्च संस्थाए और शस्त्र आयुध भेजती है। इन सबकी चर्चा समकालीन कवियों ने किया है। समकालीन कवि ओमप्रकाश निर्मल ने सन् 1971 की 'कल्पना' पत्रिका में धर्म के कल्पित रूप को नहीं वर्ण–वर्ग संघर्षों स्वरूप को अनावृत्त करते है। वे कहते है –

> ''सहलाओं इस देवभूमि के किसी अंग को सहलाओं/वह वेश्या का उरोज बन जाता है। जो भी आता है यहाँ – तांत्रिक, सरभंगी अघोर पंथी/गोरखनाथी, बीटनीक हिप्पी – कोई भी पाजी/आदर्श बन जाता है।''[27]

इस प्रकार समकालीन कविता समय के साथ होने वाली सभी सामाजिक, धार्मिक, समस्याओं से उत्पन्न दुष्परिणाम की ओर बखूबी ईशारा करती है।

---

[25] लेनिन – ''धर्म के प्रति मार्क्सवादी दृष्टिकोण'' उद्धत पहल–14, पृ0 33
[26] समकालीन कविता का परिदृश्य : रोहिताश्व, पृ0 67
[27] समकालीन कविता का परिदृश्य – रोहिताश्व, पृ0 68

समकालीन कवियों ने समकालीन विम”ों को मिथकीय प्रतीकों और सांस्कृतिक संदर्भ के माध्यम से व्यक्त करने का प्रयास किया है। मिथकीय प्रतीकों और सांस्कृतिक संदर्भो के माध्यम से समय की विकृतियों, संभावनाओं और आद”ों की अभिव्यक्ति हिन्दी कविता में हर युग में हुई है। लेकिन समकालीन कविता में इसका उपयोग अपेक्षाकृत विस्तृत और बहुआयामी है। ये प्रतीक और संदर्भ जनसमुदाय के लिए जाने पहचाने होते है और ग्राá होते हैं इसलिए कथ्य और ि”ाल्प दोनों स्तरों पर इनकी उपस्थिति कविता को संप्रेषणीय बनाती है।

समकालीन कवियों ने आज के अत्याधुनिक विम”ा स्त्री–विम”ा को सांस्कृतिक प्रतीकों के माध्यम से अभिव्यक्त करने की कोि”ा”ा की है। जिसके केन्द्र में ‘अहल्या’ को लिया गया है। ‘अहल्या’ के माध्यम से समकालीन कवि स्त्री–विम”ा को एक स्वर में व्यक्त किया है। वे अहल्या के उद्धार के माध्यम से स्त्री के उद्धार की बात करते हैं। वे अहल्या उद्धार की घटना को संवेदनात्मक धरातल पर आधुनिक परिप्रेक्ष्य के साथ उपस्थित किया है। समकालीन कवियों ने अलग–अलग शीर्षकों के माध्यम से कविताए लिखी है। जिसमें, शरण बिहारी गोस्वामी ने ‘पाषाणी’ बलदेव वं”ाी ने ‘आत्मदान’ रामकुमार वर्मा ने – ‘ओ अहल्या’ प्रभाखेतान ने ‘अहल्या’ तथा चन्द्रमा प्रसाद दीक्षित ने ‘अभि”ाप्त ि”ाला’ नामक कविताए लिखी है। इससे ऐसा जान पड़ता है कि आज का कवि या समकालीन कवि पुराख्यानों और मिधकीय चरित्रों के सृजनात्मक उपयोग के प्रति पर्याप्त सचेष्ट है। इन कवियों ने अपनी कृतियों के माध्यम से मुख्यतः पुरूष प्रधान समाज में नारी की नियति के प्र”न को उठाया हैं। समकालीन कवि बलदेव वं”ाी ने कहा है ‘‘आत्मदान में पुरूष सत्तात्मक समाज में नारी के प्रति दमन एवं दंभपूर्ण व्यवहार के विरूद्ध कम विक्षोभ व्यक्त नही हुआ है। ऐसे समाज में पुरूषों द्वारा निर्धारित मूल्य सत्ता की एक पक्षीयता के अनेक प्रमाण उपलब्ध है।’’[28] उन्होंने आगे कहा है –

> पुरूष–”ाासित यह जग एकांगी
> पुरूषों का हर न्याय

[28] आत्मदान, बलदेव वं”ाी, भूमिका, पृ0 ग

कार्य
उपचार मात्र एकांगी
तुम्ही दोषी और तुम्ही न्यायकारी हो
तुम्ही रक्षक, तुम्ही व्यभिचारी हों।[29]

रामकुमार वर्मा ने पुरूष प्रधान समाज के प्रति आक्रो"ा भारतीय नारी के सम्मान की चिंता मुखर है, यानी डॉ0 वर्मा भारतीय संस्कृति के अनुरूप नारी का बिम्ब, गढ़ने के प्रति सचेत हैं। वही प्रभा खेतान ने नारी के मुक्ति की बात की है। तथा अहल्या को न केवल दलित नारी अपितु 'दलित मानवता' का प्रतीक चरित्र बना दिया है। चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित ने इस कथन को सृष्टि के प्रत्येक मानव की चेतना में घटित होने वाली विराट कथा माना है। माधव शर्मा ने पुरूष के छली रूप को उभारा है।

अहल्या का मिथक अन्य भाषाओं के साहित्य में भी नारी की नियति और विद्रोह चेतना को रूपायित करने के लिए प्रयुक्त हुआ है। कन्नड़ की कवयित्री सुकन्या मारूति ने ि"ाला के नारी बनने के मिथक को एक नई दृष्टि देते हुए लिखा है कि अहल्या दोबारा नारीत्व को प्राप्त नहीं सकी थी।

बन चली मैं ि"ाला बर्फ की
और बदन इन्द्र का हो चला नयन भय
बेचारे उस लड़के राम की गरमाई मिले
मेरे पिघल जाने वास्ते यह इच्छा थी
राम के स्प"ा से हुआ था।[30]

अहल्या के अतिरिक्त जिन मिथकीय चरित्रों और पुराख्यानों ने आज के कवि का ख्याल आकृष्ट किया है। उसमें अधिकतर महाभारत से सम्बन्धित है। सभवतः महाभारत के चरित्र और आख्यान आज के दे"ाव्यापी अवमूल्यन संक्रमण और मूल्य संघर्ष के बहुत निकट पड़ते है। संभवतः राम राज्य की कल्पना से जुड़े स्वाधीनता के आन्दोलन मध्य कवियों ने राम कथा के चरित्रों और आख्यानों को अधिक

[29] बलदेव वं"ाी – आत्मदान, पृ0 22
[30] भारतीय कविताएं, 1985, बाल स्वरूप राही, पृ0 74–75

उपयुक्त समझा था। लेकिन कुछ ऐसे पात्र रह गये है जो आज भी उपस्थित है। उन्ही उपेक्षित पात्रों की ओर ध्यान आकृष्ट करने का प्रयास समकालीन कवियों ने किया है। उसमें एक है एकलव्य। जिनका सिर्फ इतना गुनाह था कि वे दलित थे। इसलिए द्रोणाचार्य ने उन्हें ि"ाक्षा देने से इंकार कर दिया। और कितने एकलव्य हमारे समाज में ि"ाक्षा से वंचित रह गये है। समकालीन कवि प्रताप सहगल की चिंता यह है कि द्रोणाचार्य स्वयं अपनी कुंठाओं और उलझनों का ि"ाकार हैं। ि"ाष्य उसे ढूँढ़ रहे है लेकिन उसका गुरूत्व कही खो गया है –

सड़कों पर घूमते हुए एकलव्य
खोज रहे है द्रोण को
और द्रोण न जाने किन अंधी गुफाओं में
या युतोपियाई योजनाओं में
खोया हुआ खामो"ा है।[31]

भारतीय समाज भले ही अत्याधुनिकता के दौर से गुजर रहा है किन्तु भारतीय मानस के उपर अभी भी जातिवादी और सामंतवादी मांसिकता का प्रभाव बखुबी दिखाई देता है। जिसमें ि"ाकार सिर्फ दलित वर्ग तथा शोषित वर्ग हुआ है। जनकराज पारीक की कविता 'तरबूजों की नींद' में शोषितों के आर्थिक अभाव और उनके अमानवीय शोषण पर्त–दर–पर्त खोलने का प्रयास करती है। तथा एक गहरी चुभन को छोड़ जाती है। उन्होंने लिखा है –

अन्न इनके लिए पिसाने की नही
सिर्फ उपजाने की चीज है
खाने की तमीज इन्हें कहाँ है सर।
ये मर्दूद तो
पत्नी का यौवन
माँ का बुढ़ापा
और बेटी का बचपन खायेगें।[32]

---

[31] सवाल अब भी मौजूद है – प्रताप सहगल, पृ0 31
[32] खरबूजो की नीद – जनकराज पारीक, समकालीन कविता का परिदृ"य – डॉ0 वेदप्रका"ा अमिताभ, पृ0 88

यहाँ के जमींदारों और सामंतों ने न केवल दमितो, दलितो तथा असहायो का शोषण किया बल्कि प्राकृतिक पर्यावरण को भी बाटने का प्रयास किया है। समकालीन कवि श्रीकृष्ण तिवारी ने अपने गीतों के माध्यम से सामंती सत्ता के ȟास और पतन को सहजतापूर्वक कह दिया है वे कहते है –

भीलो ने बॉट दिए वन
राजा को खबर तक नहीं
पाप चढ़ा राजा के सिर
दूध की नदी हुई जहर
गाँव नगर धूप की तरह
फैल गयी यह नयी खबर
रानी हो गयी बदचलन
राजा को खबर तक नहीं।[33]

नारी के विभिन्न परिप्रेक्ष्यों को समकालीन कविता में पूर्ववर्ती कविता से परिणात्मक परिवर्तन के रूप में ही नहीं बल्कि गुणात्मक परिवर्तन में परिलक्षित किया जा सकता था। छायावादी कविता में जहाँ नारी नायिका, प्रेमिका, चिर–विरहिणी, तन्वंगी–बाला रह सकती थी, मांसल व आध्यात्मिक प्रेम का प्रकृति–प्रतीक माध्यम रहा करती थी। वहाँ छायावादोत्तर काल में ही यथार्थ जीवन के परिप्रेक्ष्य में नारी केवल प्रसाद के भाव वाली श्रद्धा के रजत नभतल में पीयूष स्रोत नही रही बल्कि निराला की 'सरोज स्मृति' में काव्य प्रेरणा की सृजन भूमि में वात्सल्य प्रेम की द्योतक भी बनी जहाँ 'धन्य तेरा पिता मैं निरर्थक' की भावना सामाजिक–आर्थिक दबावों के तले भी जाहिर हुई है।

समकालीन कविता के पूर्व नयी कविता काल में महादेवी वर्मा के चिर विरहिणी रूप या पंत की प्रकृति रूपी बाला–संगिनी के आगे नारी पुरानी प्रतीकों के प्रतिरोध में 'बाजरे की कलगी' भी बनी है। अज्ञेय ने प्रतीकों में नयापन नारी संदर्भो में उभारा पर नारी के प्रति उनके यहाँ सहयात्री जीवन संघर्ष की 'सहकर्मी–पात्रा'

[33] समकालीन कविता का परिदृ"य – डॉ0 वेदप्रका"। अमिताभ, पृ0 105

का बोध दुबोध है। पुरानी रोमांटिकता ही उन पर हावी। परन्तु आज की दुनिया यानी समकालीन कविता में स्त्री जीवन पहले जैसा नही रहा। उनका प्रेम पहले जैसा नही रहा। आज प"चमी प्रचार मीडिया द्वारा भारत की सांस्कृतिक मान्यताओं व भारतीय जन जीवन पर 'नारी संदर्भो' पर आक्रमण हो रहा है। बस्तर के आदिवासी जीवन की युवक–युवतियों के 'धोटुल' संस्कृति रूपक की व्यावसायिकता तले उपभोक्ता संस्कृति पनप रही है। दहेज के अभाव में सैकड़ों हजारो कन्याओं, युवतियों का जीवन अभि"ााप हो रहा है। दे"ा के अधिकां"ा धार्मिक राजनीतिक तीर्थ स्थलों के ठीक नाकतले वै"यावृत्ति होती है और सरकार उनको लाईसेंस भी देती है। बनारस, तिरूपति कालीघाट, कलकत्ता, बाम्बे तक इसके अपवाद नही है। धूमिल ने भी कविता में ही 'सच्ची बात' कही है।

> बाड़ियाँ फटे हुए बॉसों पर लहरा रही है
> और इतिहास के पन्नों पर/धर्म के लिए मरे
> हुए लोगों के नाम/बात सिर्फ इतनी है/
> स्नान घाट पर जाता हुआ हर रास्ता/
> देह की मंडी से होकर गुजरता है।[34]

नारी श्रद्धा की जगह 'अद्धा' बन गई है। अकेले 1976 में ही बलात्कार के 3893 मामले सरकारी तौर पर सामने आया है। गैर सरकारी तौर पर न जाने कितने हुए होगें। बिहार का 'बाबी काण्ड' दिल्ली का 'निर्भया काण्ड' अभी भी चर्चित है। बलात्कार सम्भ्रात भारतीय जनता द्वारा ही नही पुलिस व जेलर अस्पताल, अधिकारी द्वारा भी होता है। समसामयिक जीवन में यह भी तथ्य कम रोमांचक नही है कि एक विख्यात कालेज की भूतपूर्व छात्रा और वर्तमान कालगर्ल 'दिनमान' के इण्टरव्यू में स्वीकारती है कि आज पचास प्रति"ात स्त्रियों के सम्बन्ध एक से अधिक पुरूषों से है। आज की कविता 'नारी संदर्भो' में केवल 'आह–आह' या 'वाह–वाह' की पर्याय नही होनी चाहिए। समकालीन कविता में एक ओर

[34] समकालीन कविता का सौन्दर्य–बोध – रोहिता"व, वाणी प्रका"ान 21ए0 दरियागंज, नयी दिल्ली – 110002 प्र0सं0–1996, पृ0 703

'क्लासिकी प्रेम' की अभिव्यक्ति शम"ोर, मुक्तिबोध, त्रिलोचन के यहाँ नारी जीवन के संदर्भों में तो दूसरी ओर नारी के यौन प्रतीकों में सारा गुस्सा व्यवस्था के प्रति राजकमल चौधरी, जगदी"ा चतुर्वेदी में है। मोना गुलाटी की प्रतिरोध का प्रतिरोध अकविता सन्दर्भों में ही करती है। तीसरी ओर स्वस्थ, मांसल प्रेम व रागात्मक बोध के साथ संघर्ष"ील जीवन की अभिव्याक्ति में नारी संदर्भ विजेन्द्र, आलोक धन्वा, विनोद कुमार शुक्ल, उदय प्रका"ा जैसे कवियों की रचनाओं में है।

समकालीन कविता में नारी जीवन, प्रेमिका सहयात्री, पत्नी, माँ, बेटी, बहन के रूप में ही अभिव्यक्त नही हुए है। बल्कि वर्ग चेतना के समाज सापेक्ष संदर्भों में उनके शोषित स्वरूपों को उजागर किया गया है। ज्ञानेन्द्रपति के यहाँ, 'पूछती है माँ' कविता द्वारा अपने बेटे को प्रत्येक पल जानने, गाछ की शाखा, समान–फूल को पहचानने का जिक्र है तो 'इंतजार' के कविता में उस लड़की का भी जिक्र है जो अपने ि"ाकार की तला"ा में दयनीय है।

''कलकत्ता/कर्जन पार्क/दिन के चार बजे/ घुटने मोड़कर बैठी हुई यह लड़की/दिन के अपने पैरो तले आ जाने के इंतजार में है...../उसके सपाट चेहरे पर जल उठेगी उसकी आँखे/आ जायेगी उसमें वह चमक जो केवल/बुरी स्त्रियों में होती है, और एक बार फिर/किसी लोलूप व्याघ्रक का ि"ाकार होगी/अपने विलाप को मुस्कुराहट में बदलती हुई।''[35]

इसी प्रकार – उदय प्रका"ा की 'बहेलिए', 'मेसेन्चुरी' और 'सुअर' विनोद कुमार शुक्ल की 'काम पर जाती हुई औरत' तथा विजेन्द्र की 'रेलवे पोस्टर' आदि की कविताओं में नारी शोषण व उनके सामाजिक अभि"ाप्त जीवन तथा उपभोक्तावादी संस्कृति व पूँजीवादी शोषक नीति आदि का जिक्र किया गया है।

इस प्रकार नारी जीवन के विभिन्न सन्दर्भों को पुरूष रचनाकारों की रचनाओं ने समृद्ध अभिव्यक्ति दी है। परन्तु खेद का विषय है कि नारी रचनाकारों ने प्रेम, विरह, सामाजिक विसंगतियो, भावबोध के विखण्डन के बोध रचे है। साथ ही नारी

[35] ज्ञानेन्द्रपति – शब्द लिखने के लिए यह कागज बना है, पृ0 75

शोषण के खिलाफ वर्ग बोध की कलात्मक संवेदना और काव्याभिव्यक्ति अनुपलब्ध है।

समकालीन कविता में भूमण्डलीकरण तथा वै"वीकरण से उत्पन्न बाजारवाद की चर्चा की बहुतायत मात्रा में हुई बाजारवाद के मूल में पूँजीवाद का भरपूर हस्तक्षेप है। समकालीन दौर में न सिर्फ साहित्यिक लेखन में बल्कि किसी तरह के कलाकर्म जिसके साथ विचार"ीलता का थोड़ा सा भी नाता है, समक्ष पूँजीवादी साम्राज्य का खतरा उग्रतम रूप में मौजूद है। भारत जैसे दे"ा नव उपनिवे"ानवादी दौर से गुजर रहे हैं। इस विभिषिका को नकारने वाले बुद्धिजीवी इस दौर को उत्तर औपनिवे"िाक कहना पसन्द करते है। उदारीकरण और भूमण्डलीकरण तथा निजीकरण के लाभार्जन करने वाले दे"ी दलाल पूँजीपति वर्ग से वे नाभिनाल बद्ध है। सबसे प्रमुख बात यह है कि नव उपनिवे"ान की इस प्रक्रिया का प्रमुख और वह है जिसे सूचना क्रांति कहकर महिमामण्डित किया जाता है। आज अन्तर्राष्ट्रीय ऋणदाता संस्थाएँ जिनका वास्तविक सूत्रधार अमेरिका है, दे"ा को ऋण जाल में जकड़ रहा है ताकि मनचाही नीतियों पर सरकार को ढकेल सकें। ऐसे में राष्ट्र राज्य की सम्प्रभूता खोखली हो रही है। बाजार विचार का स्थापित कर रहा है। किसी भी विचार की सार्थक परिणति उसके बाजारोपयोगी बन सकने में देखी जा रही है। संस्कृति को एक उत्पाद में बदल दिया गया है। व्यापक जनता संस्कृति की सृजनकर्त्ता होती है। प्रेम–स्नेह, ममता, जैसे गहरे और जीवन पोषक भावों को पूँजीवादी उत्पादों के विपणन में नियोजित किया जा रहा है।

समकालीन कवि ज्ञानेन्द्रपति ने इक्कीसवीं सदी में होने वाले तकनीकि परिवर्तन की ओर संकेत करते है। जहाँ टेलीविजन, कम्प्यूटर, इलेक्ट्रानिक मीडिया, मास मीडिया, संचार माध्यम, बहुत तेजी से बढ़ रहा है। आज के बाजार में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा निर्मित उत्पाद पर साम्राज्यवादी बनियों का कब्जा होता जा रहा है। इसलिए ज्ञानेन्द्रपति अपनी चिंता को व्यक्त करते है –

इक्कीसवी सदी
देखों, दरवाजे खड़ी है इक्कीसवीं सदी
क्या बनी–ठनी है
रूप की धनी है
इक्कीसवी सदी
× × × ×
टेलीविजन का च"मा है
कम्प्यूटर का दिमांग है
उपकरणों का बाग
गये भाग जाग (बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के साम्राज्यवादी बनियो के)
दरवाजे खड़ी है इक्कीसवीं सदी।[36]

बाजारवाद का ऐसा प्रभाव है कि व्यक्ति एक बार बाजार में पहुँचने के बाद बाजार के चंकाचौंध से इतना घिर जाता है कि उसके पास कोई भी जबाव ही नही रहता है। इसी सन्दर्भ में परमानंद श्रीवास्तव ने कहा था – ''यह जगमग चमकीला बाजार जो संचार माध्यमों की लपट में, घरों में, ड्राइंग रूम में, विचार और संवेदना में, रि"तों में फैलता जा रहा है। यह पर्यावरण को अछूता छोड़ने वाला नही है। बाजार में काम आनेवाली तमाम उपकरण पर्यावरण प्रदूषण के मूल में है। मूल्यवान प्रजातियाँ, लूप्त हो रही है, बाजार जो इस हद तक अनर्थकारी है कि हमारे संवेदन तन्तु को ही सूखा दे रहा है।''[37]

बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ अपने उत्पादों का प्रचार–प्रसार इतनी तीव्र गति से कर रही है कि इसके लिए अलग से बाजार की संरचना स्थापित कर रही है। पहले जहाँ एक छोटी सी दुकान हुआ करती थी, फिर शॉप हुई, बाद में बाजार की स्थापना हुई और उसको मॉल के रूप में जाना जा रहा है। जो वि"व बाजार की उपज है। यह बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ समुद्र पार से अपना मायावी हाथ बढ़ाकर हमारे यहाँ के शीर्षस्थ पर रहने वाले लोगों को पकड़ती है और उन्हें बड़ा प्रलोभन देकर

[36] भिनसार, इक्कीसवी सदी और भागीरथ, पृ0 116
[37] कविता का अर्थात् – परमानंद श्रीवास्तव, पृ0 101

अपने उत्पादों का प्रचार–प्रसार करवाती है। इसमें मुख्य रूप से लोकप्रिय क्रिकेट खिलाड़ी, संगीतकार, िं"ाष्ट मानव मूर्तिया, विि"ाष्ट विभूतियाँ बड़े–बड़े फिल्म स्टार और अंग प्रद"ान करने वाली मॉडल आती है। इन्हें ये कम्पनियाँ अच्छी कीमत पर खरीदती है और अपने ढंग से अपने उत्पादों प्रचारित करवाती है।

ये पि"चमी सिगरेट–निर्माता कम्पनियाँ
जब उठ रहा उधर बाजार
उन्होंने इधर का रूख किया है
आई है गरीब मूल्क के लोगों को
अमीरी की जीवन–"ौली सिखाने।[38]

वि"व बाजार में वि"व व्यापारी पूँजीवाद के कृपा के कारण ही सबकुछ को खरीदने बेचने का प्रयास करते है। उनके लिए केवल अपना स्वार्थ ही सबकुछ है। पूँजी के कारण ही इनका असर पूरे वि"व पटल पर छाया है। समकालीन कवि ज्ञानेन्द्रपति इन पूँजीवादियों के ऊपर व्यंग्य करते हुए कहते है –

वे आपाद मस्तक"ील है
जितना चाहों बस उतना अ"लील है
विचारक के मुख मण्डल वाले प्रचारक है
मुक्त बाजार व्यवस्था के ही उद्धारक है
तुम्हारी रूचियों के रचयिता।[39]

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि समकालीन कविता में बाजार वाद के माध्यम से इक्कीसवी सदी में बढ़ते तकनीकि प्रभाव, बाजार में पूँजी का बढ़ता वर्चस्व विज्ञापनों का मायाजाल आदि वि"व बाजार को जन्म दे रहा है।

समकालीन कविता में आम आदमी की अवधारणा बहुलता में अभिव्यक्त है। आम आदमी जिनकी पहचान, आजकल सामान्य जन या साधारण जन के रूप में होती है, जो जनतंत्र की प्रसिद्ध व्याख्या में पीपुल नाम से जाना जाता है। आम

---

[38] ज्ञानेन्द्रपति : सं"ायात्मा – गिरेच्वी से, पृ0 127
[39] सं"ायात्मा – उत्तर परमात्मा, पृ0 124

आदमी अन्तर्गत दे"ा का अधिसंख्यक जनसमुदाय जिसके सदस्यों की आर्थिक समस्याएँ, सांस्कृतिक मन–स्थितियों और सामाजिक–राजनीतिक समझ और अन्तर्विरोध लगभग एक सा है। यदि हम मार्क्सवादी शब्दावली की बात करे तो यह आम आदमी सर्वहारा का पर्याय नही बल्कि द"ान था जिसने मनुष्य की परतन्त्रता के सामाजिक–आर्थिक कारणों की खोज की। इतिहास के नियमों को पता किया। पूँजी की सत्ता को पहचानते हुए श्रम और पूँजी के सम्बन्धों की व्याख्या की और एक ऐसे समाज की कल्पना की जिसमें व्यक्ति की प्रतिभा का स्वतंत्र विकास संभव हो सके। जिसमें आम आदमी नही बल्कि सर्वहारा आता है। आम आदमी के विषय में माओत्से तुंग अपने 'येनान गोष्ठी' में दिये भाषण में कहते है। ''हमारी कला साहित्य सबसे पहले मजदूरों के लिए है। एक ऐसे वर्ग के लिए जो क्रांति का नेतृत्व करता है, दूसरे वह किसानों के लिए जिनकी तादाद सबसे अधिक है, जो क्रांति में हमारे सबसे घनिष्ठ सहयोगी है। तीसरे वह स"ास्त्र मजदूरों, किसानों तथा जनता की अन्य स"ास्त्र फौजों के लिए है जो क्रांतिकारी युद्ध की मुख्य शक्ति है। चौथे वह शहरी निम्न पूँजीपति वर्ग के मेहनतक"ा जन समुदाय और पूँजीवादी बुद्धि जीवियों के लिए है।''[40] जबकि डॉ0 शंभूनाथ कहते है – ''समकालीन कविता की रचना जनता के वर्तमान ऐतिहासिक संघर्ष और इसके ऐतिहासिक यथार्थों के बीच होती है।''[41]

इसी संदर्भ में श्रीकांत जो"ाी का विचार है कि – ''मजदूर, छोटा किसान, आफिस का कलम घसीट, कुली, तांगा चालक से लेकर सिनेमा के एक्स्ट्रा वे"या, कम्पोजीटर तथा झूग्गी में रहने वाले सभी आम आदमी है।''[42]

दलितों, खासकर हरिजनों पर हुए अत्याचार बार–बार अखबारों की सुर्खियाँ बनते है। अधिकारों की माँग को दबाने का दूसरा नाम है – 'हरिजन–दहन'। 'हरिजन दहन' पर नागार्जुन, ज्ञानेन्द्रपति, नन्द चतुर्वेदी, सोम दत्त आदि कई कवियों ने बहुत तीखी और भेदक कविताए लिखी है। ये कविताए द"ाती है कि किस

[40] उत्तरार्द्ध जनवादी साहित्य वि"ोषांक, पृ0 35
[41] 'दीर्घा' समकालीन हिन्दी कविता वि"ोषांक, पृ0 24
[42] समकालीन कविता का परिदृ"य, पृ0 38

प्रकार ग्रामांचल के सामंती तत्वों और पुलिस तंत्र का गठजोड़ गरीबी की रेखा के नीचे जी रहे मेहनत क”ा हरिजन समुदाय को कुचलने में संलग्न है। आज आये दिन उनके ऊपर लगातार अत्याचार, हत्या, बलात्कार जैसी वारदातें हो रही है। जो समकालीन कवियों की चिंता के केन्द्र में है। समकालीन कवि सोमदत्त की कविता 'हरिजन हत्याकाण्ड' इसी ओर संकेत करती है। वे कहते है –

गेहू चने से मुड़कर पागल हाथियों का झुंड
उन पर पिल पड़ा
पुलिस के कानों में ढेढे थे आँखों में सिक्का बंद
सरकार की नजर कानून की हुनर मंदी पर
वे सब मर गये।[43]

सामान्य जन की बेबसी और दुर्द”ाा को हरिजन–केन्द्रित कविताएं भली–भाँति व्यक्त करती है। इन कविताओं में कवि का दृष्टिकोण प्रायः भावूक नही है। अपितु वह यथार्थ के खुरदुरे साक्षात से जन्मा है और वामपंथी वैचारिकता से अनु”ाासित है। इसी तरह का शोषण और उत्पीड़न नगर और महानगरीय परिवे”ा में जी रहे जनसाधारण की भी नियति है। फुटपाथ पर पूरी जिन्दगी काट देने वाले 'लोकराम' को असमय काल कवलित होना पड़ता है –

हाय लोकराम बेमौत मर गया
कम्बख्त
तुझे किसने कहा था कि
फुटपाथ पर सो कर एक बड़ा सा सपना देख
जानता नहीं था कि
यह एक सामाजिक अपराध है।[44]

समकालीन कवि इस तथ्य को प्रायः रेखांकित किया है कि शोषित–उत्पीड़ित जन समुदाय शक्तिहीन नही है। लेकिन उन्हें अपनी संगठित शक्ति का ज्ञान नही है। अन्यथा उनकी स्थिति दयनीय और दमनीय नही होती।

[43] समकालीन कविता का परिदृ”य – डॉ0 वेदप्रका”ा अमिताभ, पृ0 40
[44] एक दिन नदी बन गया, पृ0 30

इसलिए मामूली आदमी को जगाने और उसके गुस्से को सामूहिक रूप देने की अपील समकालीन कविता की वैचारिकता का एक वि"ाष्ट अंग बन गयी है। समकालीन कवि विनय श्रीकर के शब्दों में –

> उठो भोलानाथ अपने खून को जगाओ/
> और सौ आवाजों के साथ आओ/
> कि अकेला आदमी नैतिक रूप
> से निहत्था होता है।[45]

समकालीन कविता में बदलाव का आ"ाावाद बार–बार व्यक्त हुआ है। कवियों को लगता है जन साधारण में पर्याप्त समझदारी पनप रही है। उसे वर्ग शत्रुओं की पहचान होने लगी है और इसकी मूक असाध्यता सबल सिंहनाद का रूप लेने जा रही है। उनकी हुंकार से शी"ामहल कांपने लगेंगे। उनकी आवाज अब दब कर नही रह सकती वह एक नयी विचारधारा का रूप ले लिया है। कही न कही यह क्रांति का आह्वान है –

> जिनका रंग काला ही सही पर
> खून बहुत लाल है
> जब वे अपनी पीठ सीधी करेंगे
> तो उनतालीसवीं मंजिल के सरमायेदार
> भरभराकर अपनी लंबी घुमावदार सीढ़ियों पर
> फना हो जायेंगे।[46]

समाजशास्त्रीयों और राजनीतिक अध्येताओं के अध्ययन इस बात की पुष्टि करते है कि उत्पीड़न जन समूह संगठित और स"ास्त्र हो रहा है। प्रो0 आंद्रेबेते के अनुसार – ''मानव इतिहास को देखे तो मालूम पड़ेगा कि पददलित वर्ग और समाज का सताया हुआ मानस एक सीमा तक संघर्ष से ही आगे बढ़ा है। इसलिए

[45] दस्तावेज जुलाई 1979, पृ0 16
[46] प"यंती, कविता वि"ोषांक, पृ0 134

यह धारणा कि मुक्ति की यह प्रक्रिया बिल्कुल ही शांतिपूर्वक पूरी हो जायेगी यथार्थ परक नही है।''[47]

समकालीन समय में सामान्य जन या आम आदमी की एक संगठित और जुझारू मुद्रा ऊभर रही है। बेचारगी और कमजोरी का भाव लूप्त हो रहा है अब उसका शोषणासन नही रहा। उसे वर्ग शत्रुओं की पहचान हो गयी है। क्योंकि दे"ा की आजादी के बाद उसे कोई आजादी नही मिली। इसकी हालत वैसी ही है जैसी आजादी के पहले थी। इस संदर्भ में जगदी"ा गुप्त कहते है –

> वह कुछ भी नही जानता
> संसद और सरकस
> आजादी और गुलामी में कोई फर्क हो सकता है
> वह कुछ भी नही जानता।[48]

समसामयिक दृ"यपट पर जो कविता का चित्र उभरकर आ रहा है वह बहुत कुछ राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों से उदभूत है, दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि आज की कविता इन स्थितियों की प्रतिक्रिया और उनका जायजा व्यंग्यात्मक एवं सपाट रूपाकारों के द्वारा व्यक्त कर रही है इसलिए तथाकथित आम आदमी का आक्रो"ा समकालीन कविता की एक मुख्य प्रवृत्ति है।

> यह ठीक है कि समय सबको अपने दांत मार रहा है
> लेकिन घाव और पीड़ा का समाज
> केवल घरेलू आदमी ढो रहा है।[49]

आदि तथा मध्यकाल में आम आदमी सामंती और साम्प्रदायिक मतवादो के कारण पृष्ठ भूमि में ही रहा। संतो तथा भक्तों में उसका वह स्वतंत्र और संघर्षरत रूप वहाँ अप्राप्य है जिसके द"ान हमें आधुनिक और समकालीन कविता में प्राप्त

[47] समकालीन कविता का परिदृ"य, पृ0 44
[48] वही, पृ0 45
[49] लीलाधर जमूड़ी : नाटक जारी है, कविता का अन्तर अनु"ाासनीय विवेचन, पृ0 36

होते है। समकालीन कविता की भाषा विद्रोह और तनाव की भाषा है जिसका मुहावरा भी आम है। समकालीन कवि ऋतुराज कहते है –

> हमारे कुँए का पानी हमारा पसीना है
> हमारा खून है
> जिसे तुम बहाते हो, महज इसलिए कि
> घड़ा तुम्हारा है।[50]

समकालीन रचनाकार का यह दायित्व है कि ज्ञान को संवेदना और सर्जना के धरातल पर रूपान्तरित करे और आम आदमी की जिंदगी और उसके वैचारिक क्षितिज को क्रिया”ील करें।

4- ledkyhu dfork dh e|[; iofÙk & i;koj.k fprk

पर्यावरण चिंता समकालीन कवियों की प्रमुख चिंता तथा समकालीन कविता की प्रमुख प्रवृत्ति रही है। हमारे चारों ओर प्रकृति में जो भी जीवित तथा निर्जिव वस्तुएँ हैं वह चाहे मिट्टी, जल, वायु, प्रका”ा, वृक्ष तथा जीव–जन्तु हो, सभी पर्यावरण के अभिन्न अंग हैं जो आपस में एक दूसरे से गहरे तक जुड़े हुए है। इनका संतुलन यदि खो जाय तो भीषण समस्याएँ उत्पन्न हो जाती है। लेकिन औद्योगीकरण के साथ विकास को लक्ष्य करके मानव का जो प्रयत्न है वह पारिस्थितिकी संतुलन को बिगाड़ देता है। भूमण्डलीकरण के बावजूद मनुष्य की उपभोक्तावादी वृत्ति और स”ाक्त हुई। मनुष्य इस अल्पकालिक सुखों के पीछे, के इस कटू सत्य को भूल जाता है कि विकास की नींव स्वस्थ पर्यावरण पर ही केन्द्रित है। आज समृद्ध प्रकृति और हमारी सहज संस्कृति आदि लूप्त प्राय है।

हिन्दी के समकालीन कवियों में यह पारिस्थितिक चिंता कई रूपों में प्रकट हुई है। एक ओर विकास के फलस्वरूप उग आई मल्टिने”ानल कम्पनियों से उत्पन्न पर्यावरण प्रदूषण है तो कही खो जाने वाली संस्कृति की पीड़ा है। कही–कही कट जाने वाले पेड़–पौधों के बारे में लोग चिंतित है। तो वे कही

[50] ऋतुराज : दिनचर्या

वं"ाना"ा के कगार तक पहुँचे हुए जानवरों और पक्षियों के अंतर्नाद सुन रहे है। कारखानों के निकले हुए धुएँ में घुटने वाले मनुष्य को विषलिप्त पानी एवं कीटना"ाकों में सने हुए खाने का उपयोग करना पड़ता है। सहज संतुलित वातावरण सर्वत्र नष्ट हो गया है। इसके स्थान पर कृत्रिमता आ गई है। अज्ञेय ने संकेत किया है –

> नहीं सुन हम वह नगरी के नागरिकों से
> जिनकी भाषा में अति"ाय चिकनाई है साबुन की
> किन्तु नहीं है करूणा।[51]

समकालीन यथार्थो की ओर हिन्दी के अनेक कवियों ने हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। प्रकृति और लोक जीवन पर त्रिलोचन ने बड़े पैमाने पर लिखा है। लोक जीवन को बनाये रखने की कोि"ा"ा और उसके प्रति उनका आकर्षण सराहनीय है। उन्होंने अपनी कविता 'नदी कामधेनु' में नदी को कामधेनु बनाकर कहने वाले आधुनिक समाज पर व्यंग्य किया है। अनेक नदी घाटी परियोजनाएँ पर्यावरण ना"ा की वजह बनने के साथ कई लोगों को बेघर और बेरोजगार बना देती है, बाँध बनाने में कृषि भूमि और वनों का बहुतायत से विना"ा होगा। इसके अतिरिक्त भूमि कटाव, बाढ़, भूकम्प आदि की संभावनाएँ बढ़ती जाती है। त्रिलोचन ने कहा है –

> नदी ने कहा था : मुझे बाँधो
> मनुष्य ने सुना और
> आखिर उसे बाँध लिया
> बाँधकर नदी को
> मनुष्य दुह रहा है
> अब वह कामधेनु है।[52]

नदियों के संदर्भ में पारिस्थितिक समस्या पर सबसे ज्यादा हिन्दी के समकालीन कवि ज्ञानेन्द्रपति ने लिखा है। गंगा कई तरह से प्रदूषित हो रही है।

---

[51] हरी घास पर क्षणभर – अज्ञेय
[52] कविता के पक्ष में : सं0 – वि"वरंजन, ि"ाल्पायन प्रका"ान, शाहदरा दिल्ली, पृ0 128, प्र0सं0 2011

गंगा भारत का संस्कार है वह भारतीय जीवन के रग–रग में व्याप्त है। इस गंगा नदी के प्रदूषण का मतलब हमारे संस्कार का प्रदूषण है। उनका काव्य संग्रह 'गंगातट', 'गंगास्नान' कविता में भारतीय वि"वास के अनुसार गंगा नदी में स्नान करने से मोक्ष मिलेगा। लेकिन यह भ्रम टूट गया है। यह धारणा बदल चूकी है –

तुम क्या जानों
क्योंकि तुम्हारे लिए नहीं बची है कोई पवित्र नदी
तुम्हारी सारी नदियाँ अपवित्र हो गई है – विषाक्त।[53]

अब गंगातट मायावी बाजार है। वह बाजार वहाँ पहुँचने वालों की इच्छाओं और रूचियों का नियंता है और द"र्कों के मन में जरूरतें जगाता है। कवि के मन में अपवित्र एवं कलंकित नदी के प्रति चिंता जगाती है। कवि को आ"चर्य हुआ कि यह नदी भयानक रूप में मैली–कुचैली और दुबली हो गई है। मछलियाँ मरी हुई इच्छाओं की तरह उतराई है। बाघों के जुठारने से, हाथियों की जल–क्रीड़ाओं से तथा कछुओं से भी गंगा नदी में कोई कालुस्य नहीं आया। नदी को कलंकित एवं गंदा करने के सम्बन्ध में वीरेन डंगवाल 'विद्वेष' नामक कविता में कहते है –

यह बूचड़खाना की नाली है
इसी से होकर आते है नदी के जल में
खून चर्बी, रोएँ और लोथड़े।[54]

समकालीन कवियों में अरूण कमल अपनी कविताओं में पर्यावरण संकट एवं भविष्य के प्रति गहराई से चिंतित है। उनकी कविता 'इक्कीसवी शताब्दी की ओर' में निकट भविष्य मे जो होना नही है उन सबके होने की सूचना मिलती है। वे यों कहते है –

हर नदी का घाट श्म"ाान
हर बगीचा कब्रिस्तान बन रहा है
और हम इक्कीसवीं शताब्दी की ओर जा रहे है।[55]

[53] गंगातट : ज्ञानेन्द्रपति
[54] वीरेन डंगवाल – दु"चक्र में सृष्टा, पृ0 67

मानव, जीवन की आ"ांकाएँ और भविष्य में आने वाली आपत्तियों को सूचित करने में सक्षम है। सांस्कृतिक एवं राजनैतिक दृष्टि से असंतुलित है। दे"ा की व्यवस्था यहाँ असुरक्षित सा भाव ज्यादा बुलंद है। विलास की ओर अग्रसर होने वाली मानव प्रकृति के साथ अपने सह अस्तित्व को भूल गया है। आगामी महा विपत्ति से बचने के लिए हमे उपभोगी मानसिकता को छोड़कर बहुत सरलता एवं सहज भारतीय जलवायु एवं हवा को कायम करना है।

'दुःस्वप्न' नामक कविता में न्यूट्रान बम के गिरने से पैदा होने वाले वातावरण का यथातथ्य चित्रण बड़ी संजींदगी से कवि ने किया है। वह कवि के लिए दुःस्वप्न सा भयानक लगता है। विज्ञान के नए—नए आविष्कार सम्पूर्ण मानवता को विना"ा के कगार तक पहुँचा देते है। हिरो"ामा और नागा"ाकी में हुए बम विस्फोट का दुष्परिणाम एक पीढ़ी ही नही पीढ़ी दर पीढ़ी भोग रही है। मानव कल्याण के लिए निर्मित इन सारी चीजों का उल्टा प्रयोग मानव द्वारा ही किया जा रहा है। हिरो"ामा की याद दिलाने वाली कविता ये मानव पर पड़ने वाले अतिदारूणमारक प्रभाव को लक्षित करते हुए अज्ञेय कहते है —

> मुझे चाहिए हरी—भरी दुनियाँ
> घने पेड़ों के चलते अन्धेरा हुआ रास्ता
> बच्चों की दौड़ से हिलता हुआ घर
> और अपनी माँ के थनों को हुमकता
> गाज भरे मुँह वाला
> उजला बछड़ा।[56]

आज संसार में हिंसा परम धर्म बन गया है। आने वाली पीढ़ी की खु"ायों पर ध्यान दिये बिना हम मानव आज पृथ्वी को रौंद देते है। आज आतंकवाद, अलगाववाद, साम्प्रदायिकता, भाषावाद आदि से लोगों का दम घुट रहा है। इनके

[55] अरूण कल : सबूत, पृ0 76
[56] अज्ञेय : हिरो"ामा, पृ0 85

हाथ में पृथ्वी गेंद की तरह घूमती है। इसलिए कवि बहुत दु:खी होकर ई”वर से 'पृथ्वी के लिए प्रार्थना' शीर्षक कविता में कहते है –

ई”वर ! मैं तुम्हारा सबसे छोटा बेटा
हृदय की अनंत गहराइयों के साथ
इस पृथ्वी के मंगल के लिए कर रहा
है प्रार्थना।[57]

औद्योगीकरण के साथ जो यंत्रीकरण हुआ वह हमारे भौतिक विकास को मात्र लक्ष्य करता है। उस सिलसिले में हमारे यहाँ कई रासायनिक कारखाने उग आए। वहाँ निर्मित कई रासायनिक पदार्थ जानलेवा है। भोपाल युनियन कार्बाइड ट्रेजडी अब भी हमारे साथ है। उदय प्रका”ा की 'पंजाब : कुछ कविताएँ' में भारतीय जीवन का प्रकृतस्थ रूप नष्ट होकर अति भयानक रासायनिक घटकों एवं पदार्थों के बीच में दम घुटने वाली जानता का स्वरूप उभर आ रहा है। प्रकृति के सहअस्तित्व में जो पंजाब पहले था उसका स्वरूप नष्ट हो गया है। कवि हम से कुछ अनिवार्य सवाल करते है –

कुल मिलाकर कितने युनियन कार्बाइड है
पंजाब में
बताओं प्रार्थना करते लोगों के फेफड़े में
कितना मिथाइल आइसो साइनेट है
बताओं
पंजाब में
कितने भोपाल है।[58]

इस प्रकार समकालीन कविता की मुख्य चिंताओं में पर्यावरण चिंता है जो समकालीन कविता की प्रवृत्ति के रूप में इंगित है।

[57] मुझे दूसरी पृथ्वी चाहिए : स्वप्निल श्रीवास्तव, पृ0 67
[58] उदय प्रका”ा : रात में हारमोनियम, पृ0 82

5- ledkyhu dfo KkuUnzifr dk dkO;&lalkj

समकालीन रचना परिदृश्य में ज्ञानेन्द्रपति ऐसे रचनाकार है जिनके यहाँ रचनानुभव और जीवनानुभव का अद्वैत देखने को मिलता है। इसलिए हिन्दी की जातीय कविता की ठेठ देशज गंध ज्ञानेन्द्रपति की खास पहचान है। इनके कविता की अंर्तवस्तु जीवन की परिस्थिगत् विडम्बनाओं से मुठभेड़ करती हुई अपना स्वरूप गढ़ती है। उनकी कविता विशेष अर्थों में 'वस्तु वैविध्य 'कवि कल्पना और आलोचनात्मक यर्थाथवाद ' के त्रिआयामी आधारों के साथ–साथ सामाजिक सांस्कृतिक विमर्शों की कविता है।

ज्ञानेन्द्रपति की कविता में हमारे समय की क्रूरता, शोषण और अंध उपभोक्तावाद, धार्मिक पाखण्डवाद, विश्वबाजार, साम्प्रदायिकता, पर्यावरण चेतना, इतिहास, संस्कृति के साथ–साथ सृष्टि के अनेक ऐसे संदर्भ या विषय क्षेत्र है, जिन्हें ये एक कार्यकर्ता की हैसियत से देखते हैं। साम्प्रदायिकता बाजारवाद एवं हिंसा जैसे प्रसंगों में उनका आक्रोश और विक्षोभ ही कविता की टोन निर्धारित करता है। कुल मिलाकर हम देखते हैं ज्ञानेन्द्रपति की कविता का मूल स्रोत जीवन है। 'पढ़ते–गढ़ते' में उन्होंने यह स्वीकार किया है कि – ''जो कवि जीवन में रूचि और रस लेगा, जीवनानुभवों के रेशों से अपनी कविता बुनेगा उसकी कविता विविध वर्णी होगी। जीवन के रस रंग से लबरेज जीवन का स्रोत अक्षम है। इसलिए जीवन के पास जाने वाले कवि के यहाँ विषय का टोटा न होगा।''[59]

ज्ञानेन्द्रपति सच्चे अर्थों में निराला (व्यक्तित्व) और मुक्तिबोध (काव्य) की परंपरा के समर्थ उत्तराधिकारी है। वे विकसित और चुप रहने वाले भविष्य के ऐसे कवि है जो अपने समय के कवियों से अलग तथा वस्तुनिष्ठ दृष्टि से सम्पन्न है।

ज्ञानेन्द्रपति जी की रचनाएँ बहुत अधिक नहीं हैं। किन्तु कम रचनाओं का योगदान देकर साहित्य जगत में अपना स्थान बना लिया है। उनके काव्य संग्रह–आँख हाथ बनते हुए (1970), शब्द लिखने के लिए यह कागज बना है,

[59] पढ़ते–गढ़ते–ज्ञानेन्द्रपति, पृ0 119

(1980), गंगातट (2000), संशयात्मा (2004), पढ़ते–गढ़ते (2005), भिनसार (2006) है।

'आँख हाथ बनते हुए' में ज्ञानेन्द्रपति की छवि एक युवा कवि के रूप में आती है। यह संग्रह पहली बार अशोक वाजपेयी द्वारा संपादित 'पहचान सिरीज' में प्रकाशित हुई। 'शब्द लिखने के लिए यह कागज बना है – इस संग्रह की कविताएँ अनुभव से विकसित होने की प्रक्रिया की कविताएँ हैं। निर्णायक परिणातियाँ इस कविता के क्षेत्र से बाहर पड़ती है उसी वजह से इनमें चीजें अंकुरित होती हैं और अपने विकास क्रम व आवेग के बल से आगे बढ़ती हैं। यह विकास किसी अदृश्य गोलक में होता हुआ निपट अकेला नहीं है। उसका हमेशा कोई साक्षी है। हमारी सभ्यता का प्रतिनिधि उसमें निहित है जो जीवन की ललक न होकर स्वयं जीवन है।

'गंगातट' इस काव्य में कवि की चिंता स्थानीयता से होते हुए वैश्विक चिंताओं की छोर को छूती है। यह संग्रह बनारस के घाटों पर आधारित है। इसमें बदलते बनारस के बहाने उन वैश्विक झंझावातों को पहचाना गया है। जो परिवर्तनकारी हो रहा है। कवि एक अतिशय प्राचीन नगरी बनारस के गंगातटीय जीवन की अंदरूनी तहों को उजागर करता है। साथ ही जीवन यथार्थ को समग्रता में प्रकट करता है। कवि गंगा के साथ लोक के रागात्मक रिश्ते को मार्मिक दृश्यबिम्ब के साथ प्रस्तुत करता है। ज्ञानेन्द्रपति ने काशी की सांस्कृतिक विशिष्टता और इतिहास की गहरी समझ के आधार पर बुनियादी सवाल भी खड़ा किया है। जो आज के माहौल में राजनीति और सत्ता से जुड़े लोगों के असली चरित्र को बेनकाब करती है। धर्म की आड़ में पनपते बाह्य आडम्बर, कर्मकाण्ड, राजनीति, स्वार्थ और व्यापारीकरण की मतलबी मानसिकता को बेबाक शब्दों में प्रकट किया है।

'संशयात्मा' संग्रह में विविध प्रकार की कविताओं को दर्शाया गया है। इस पर इन्हें साहित्य अकादमी का पुरस्कार भी प्राप्त है। इसमें आज की पृष्ठभूमि का

ज्वलंत समय रेखांकित हैं। इसका वैचारिक क्षेत्रफल विश्व विस्तृत है। भारतीय सारस बिला रहे हैं तो हवाई द्वीप के ओ–ओ–आ–आ जैसे पक्षी भी। गड़हे के कीचड़ में सुअरों के साथ खेलने के लिए आदिवासी बच्चे भी छोड़ दिये जाते हैं। प्राकृतिक, सामाजिक, मानसिक पर्यावरण का क्षरण संशयात्मा की केन्द्रीय चिंता हैं, जिसके भीतर देश के और विश्व के धरातल पर शक्ति–संरचना को बेबाक ढंग से पहचानने का प्रयत्न है। साथ ही इसमें मिट रही प्रजातियों तथा नष्ट हो रही जैव विविधताओं का मार्मिक चित्रण है।

'पढ़ते–गढ़ते' एक गद्य रचना है। इसमे कवि ने जो गढ़ा है इसमें उसी का चित्रण है। इसमें इनकी सूक्ष्म आलोचना दृष्टि दिखाई देती है, चाहे वह काव्य हो, उपन्यास हो, कहानी हो।

'भिनसार' इस संग्रह की कविताओं में एक ओर परिवर्तनकामिता से उपजा क्रांतिकारी रोमान है, वर्गशत्रुओं को ललकारता युयुत्सु उद्‌घोष हैं तो दूसरी ओर सामाजिक आत्मालोचन का वह विरल स्वर है जो अपनी आत्मा को खराद पर ही चढ़ाये बगैर नहीं उठता।

ज्ञानेन्द्रपति की काव्य दृष्टि वस्तुनिष्ट है। सर्जनात्मकता में मानव सत्य को सर्वोपरि मानने के कारण वे कविताओं को जीवन के बीच जाकर घूम फिर कर अर्जित करते हैं। इसलिए उनका संघर्ष अनुभव की प्रमाणिकता से अस्तित्व एवं अस्मिता को परिभाषित करती है। वे कविता को मात्र कला तक सीमित नहीं करते बल्कि उसे मानव जीवन से जोड़कर सार्थक बनाते हैं। वे कहते हैं ''काव्य सृजन के किए मैं दृष्टि की वस्तुनिष्ठता का हिमायती हूँ। मुझे मेरी कविताएँ घूम–भटक कर मिलती हैं। लोगों के बीच कविता अपने मनोभावों का आरोपण करने की जगह पर काया प्रवेश की साधना में ही मुझे सर्जनात्मकता की सिद्धि दिखाई देती है। इसके आगे–जोड़ते हैं मानुष सत्य को सर्वोपरि मानते हुए भी कविता की चिंता परिधि का मनुष्य सीमित होना मुझे मंजूर नहीं। काव्यानुभूति के घुटित क्षण में समस्त सृष्टि के

साथ जीवन के तमाम स्थावर, जंगम रूपों के साथ एकात्म होकर जिस 'ब्रह्मानंद सहोदर' का एहसास होता है, मेरी नास्तिक बुद्धि का वह पुनः पुनः काम्य है।''[60]

ज्ञानेन्द्रपति का काव्य–संसार तमाम प्रकार के विषयों को समेकित किया है। जिसमें मुख्यरूप से साम्प्रदायिकता, बालजीवन, मानवीय संबंध, आम आदमी, बाजारवाद, पर्यावरण चिंता तथा कुछ सामान्य विषय भी है।

साम्प्रदायिकता को ज्ञानेन्द्रपति ने अपनी कविता का विषय बनाया है। साम्प्रदायिकता जो भारतीय समाज में विद्यमान एक ज्वलंत विषय है। जिसका संबंध राजनीति से है। जिसमें धार्मिक कट्टरता तथा मानसिक उन्माद हावी रहता है। ज्ञानेन्द्रपति ने अपनी रचना 'गंगातट और संशयात्मा' में साम्प्रदायिकता संबंधी विचार व्यक्त किये हैं। 'सीतामढ़ी' का अशरफ मियाँ, 'विध्वंस के बाद' में अयोध्या का साम्प्रदायिक दंगा, 'कर्फ्यू कसे शहर में' – का डाकिया, 'समरकांत उवाँच' का समरकांत तथा लल्लापुरा का जफर मियां ये सभी साम्प्रदायिकता के शिकार है। ज्ञानेन्द्रपति ने इन कविताओं के माध्यम से समाज में होने वाली सभी अप्रिय घटनाओं की ओर संकेत करते हैं। बनारस, जो सर्वसंस्कृति, सर्वधर्म की भूमि रही है। जहाँ मंदिर और मस्जिद दोनों की दीवारें सटी हो वही से वह शांति और सुकुन की उम्मीद करते हैं। – वे कहते हैं।

''वे कहते हैं अयोध्या के बाद कासी की बारी है/धर्म संसद में पारित हुआ है प्रस्ताव/मंदिर के धड़ पर बना है जो मस्जिद का माथा/उसे कलम करने की तैयारी है। लेकिन क्यों? इतिहास की भूल सुधारने में। भूल का इतिहास रचना क्यों जरूरी हो? यदि जमीनस्थ जड़ों में। शिव–स्त्रोत के श्लोक और कुरआन की आयतें। प्यार से अझुराएँ। तो भला क्यों। हर–हर महादेव और अल्लाहो अकबर के नारे। प्रकंपित आसमान में टकराएँ।''[61]

बाल जीवन के विषय में उन बच्चों का जिक्र आया है, जो ट्रेन के फर्श की सफाई करता है, सड़क पर जुते–चप्पल सीता है जो भीख मांगता है, गणतंत्र दिवस

[60] पढ़ते–गढ़ते : ज्ञानेन्द्रपति, पृ0 15
[61] गंगातट पृ0 84–85

के अवसर पर तिरंगा झण्डा बेचता है। होटलों में प्लेट साफ करता है। कंधे पर बोरा ढोता है, कचरा बीनता है, जिनके कंधे से स्कूल का बैग छीनकर, राईफल रख दिया जाता है, जो रोजी–रोटी की तलाश में शहर भागकर आता है तथा किसी दलाल के हाथ लग कर गुलाम हो जाता है।

''कोमल कुम्हलाए बालक,
नौकरी की तालश में,
रिक्शा खींचते बोझा ढोते होटलों में खटते,
फर्श और बर्तनों को चमकाते,
उनके चीकट कपड़ों की बास में बसी नींद की इच्छा की गंध।''[62]

ज्ञानेन्द्रपति आम आदमी व रूप में सर्वहारा वर्ग की बात करते हैं, जिसकी पहचान आजकल सामान्यजन या साधारण जन के रूप में होती है। आम आदमी के विषय में श्रीकांत जोशी का विचार है ''मजदूर, छोटा किसान, आफिस का कलम घसीट, कुली, तांगा चालक से लेकर सिनेमा के एक्स्ट्रा, वेश्या, कम्पोजीटर तथा झुग्गी में रहने वाला सभी आम आदमी है।''[63]

ज्ञानेन्द्रपति ने आम जन में केदार मल्लाह, बधवा, रामखेलावन कांग्रेस, वीरू मल्लाह, सीताराम मांझी, रामदुलार, भोलानाथ, सगीर मियां, हनीफ रिक्शा वाला, समरकांत आदि के माध्यम से आम आदमी की संकल्पना किये हैं।

ज्ञानेन्द्रपति अपने काव्य की दृष्टि बाजार की ओर भी ले जाते हैं। जिनके मूल में पूंजीवांद है। कुछ लोगों को छोड़ दिया जाय तो अधिकतर स्वार्थ नव उपनिवेशन की प्रक्रिया से जुड़े बंधे हैं तथाकथित उदारीकरण और भूमण्डलीकरण तथा निजीकरण से लाभार्जन करने वाले देशी दलाल पूंजीपति वर्ग से वे नाभिनाल बद्ध है। इक्कीसवीं सदी में होने वाले तकनीकी परिवर्तन की ओर संकेत करते है। जहाँ टेलीविजन, कम्प्यूटर, इलेक्ट्रानिक मीडिया, मास मीडिया, संचार माध्यम तेजी

[62] उड़ती है पत्तियाँ, पृ0 242
[63] समकालीन कविता का परिदृश्य पृ0–38

से बढ़ा है। आज के बाजार में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा निर्मित उत्पाद पर साम्राज्यवादी बनियों का कब्जा होता जा रहा है।

> ''ये पश्चिमी सिगरेट–निर्माता कम्पनियाँ,
> जब उठ रहा उधर बाजार,
> उन्होंने इधर का रूख किया है,
> आई है गरीब मुल्क के लोगों को,
> अमीरों की जीवन शैली सिखाने।''[64]

पर्यावरण चिंता ज्ञानेन्द्र पति के काव्य संसार की केन्द्रीयता में विद्यमान है। इनमें प्रकृति, प्रदूषण, पशु–पक्षी का जिक्र करते हैं। ग्लोबल वार्मिंग के कारण हिम पिघलना, ग्रीन हाऊस गैसों का प्रभाव, वायुमण्डल में विशाल गैंसों का जमावड़ा, पेड़ों को काटना, जंगलों को नष्ट करना, नगरीकरण का विस्तार, पशुपक्षी तथा जीव–जन्तुओं का लुप्त होना, भूकम्प की आशंका का बढ़ना, पर्यावरणीय चिंता का विषय है। ज्ञानेन्द्रपति की रचना 'संशयात्मा' में यह दिखता है। फैक्टरियों तथा बहुराष्ट्रीय कम्पनियों से निकला हुआ धुआँ तथा कचरा लगातार पर्यावरण को प्रदूषित कर रहा है।

> ''लुढ़का रही है दशानन फैक्टरियाँ जहरीला धुँआ
> जिनकी श्वास वायु के आक्सीजन को सोखकर
> हवा में कार्बन–डाई आक्साईड उलीच रही है निरंतर जिनके,
> लिए भ्रूणों का भोजन खासा पसंद है।''[65]

ज्ञानेन्द्रपति की भाषा में जीवनानुभवों का साझा होने के कारण उसका मूल स्रोत संघर्ष और आम आदमी की उपस्थिति है। वे अपने काव्य संसार में संवेदना का श्रेय अपने आस–पास से लेकर विश्व तक और वर्तमान से लेकर भविष्य तक फैला हुआ है। इसलिए उसमें तद्भव, तत्सम, देशज, विदेशी शब्दों का प्रयोग स्वाभाविक रूप में हुआ है। वे वस्तुतः वस्तुनिष्ठ के हिमायती है। वे कविता को

---

[64] संशयात्मा, गिरेटची से पृ0 127
[65] संशयात्माः कविता के दोड़ते पाँव पृ0 212

करना तक सीमित न मानकर उसे मानव जीवन से जोड़ने का प्रयास करते हैं। वे कविता की बनावट और बुनावट की बात करते हुए वाक्य को कविता की इकाई मानते हैं। कविता के सर्जनात्मक परिदृश्य के लिए समकालीन परिवेश को उत्तम मानते हैं। गद्य और पद्य के आपसी संबंधों के विषय में वे कविता को गद्य का संघनित रूप मानते हैं।

fu"d"k

इसमें समकालीन कविता क्या है। समकालीनता, समसामयिकता, तात्कालिकता के विषय में बताया गया है साथ ही समकालीन कविता के सीमांकन तथा उसमें आने वाले समकालीन कवियों को भी चिर्0ित किया गया है। समकालीन कविता के स्वरूप के विषय में दर्शाते हुए उसकी विशेषताएँ तथा प्रवृत्तियों की ओर ध्यानाकर्षित किया गया है। जहाँ तक सवाल समकालीन कविता के स्वरूप का है, तो समकालीन कविता अपने समय के यथार्थ की अभिव्यक्ति है। यह कविता उन विमर्शों को उजागर करती है जो ज्वलंत होते है। इस कविता में मुख्य रूप से जन सामान्य की हित चिंता, व्यवस्था विरोध का उग्र तेवर, राजनीतिक अन्तर्विरोधों पर व्यंग्य, साम्प्रदायिकता का विरोध, आतंकवाद, पर्यावरण चिंता, आदिवासी जीवन की पीड़ा, रंगभेद और औपनिवेशिक शोषण का विरोध आदि प्रवृत्तियाँ समकालीन कविता के स्वरूप को दर्शाया गया है।

v/;k;&rhu

पर्यावरण चेतना : संस्कृति और साहित्य

1- भारतीय दर्शन संस्कृति और पर्यावरण

1-1 onk e i;koj.k

1-2 lfgrkvk e i;koj.k

1-3 /ke&l=k e i;koj.k

1-4 mifu"knk e i;koj.k

1-5 ckã.k xFkk e i;koj.k

1-6 Lefr;k e i;koj.k

1-7 ijk.kk e i;koj.k

1-8 tu /ke e i;koj.k

1-9 Hkkjrh; lLdfr e i;koj.k

2- Hkkjrh; lkfgR;] dyk vkj i;koj.k

2-1 jkek;.k e i;koj.k

2-2 egkHkkjr e i;koj.k

2-3 Hkkjrh; dyk e i;koj.k

2-4 vfHky[kk e i;koj.k

2-5 Hkkjrh; lkfgR; e i;koj.k

3- i;koj.k ifjj{k.k e ukjh dh Hkfedk

4- i;koj.k ifjj{k.k e vkfnoklh dh Hkfedk

fu"d"k

1- भारतीय दर्शन : संस्कृति और पर्यावरण

पर्यावरण परि + आवरण दो शब्दों से मिलकर बना है। जिसका अर्थ चारो तरफ का घेरा होता है। 'परि' उपसर्ग है। इसका अर्थ चारो ओर आच्छादित एवं सब दि"ााओं में और 'आवरण' का अर्थ घेरना है। यानी चारो ओर से घेरने वाला पर्यावरण। चारो ओर की भूमि, वायु और पानी ही हमारा पर्यावरण है।

जीवों की अनुक्रियाओं को प्रभावित करने वाली समस्त भौतिक तथा निवीय परिस्थितियों के योग को 'पर्यावरण' कहा गया है। अर्थात् हमारे विकास को प्रभावित करने वाले चारो ओर विद्यमान संपूर्ण जड़ और चेतन पदार्थों का सामूहिक नाम पर्यावरण है।

प्रकृति में जो कुछ भी हमें परिलक्षित होता है सभी सम्मिलित रूप में पर्यावरण की रचना करते हैं। कारण, पर्यावरण का प्राणियों के जीवन में बहुत महत्व है। पर्यावरण से पृथक किसी जीव की कल्पना भी असम्भव है।

पर्यावरण और जीवन का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। आका"ा, वायु, जन, भूमि और अग्नि पर्यावरण के प्रमुख घटक है। पर्यावरण के घटकों के पारस्परिक व्यवहार द्वारा प्रकृति का निरंतर संतुलन बना रहता है। यदि कोई भी घटक सीमा से बाहर निरंतर उपयोग में आता है तो पर्यावरण में असंतुलन होने लगता है। इसी प्राकृतिक असंतुलन का नाम प्रदूषण है।

जगत उत्पत्ति काल से ही पर्यावरण संरक्षण का प्रादुर्भाव हुआ। मानव द्वारा सर्वप्रथम श्वास लेकर छोड़ते तथा मलमूत्र एवं पसीने का त्याग करते ही प्रदूषण आरम्भ हुआ। प्रदूषण की अवधारणा आज की ही हो सकती है। किन्तु इसकी स्थिति प्रकृति के आदि गर्भ से है।

सभ्यता के अनुसार प्रदूषणों के रूप परिवर्तित होते रहे हैं। यदि मानव द्वारा भोजन तथा आवास आदि की व्यवस्था के साथ अन्न, जल, लकड़ी आदि का उपयोग करने से प्रकृति में असंतुलन एवं दोष बढ़ना शुरू हुआ। प्रदूषण के दुष्प्रभाव से बचने के लिए ऋषियों ने मनुष्य को अवगत कराया है। वेदो के अनुसार हम

ज्ञान–विज्ञान की उन्नति में लगे रहें, उसमें बाधक न बने। प्रकृति की प्र"ांसा के विषय में कहा गया है कि प्रकृति देवी के सौन्दर्य को देखो, उससे प्रसंन्नता को प्राप्त करो, जो मूर्त रूप में भगवान का काव्य है। प्रकृति नियमों के अनुसार अपना जीवन व्यतीत करो।

आदि मानव द्वारा भोजन तथा आवास आदि की व्यवस्था के लिए अन्न, जल, लकड़ी आदि का उपयोग करने से इस प्रकृति में असंतुलन एवं दोष बढ़ना शुरू हुआ। परन्तु ऐसा नहीं था कि प्रदूषण के दुष्प्रभाव से मनुष्य अवगत न रहा हो। इसलिए ऋषियों ने मनुष्य को मनन"ील होकर दिव्य समाज तथा स्वर्गीय व वातावरण बनाने का आदे"ा दिया है। हमारी भारतीय संस्कृति में आरण्यक जीवन जीने के लिए प्रेरणा दी जाती रही है। प्राचीन काल में गुरूकुलों और आश्रमों की स्थापना नदियों के संगमों पर और पहाड़ों की तलहटियों में की जाती थी। प्रकृति के सीधे संम्पर्क में रहने से जीवन सरल एवं कृत्रिमता से रहित रहता है। मनुष्य का मन, बुद्धि और शरीर शुद्ध एवं स्वस्थ रहता है। जीवन और पर्यावरण का अन्योऽन्य सम्बन्ध है। इसलिए वैदिक काल से मानव दीर्घायु सुस्वास्थ, जीवन–"ाक्ति, प"ु–कीर्ति, धन एवं विज्ञान के प्रति जागरूक रहा।

केवल हिन्दू धर्म ही नहीं वरन् इस्लाम धर्म में भी प्रकृति को पूजनीय माना गया है। इस्लाम के अनुसार प्रकृति विरासत में प्राप्त हुई है। जिसे संजोना व संवारना प्रत्येक मुस्लिम का कर्त्तव्य बताया गया है। इसी प्रकार धर्म ने भी प्रकृति को देवी माना है। प्रकृति सौन्दर्य की प्र"ांसा करते समय अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि कीटस ने कहा है – ''प्राकृतिक सौन्दर्य ही वास्तविक सौन्दर्य है, इस सौन्दर्य को प्राप्त करने के प"चात् कुछ भी अव"िाष्ट नही रहता।''[1]

बौद्ध काल में नगर योजना बद्ध बनाये जाते थे। भिक्षु खुले वातावरण एवं वनों में एकत्र होते थे। प्राचीन भारत में मानव का मुख्य ध्येय प्राकृतिक व्यवस्था के साथ तारतम्यता रखना था। धर्म"ाास्त्र उपनिषदों एवं मनु आदि ने सदैव तारतम्यता

[1] मानव एवं पर्यावरण, पृ0 25।

पर जोर दिया है। क्योंकि वन एवं प्रकृति जीवन को एक नि"चत दि"ाा प्रदान करते है। प्राचीन काल में मानव अपनी चेतना का विकास आस–पास की भूमि से करता था।

वेदों, उपनिषदों, ब्राह्मण ग्रन्थों, पुराणों में सूर्य, अग्नि, जल, वायु, व इन्द्र आदि की उपासना करने का प्रावधान है। पर्यावरण–संरक्षण के लिए प्राकृति पदार्थों की यथास्थिति आव"यक है। पर्यावरण के महत्व को समझकर ही उसके कोप से होने वाले भीषण परिणाम की कल्पना कर वि"व शान्ति की भावना रखते हुए शान्ति पाठ किया कि वायु हमारे लिए सुख–रूप होकर चले। सूर्य सुख–रूप होकर तपें एवं अत्यन्त गरजने वाले पर्जन्य देव भी हमारे लिए सुख–रूप होकर अच्छी तरह बरसे।

पृथ्वी, जल, वायु, आका"ा, चन्द्र और सूर्य आदि से समस्त पृथ्वी–मण्डल का पर्यावरण बनाता है। इन पर्यावरण तत्त्वों के संरक्षण के लिए वैदिक चिंतन में इन्हें देवता माना गया है। प्रकृति के जिन पदार्थों से हमारे शरीर का निर्माण और पालन हो रहा है उनका संरक्षण तन, मन, धन से करने का आदे"ा दिया है। शुद्धता एवं पवित्रता सृष्टि के पदार्थों का स्वभाव है। उसके निवारण के विषय में भी वैदिक वाडमय में वर्णन उपलब्ध होता है। प्रदूषण निवारण के लिए यज्ञ, हवन, अत्यन्त सुगम, तथा श्रेष्ठ साधन बताया गया है। जिससे वायु, जल, और अन्नादि की शुद्धि होती है। वनों की रक्षा प"ुपालन, शौच एवं अहिंसा के बिना यज्ञ संभव नही है। प्राचीन काल में वृक्ष को काटना, नदी का पानी दुषित करना, वायु शुद्धि एवं भूमि शुद्धि निमित्त यज्ञ करना और जीव–जन्तु संरक्षण की धारणा उपलब्ध होती है।

वर्तमान कालीन मानव निर्दयता से पेड़ों को काट रहा है, कारखानों से निकलने वाले जहरीले रसायनों को पानी में छोड़ रहा है जिसके फलस्वरूप वर्षा का अभाव, सूखा पड़ना, धरती के अन्दर पानी की समाप्ति एवं वायु–प्रदूषण बढ़ता ही जा रहा है। प्राचीन काल से मध्यकाल तक पर्यावरण पर अत्यधिक ध्यान दिया जाता रहा है। वर्तमान पर्यावरण प्रदूषण की समस्या का सामना कर रहा है। अतः

सबसे महती आव”यकता इस बात की है कि वर्तमान एवं भावी पर्यावरण को शुद्ध रखने की दृष्टि से जनसंख्या पर नियंत्रण किया जाना अनिवार्य है। कम जनसंख्या, कम गति”ीलता व तकनीकि संसाधनों का कम दोहन प्रकृति के संतुलन को बनाए रखने मे सहायक सिद्ध होते है।

आधुनिक युग में वृक्षों के महत्व को समझकर सारे वि”व में पर्यावरण शुद्धि के उपायों को प्रयास किया जा रहा है। हर प्रकार के लोगों के मन मस्तिष्क में पर्यावरण संरक्षण की धारणा को बिठाने का प्रयास हो रहा है। स्थान–स्थान पर वृक्ष वाटिका एवं वनों को लगाया जा रहा है। प्रत्येक निर्मित स्थान पर संरक्षित सूचित चित्र एवं पदृ लगाए जा रहे है। विद्वान लोग पत्रिकाओं, आका”ावाणी केन्द्रों एवं दूरद”ार्न केन्द्रों से पर्यावरण–संरक्षण सम्बन्धी विचारों को प्रकट करते है। पर्यावरण संरक्षण संस्थाए विद्यालयों, एवं महाविद्यालयों में जाकर पर्यावरण संरक्षण के प्रति छात्र–छात्राओं को जागरूक बनाये रखने भाषण एवं गोष्ठियों का आयोजन करते है।

पौराणिक युग में ऋषि, महाकवि, नाटककार एवं ग्रन्थकार ने लोगों से पर्यावरण–संरक्षण सम्बन्धी मानसिक चिंतन बनाये रखने के लिए अपने ग्रन्थों में प्रकृति के तत्त्वों को देवता का रूप देकर उसे शुद्ध रखने के लिए स्तुतियाँ की। गंगा जैसी नदियों को मोक्षकारिणी बताकर एक धारणा बना ली गई। वृक्षों को काटने से पाप और लगाने से पुण्य मिलता है। भूमि को माता के समान और आका”ा को पिता के समान बताया गया है। प”ाु–पक्षियों को देवी–देवताओं के वाहक का प्रतीक माना गया है।

वैदिक काल में लोग वैदिक रीति एवं ग्रन्थों के अनुसार ही कार्य करते थे। इसे वह अपना धर्म समझते थे। इस कारण पर्यावरण शुद्ध रहता था। पर्यावरण शुद्ध रखने के लिए हर निवास पर वैदिक रीति से हवन किये जाते थे। जल को देवता रूप मानकर शौच उससे दूर किया जाता था। वनों को तपोवन एवं ऋषियों का निवास मानने के कारण उनका संरक्षण होता रहा। वैज्ञानिक युग होने के कारण

वर्तमान काल में किये गए प्रयास किया के रूप में अधिक है। वर्तमान समय में इस बात की आव"यकता है कि वैदिक युग की विचारधारा का अनुसरण किया जाय। उस समय की धारणा के अनुसार पवित्र स्थान एवं घर को देवता का निवास स्थान बताया गया है। वैदिक पद्धति से आधुनिक समय में यदि पर्यावरण शुद्ध रखने के प्रयास किए जाए तो हम पर्यावरण को सुरक्षित रखने में सफल हो सकते है।

1-1 osnksa esa i;kZoj.k

वेद का संदे"ा है कि यदि मनुष्य वायु, जल, भूमि, प्रकृति के घटकों को शुद्ध स्वच्छ रखता है तो पर्यावरण स्वयं ही हमारे लिए हितकारी व शुद्ध रहेगा। वेद हमारा मार्ग प्र"ास्त करता है कि किस प्रकार हमें प्रकृति के तत्त्वों से उपयोग लेना है और कैसे इनकी रक्षा करनी है।

अथर्ववेद में वर्णन है कि पर्यावरण के संघटक तत्त्व तीन है। जल, वायु और औषधियाँ। ये भूमि को घेरे हुए है और मानव मात्र को प्रसन्नता देते है। अतः इन्हें छन्दस (छनद) कहा गया है। इनके नाम और रूप अनेक है। अतः इन्हें पुरूरूपम कहा गया है। प्रत्येक लोक को ये तत्त्व जीवन रक्षा के लिए दिए गए है।

> ''त्रीणि छन्दांसि कवयो वि ये तिरे
> पुरूरूपं द"र्ातं वि"वचक्षणम्
> आपो वाता ओषधयः
> तान्येकस्मिन भुवन आर्पितानि।''[2]

सामान्य रूप से यदि देखा जाय तो जल और वायु ही पर्यावरण के प्रमुख घटक है। यहाँ औषधि को भी उसके एक घटक के रूप में माना गया है। जिस प्रकार जल और वायु के बिना जीवन असंभव है उसी प्रकार वृक्ष वनस्पतियों के बिना भी जीवन का अस्तित्व संभव नही है। वनस्पतियों को सर्वप्रथम महत्व देने का कार्य वेदों में दिखाई देता है।

[2] अथर्ववेद 18/1/17।

वायु मानव जीवन का आधार है। इसलिए जीवन रक्षा के लिए वायु प्रदूषण के सभी तत्त्वों का नियंत्रण आव"यक है। अथर्ववेद में 'आपो वाता औषधय' कहकर यह निर्दे"ा दिया गया है कि पर्यावरण की रक्षा के लिए वायु की शुद्धि पर ध्यान देना अनिवार्य है। अथर्ववेद में ही वायु और सूर्य के महत्व का वर्णन करते हुए कहा गया है कि तुम दोनों संसार के रक्षक हो। तुम अंतरिक्ष में व्याप्त हो। तुम ही सभी प्रकार के रोगों को नष्ट करते हो।

''युवं वायो सविता च भुवनानि रक्षयः''[3]

वायु के महत्व का वर्णन करते हुए कहा गया है कि वायु में दो गुण है – एक प्राण वायु के द्वारा मनुष्य में जीवन शक्ति का संचार करना और अपान वायु के द्वारा सभी दोषों को शरीर से बाहर करना। इसलिए वायु को वि"वभेषज कहा गया है। क्योंकि यह सभी रोगों व दोषों को नष्ट करता है।

''आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद् रपः
त्वं ही वि"वभेषज देवानां दूत ईयसे।''[4]

वायु के महत्व पर ऋग्वेद में वर्णन आया है कि हे वायु तुम्हारे पास अमृत का भण्डार है। तुम हो जीवन शक्ति के दाता हो। तुम संसार के पिता हो, भाई और मित्र हो। तुम सब रोगों की औषधि हो।

''यददो वात ते ग्रहे अमृतस्य निधिहित
तेन नो देहि जीवसे।''[5]

ऋग्वेद के एक मंत्र में निर्दे"ा है कि वायु में अमृत अर्थात् आक्सीजन (O_2) है। उसे नष्ट न होने दिया जाय। इसका तात्पर्य है कि मानव द्वारा ऐसा कोई कार्य न किया जाय, जिससे वायु में आक्सीजन की कमी हो जाय।

''नू चिन्नु वायोरमृतं वि दस्येत।''[6]

---

[3] अथर्ववेद 4/25/3।
[4] अथर्ववेद 4/13/3।
[5] ऋग्वेद 10/86/3।
[6] ऋग्वेद 6/37/3।

वेदों में भूमि के चारों ओर विद्यमान ओजोन (O_3) की परत का उल्लेख हुआ है। ऋग्वेद में ओजोन की परत के लिए 'महत उल्ब' शब्द आया है तथा उसे स्थविर अर्थात् स्थूल अथवा मोटी परत कहा गया है। उल्ब शब्द गर्भस्थ ि"ा"ु के ऊपर ढकी हुई झिल्ली के लिए आता है। यहाँ पर पृथ्वी को एक गर्भस्थ ि"ा"ु मानते हुए उसकी रक्षा के लिए विद्यमान ओजोन की परत को महान व स्थूल कहा गया है। मंत्रों के द्वारा स्पष्ट होता है कि ओजोन की परत पृथ्वी की रक्षा करती है इसको हानि पहुँचाना उसी प्रकार संकटाकरी है जैसे गर्भस्थ बालक की झिल्ली से छेड़–छाड़ करना।

> ''महततदद्‌ुल्बं स्थविरं तदासीद्, येनाविष्टित, प्रविवे"ाथापः
> तस्योत जायमानस्य उल्ब आसीद् हिरण्ययः।''[7]

यह ओजोन परत सूर्य से निकलने वाली लघु पराबैगनी किरणों का 99 प्रति"ात अव"ोषण कर लेती है तथा पृथ्वी के पेड़–पौधों व जीव–जन्तुओं को भस्म होने से बचाती है। अतः इस ओजोन परत का मानव जीवन एवं प्रकृति की रक्षा के लिए बहुत महत्व है। सारा वि"व ओजोन की परत में होने वाले छिद्र से अत्यन्त चिंतित है।

वेदों में वायु मण्डल की शुद्धि के लिए द्यावापृथिवी के संरक्षण पर वि"ोष बल दिया गया है। द्यावा में सूर्य आदि लोक, अंतरिक्ष व पृथ्वी तीनों का समावे"ा है। द्यावापृथिवी परस्पर सम्बद्ध है। इनमें पोष्य–पोषक सम्बन्ध है। सूर्य ऊर्जा का महास्रोत है, अन्तरिक्ष वृष्टि का कारक है तथा पृथिवी ऊर्जा और वृष्टि इत्यादि का उपयोग कर अन्नादि की समृद्धि से मानव जीवन को संचालित करती हैं। ये तीनों परस्पर अनुस्यूत हैं। वायु मण्डल प्राण ऊर्जा (O_2) देकर मानवमात्र को जीवित रखे हुए है। पेड़–पौधे आक्सीजन देकर मानव को शक्ति प्रदान करते है। पेड़–पौधों का जीवन वर्षों पर निर्भर होता है इसलिए वृष्टि चक्र को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए यज्ञ इत्यादि को उपयोगिता पर बल दिया गया है। पृथ्वी, जल, वायु व अग्नि ये

[7] अथर्ववेद 4/2/8।

समन्धित रूप से मानव जीवन का संचालन कर रहे हैं। यह संतुलन जब बिगड़ता है तब विना"ा की प्रक्रिया आरम्भ होती है जिसका कारण प्रदूषण है।

वेदों के अनेक मंत्रों में द्युलोक को पिता तथा पृथ्वी को माता स्वीकार किया गया है। यदि द्युलोक अथवा अन्तरिक्ष दूषित होता है तो ऊर्जा के स्रोतों को हानि पहुँचती है। तथा यदि भूमि प्रदूषित होती है तो मानव जीवन संकठ में आ सकता है। इसीलिए दोनों के संरक्षण पर बल दिया गया है। अथर्ववेद में ऐसा वर्णन मिलता है कि पृथ्वी हमारी माता है और हम उसी के पुत्र हैं।

''माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः।''[8]

यजुर्वेद में कहा गया है कि पृथ्वी माता है और द्युलोक पिता है।

''पृथिवी माता, द्यौष्पिता''[9]

अथर्ववेद में वर्णन आया है कि पृथ्वी माता है, अंतरिक्ष भाई है और द्युलोक हम सभी के पिता है।

''भूमिर्माता, भ्रातान्तरिक्षम, द्यौर्नपिता''[10]

जिस प्रकार माता–पिता की सेवा करना, उनको कष्ट से बचाना और उनकी रक्षा करना पुत्र का कर्त्तव्य होता है उसी प्रकार प्रकृति की रक्षा करना, उसको प्रदूषण से बचाना व उसके उपहारों का सदुपयोग करना हम सभी का कर्त्तव्य होता है।

''द्यावा पृथिवी पिता माता''[11]

यजुर्वेद के एक मंत्र में उल्लेख आया हैं कि – द्युलोक और पृथ्वी ऊर्जा प्रदान करते हैं। वनस्पतियाँ शक्ति प्रदान करती हैं और जल ओज (बल या वीर्य)

---

[8] अथर्ववेद 12/1/12।
[9] यजुर्वेद 2/10/11।
[10] अथर्ववेद 6/120/2।
[11] ऋग्वेद 5/43/2।

प्रदान करता है। इसी प्रकार द्यु–भू वनस्पतियाँ तथा जल विभिन्न प्रकार की ऊर्जा के स्रोत हैं।

> ''दिवः पृथित्याः पर्योज, उद्भृतम्, वनस्पतिभ्यः
> पर्याभृतं सहः अपाम् ओज्मानम्।''[12]

ऋग्वेद के एक मंत्र में कहा गया है कि पृथ्वी माता हम सभी को मधुर दूध और अन्न जल प्रदान करती है। द्युलोक के द्वारा अमृत की प्राप्ति होती है और यह अमृत दो रूपों में है। एक सूर्य के द्वारा ऊर्जा और प्रका"ा तथा बादलों से पवित्र जल।

> ''येभ्यो माता मधुमत् पिन्वते स्वः पीयुषं द्यौः।''[13]

वेदों में अनेक स्थानों पर द्यु–भू को प्रदूषण से मुक्त रखने का निर्दे"ा दिया है। यह भी आदे"ा दिया है कि मनुष्यों के द्वारा ऐसा कोई कार्य न किया जाय जिससे द्यु–भू को हानि पहुँचे। एक मंत्र में चेतावनी दी गई है कि द्यु–भू चेतन तत्त्व है ये हमारे रक्षक हैं। यदि इनको दुषित किया जाता है तो विना"ा, विपत्ती व संकट विद्यमान होगे।

> ''द्यौश्रृ नः पृथिवी च प्रचेतस....... रक्षताम्।
> मा दुर्विदत्ता निर्ऋतिर्न ई"ातः''[14]

यजुर्वेद के एक प्रसिद्ध मंत्र में द्यु–भू, अंतरिक्ष, जल, औषधियाँ और वनस्पतियों से प्रार्थना की गई है कि वे प्रदूषण मुक्त होकर हमारे लिए सुख शान्ति प्रदान करें।

> ''द्यौः शान्तिः अन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिः
> आपः शान्तिः औषधयः शान्तिः वनस्पतय शान्तिः।''[15]

---

[12] यजुर्वेद 29/53।
[13] ऋग्वेद 10/63/3।
[14] ऋग्वेद 10/36/2।
[15] यजुर्वेद 36/17।

एक मंत्र में यह वर्णन किया गया है कि हम सभी पृथ्वी के जिस भाग को खोदते हैं उसको फिर पूर्ण किया जाय। किसी भी स्थिति में पृथ्वी के हृदय और मर्म स्थलों क्षति न पहुँचाया जाय। इसका तात्पर्य यह है कि हम पृथ्वी से रत्न, कोयला, गैस, पेट्रोल इत्यादि जो भी पदार्थ निकालते है उससे खाली हुए स्थान को पुनः पूर्ण कर दें, अन्यथा भू–संतुलन बिगड़ता है और भूकम्प, भू–भाग का दब जाना, जलादि व स्रोतों का सूख जाना इत्यादि संकट उत्पन्न होते हैं।

''यत्ते भूमे विखनामि क्षिप्रं तदपि रोहतु।
म ते मर्म विमृग्वरि मा ते हृदय र्पिपम्।।''[16]

वेदों में जल की उपयोगिता और महत्व पर प्रका"ा डाला गया है। जल जीवन है, अमृत है, भेषज है, रोगना"ाक है और आयुर्वक है। जल को दूषित करना पाप माना गया है जल की उपयोगिता का वर्णन करते समय यह कहा गया है कि जल में औषधियों के तत्त्व विद्यमान है। अतः जल सम्पूर्ण रोगों का इलाज है। जल अमृत है और मनुष्य को जीवनी शक्ति प्रदान करता है। जल को शक्ति वर्धक और रोगना"ाक कहा गया है। जल में सोम आदि का रस मिलाकर सेवन करने से मनुष्य दीर्घायु होता है। जल के विषय में यहा तक कहा गया है कि जल से सम्पूर्ण रोग नष्ट हो जाते है यहाँ तक की इससे आनुवं"ाक रोग भी नष्ट हो जाते हैं। जल को सबसे उत्तम वैद्य कहा गया है। और बतलाया गया है कि यह आँख, पैर आदि के सभी प्रकार के दर्द को दूर करता है। यह हृदय के रोगों का इलाज करता है।

आपो वि"वस्य भेषजीः तास्त्वा मुøान्तु क्षेत्रियात[17]
आपः व भिषजां सुभिषक्तमा[18]
आपो हृदद्योत भेषजम[19]

[16] अथर्ववेद 6/120/2।
[17] अथर्ववेद 3/7/5।
[18] अथर्ववेद 6/24/2।
[19] अथर्ववेद 6/24/1।

वेदों में नदियों और समुद्र को मनुष्य का सुखदायक सुख–साधक बताते हुए यह कहा गया है कि – नदियाँ मनुष्य को सुख सुविधा प्रदान करती है। नदियाँ घृत के समान पुष्टिकारक और मधुर जल देती है। समुद्र का महत्व बताते हुए कहा गया है कि समुद्र रत्न आदि धन का दाता है। समुद्र वर्षा का आधार है और यह विद्युत का केन्द्र भी है। एक मंत्र में कहा गया है कि जल, औषधि और वनस्पतियों में भेषज के गुण है और ये हमारे रक्षक है। एक अन्य मंत्र में मानव के रक्षक पदार्थों में जल, औषधि, वन, वृक्ष, पर्वत और द्युलोक का उल्लेख है। इन पदार्थों को हानि पहुँचाना अपनी रक्षा को संकट में डालना है।

''आप ओषधीरूत नोऽवन्तु, द्यौर्वना गिरयो वृक्षके"ाः।''[20]

पद्य पुराण के क्रियायोगसार खण्ड के अध्याय 8 के श्लोक 8 से 13 तक तीर्थ यात्रा सम्बद्ध नियम है। इनमें कहा गया है कि गंगा के जल में थूकना, मूत्र करना, कूड़ा–करकट डालना, गंदा जल डालना और गंगा के किनारे शौच आदि करना पाप है। ऐसा करने वाला नरक में जाता है और उसे ब्रह्म हत्या का पाप लगता है।

''मूत्रवाऽथ पुरीषं वा गंगा तीरे करोति यः।
न दृष्टा निष्कृतिस्तस्य कल्प कोटि शर्ते रपि।
श्लेष्माणं वापि निष्ठीव दृषिताबवश्रुवा मलम्।
उच्छिष्टं कफकं चैव गंगागर्भे च यस्त्यजेत।
य याति नरक घोर ब्रह्महत्यां च विन्दति।''[21]

मनु स्मृति ने बड़े कारखाने को प्रदूषण का कारण मानते हुए इन्हें लगाना पाप माना है। इनसे वायु प्रदूषण के साथ ही जल प्रदूषण भी होता है। कारखानों का गंदा पानी नदी व तालाबों आदि को दूषित करता है और प्रदूषण फैलाता है।

''महायन्त्रप्रवर्तनम..............उपपातकम।''[22]

[20] अथर्ववेद 1/13/3।
[21] पद्यम पुराण क्रियायोग 8/8 से 10।
[22] मनु स्मृति 11/63–66।

वेदों और ब्राह्मण ग्रन्थों में वृक्ष–वनस्पतियों का बहुत महत्व वर्णन किया गया है। अथर्ववेद में उल्लेख है कि वृक्ष–वनस्पतियों में शमी को देवों की शक्तियाँ विद्यमान है। ये मनुष्य को जीवन शक्ति प्रदान करती है और उसकी रक्षक है। औषधियाँ प्रदूषण को नष्ट करती हैं। इसलिए इन्हें विषदूषणी कहा गया है।

वृक्ष संसार की रक्षा करते हैं और उसे प्राणवायु (O_2) रूपी दूध पिलाते हैं। इसलिए उन्हें माता कहा गया है। वृक्ष मनुष्य को जीवित रखते हैं। इसलिए उन्हें मानव मात्र का रक्षक कहा गया है। वृक्षों को प्रदूषण का ना”ाक बताया गया है और वे वायु मण्डल के दोषों को समाप्त करते है।

मत्स्य पुराण में एक सुन्दर बात कही गयी है कि 'द”ापुत्रसमोद्रुमः' अर्थात् एक वृक्ष जनहित की दृष्टि से दस पुत्रों के बराबर है। इसका तात्पर्य यह है कि दस पुत्र अपने जीवन काल में जितना उपकार कर सकते हैं उतना एक वृक्ष करता है।

शतपथ ब्राह्मण में यह वर्णित है कि वृक्ष–वनस्पति (औषधियाँ) प”ुपति अर्थात् ि”ाव के रूप में हैं। यजुर्वेद के रूद्राध्याय में ि”ाव को वृक्ष, वनस्पति, वन, औषधि, लता–गुल्म और कृषि एवं क्षेत्र (खेत आदि) का स्वामी बताया गया है। भगवान ि”ाव का ि”ावत्व यही है कि वह विष को पीते हैं और अमृत प्रदान करते हैं। वृक्ष–वनस्पति ि”ाव के रूप है। ये कार्बन डाई आक्साइड (CO_2) रूपी विष को पीते है और आक्सीजन (O_2) रूपी अमृत (प्राणवायु) को छोड़ते है। यह इनका ि”ाव रूप है। ि”ाव का दूसरा रूप रूद्र है। यह संसार का ना”ाक है। यदि वृक्षों को काटा जाता है और प्रदूषण का नियंत्रण नही होता है तो वि”व का संहार अथवा विना”ा अव”य भावी है। यह है ि”ाव का रूद्रत्व अथवा रौद्र रूप –

औषधयो वै प”ुपति
नमो वृक्षेभ्यों हरिके”ोभ्यः। क्षेत्राणां पतये नमः
वनानां पतये नमः। वृक्षाणां पतये नमः।
औषधीनां पतये नमः। कक्षाणां पतये नमः।[23]

[23] यजुर्वेद 16/17–19।

यजुर्वेद में वृक्षों के लाभ का वर्णन करते हुए कहा गया है कि वृक्ष मधुर फल देते हैं। ये वर्षा करने वाले बादलों को आकृष्ट करते है और पृथ्वी को दृढ़ बनाते हैं। अच्छी वृष्टि के लिए वृक्षों की अत्यन्त उपयोगिता है।

''वनस्पतिः देवमिन्द्रम् अवर्धयत्। पृथिवीम् अछृंहीत।''[24]

मनु स्मृति में वर्णन किया गया है कि हरे वृक्षों को ईधन के लिए काटना अथवा कटवाना पाप है। हरे वृक्षों को काटना हिंसा है और इसके लिए अपराधी को यथा योग्य दण्ड देना चाहिए। विष्णु स्मृति ने किस प्रकार के वृक्ष काटने वाले को कितना दण्ड देना चाहिए इसका भी विवरण दिया है। फल के काम में आने वाले वृक्ष को काटने पर एक हजार रूपया, फूल वाले वृक्ष को काटने पर पाँच सौ रूपया और लता–झाड़ी आदि काटने पर सौ रूपया दण्ड दिया जाय। इन अपराधों को क्रम"ाः उत्तम (बड़ा), मध्यम (मध्यम) और सामान्य साहस (अपराध) बताया गया हैं।[25]

1-2 lfgrkvk e i;koj.k

वेदो के उपरान्त संहिताओं का समय आरम्भ हुआ। वैदिक मन्त्रों का एक ही अर्थ निकाला जाता था। परन्तु वैदिक संहिताओं में एक मन्त्र में अनेको भाव या अर्थ उपलब्ध होते हैं। वैदिक संहिता के विषय में कहा गया है – ''जैसे दुधारू गायें दूध देने के लिए हाँ भरती हैं वैसे ही तीनों वेद संहिताएँ अपना–अपना ज्ञान–विज्ञान और कर्म का रसयान कराने के लिए अपना–अपना अभिप्राय प्रकट करती है।'' पर्यावरण–संरक्षण के प्रति संहिताओं में अनेक धारणाएँ उपलब्ध होती है। सुख–"ाान्ति, अहिंसा और कल्याण के अभिलाषी विद्वानों ने प्रकृति में रहने वाले जड़ चेतन और पंचभूतों में जो सामर्थ्य पाया है उसका क्षय (विना"ा) न हो इसके लिए परमात्मा से अनेकों प्रार्थनाएँ की है। हमलोग चर, जंगम, मनुष्य, प"ाु–पक्षी आदि प्राणधारी पर्वत आदि स्थान और पोषण करने वाले वृक्ष, अन्न से एवं सब जीवों को तृप्त करने वाले उस परमात्मा को ज्ञान और रक्षा के लिए स्मरण करते है। उत्पादक परमे"वर के सामर्थ्य के विषय में भी विचार व्यक्त किया गया है। जो

[24] यजुर्वेद 28/20।
[25] विष्णु – अध्याय–5।

सामर्थ्य सूर्य, पृथ्वी, पर्वतों, औषधियों एवं जलों में है उन सब सामर्थ्यों से अनुग्रह करते हुए व”ा में करने का वर्णन किया गया है। दिव्य और पृथिवस्थि पदार्थ हमें सुख दे। चारों दि”ाएँ शान्तिदायक हो। ध्रुव स्थित पर्वत शान्तिदायक एवं नदियों का जल–प्रवाह हमें सुखकारी हो। अंतरिक्ष में उत्पन्न मेघ हमें शान्ति दे। सागर और आका”ा हमें शान्ति दे। इसके अतिरिक्त अग्नि–तत्त्व अपने व्यापन और दाह आदि गुणों से युक्त पदार्थों से हमें शान्ति प्रदान करे। सूर्य हमें शान्ति सुखदायक और रोगना”ाक करने वाला होकर तपें। वायु रोग रहित होकर बहे और शान्तिदायक हो। रोगादि दुःख जनित पीड़ाएँ दूर हो और जो आगे होने वाला हो वह भी हमें सुख दे अर्थात् पर्यावरण संतुलन बना रहे। सूर्य और चन्द्र प्राण और अपना हमें सुख दें, हमारा कल्याण करें। और करने योग्य वायु हमें सुख दे और पुष्टिकारक प्राण जीवन देने वाला अन्न और मेघ हमारा कल्याण करें।[26]

जो लोग नित्य धर्म–नियमों का पालन करते है और करवाते हैं वे ही ऐ”वर्य से बसाने और उनकी रक्षा करने में समर्थ होते है। जो द्रोह रहित होकर नियमों और अन्नों की रक्षा करता है वह नियम के अनुकूल होकर समृद्ध है। इसलिए संहिताओं में संरक्षण के साथ–साथ सबके साथ मिलकर सुख, शान्ति, कल्याण को धारण करने की धारणा उपलब्ध होती है।[27]

1-3 /ke&l=k e i;koj.k

''धर्म–सूत्रों में भूमि–”ाुद्धि, शौच और अहिंसा के प्रति धारणा उपलब्ध होती है। गौतम धर्म–सूत्र में शास्त्र विहित शौच नियमों का पालन करने का उल्लेख मिलता है।''[28] ''अन्य पाप–कर्मों और उनके प्रायf”चत के विषय में भी धारणाएँ है। पाप से विरक्ति का ध्येय बनाया गया है और निरंतर इस बात पर ध्यान दिया गया है कि प्रायf”चत का भय दिखाकर पाप दूर करने का उपाय किया जाए। परलोक का भय मनुष्य के आचरण को निरंतर सही दि”ाा की ओर प्रेरित करता है।''[29]

[26] ऋग्वेद संहिता, (VII 4, 51, 11)
[27] ऋग्वेद संहिता, पृ0 6, 90, 2।
[28] शौच f”ाष्ट – गौतम धर्म सूत्राणि, पृ0 9,71।
[29] गौतम धर्म–सूत्र, पृ0 23, 24।

धर्म–सूत्र आदे”ा देता है कि जिस कार्य में हानि हो, प्राण संकट में हो, वह कार्य न करो। क्योंकि मनुष्य का जीवन महत्वपूर्ण है। सभी प्रकार के उपायों से अपनी रक्षा करना धर्म है।[30]

1-4 mifu"knks esa i;kZoj.k

उपनिषद काल में पर्यावरण की धारणा उपलब्ध होती है। इस काल में पर्यावरण का रूप स्वच्छ था क्योंकि उस समय ऋषि–मुनि आत्मसात करने के लिए वनों में रहते थे। वहा गुरू और ि”ाष्य शान्त वातावरण में आत्म रहस्य में के प्र”न और उत्तर दिया करते थे। आध्यात्मिक ज्ञान के लिए शान्त एवं स्वच्छ वातावरण का होना अनिवार्य था। ऐसे स्वच्छ एवं शान्त वातावरण की धारणा का उल्लेख श्वेता”वर उपनिषद में किया गया है। समतल भूमि, परम पवित्र अग्नि तथा पत्थर का चुरा (रेत) आदि से रहित और प्रकृति की प्यारी संतान पक्षी आदि की मधुर कुहुकु, स्वच्छ जल वाली नदियाँ प्रकृति के बनाये लताकुंज और चित्त को शान्ति देने वाली देखने में सुन्दर गुफाएँ व चित्त को विक्षेप देने वाली वायु के प्रवाह से रहित स्थान में साधक चित्त को परमात्मा में लगाएँ।

शान्ति–सुख के अभिलाषी ऋषियों ने शान्ति, अहिंसा, रक्षा और सत्य की धारणा बनाए रखने के लिए देवों से प्रार्थना एवं '”ाान्ति–मंत्र' का उच्चारण किया है। ''हे देव! हम कानों से कल्याण कारक वचन सुने, आँखों से अच्छे दृ”य देखें। जब तक हमारी आयु होगी, तब तक सुदृढ शरीर अवयवों से युक्त होकर हम दिव्य विवुधों का हित करते रहें। तीन बार शान्ति का अर्थ है – व्यक्ति में शान्ति हो, राष्ट्र में शान्ति हो और वि”व में शान्ति हो।''[31] इसके अतिरिक्त 'ज्ञान स्वरूप शान्ति के लिए बुरे कर्मों से हटाकर मोक्ष मार्ग पर चलाए जाने, सौ वर्ष तक कर्म करते हुए जीने की इच्छा की धारणा यज्ञ की महत्ता, आदि का वर्णन मिलता है। साथ ही प्र”नोपनिषद में प्रकृति तत्त्व के संरक्षण के प्रति उत्तम धारणा उपलब्ध होती है – ''मै अपने आपको द्यौ और पृथ्वी लोक के अन्तर्गत जो कुछ है उस सब के संरक्षण

[30] वही, पृ0।
[31] तैतिरीय उपनिषद (I, 1)।

के लिए अर्पण करता हूँ क्योंकि सूर्य मेरा नेत्र है, वायु मेरा प्राण है, अन्तरिक्षस्थ तत्त्व मेरी आत्मा और पृथ्वी मेरा स्थूल शरीर है।''[32]

उपनिषदों में सत्य, धर्म, समृद्धि, स्वाध्याय, एकात्मद”ान और आत्मकल्याण करते हुए प्रमाद (आलस्य) न करने की अति उत्तम धारणा पाई जाती है। यही अंतिम आदे”ा–उपदे”ा–वेद रहस्य एवं ि”ाक्षा है।

1-5 ckã.k xUFkk e i ;koj.k

ब्राह्मण ग्रन्थों में पर्यावरण–संरक्षण के प्रति उत्तम धारणा उपलब्ध है। प्रकृति के पंचभूतों – पृथ्वी, जल, आका”ा, वायु और अग्नि का संतुलन बनाये रखने के लिए एवं दुषित होने से उसके संरक्षण के लिए यज्ञ क्रिया को अनिवार्य माना गया है। ब्राह्मण काल में यज्ञ की महत्ता अत्यधिक थी इसलिए यज्ञ को सूर्य के समान तेजस्वी कहा गया है। इसमें घी की आहुति दी जाती है। घी तेज है। इस प्रकार तेज के द्वारा तेज धारणा कराता है। घी को देवों का (जल, वायु और अग्नि) परमधान माना है। इस प्रकार इनको इन्ही के प्रिय धाम (यज्ञ) द्वारा बढ़ाया जाता है। आहुतियों अर्थात् अग्नि में चढ़ाए हुए पदार्थों से ही देवों (जल, वायु, सूर्य) को प्रसन्न किया जाता है।

ब्राह्मण ग्रन्थों में यज्ञ करने से फल प्राप्त होता है और न करने से उसकी भी धारणा उपलब्ध होती है। जहाँ यह यज्ञ होता है वहा इच्छा करने के समय वर्षा होती है। जहाँ यह यज्ञ करते हैं वहा वृक्ष फल वाले होते हैं। जहाँ यह यज्ञ किया जाता है वहा क्षेम–कु”ाल रहती है और जहाँ यह यज्ञ रचा जाता है वहाँ प्रजाएँ सकु”ाल रहती है।[33]

इसके अतिरिक्त जो प्रजा यज्ञ में भाग नहीं लेती उसे दलित या पतित कहा गया है। इसलिए जो पतित नहीं है उनको यज्ञ करना आव”यक माना जाता था।

[32] प्र”नोपनिषद, पृ0 137।
[33] शतपथ ब्राह्मण, पृ0 4, 5, 2।

क्योंकि मनुष्यों के पीछे प"ाु है, देवो के पीछे पक्षी औषधि वनस्पति है। इस प्रकार जो कुछ भी था उस समय यज्ञ में शामिल किया जाता था।

1-6 Lefr;k e i;koj.k

स्मृति काल में पर्यावरण सम्बन्धी धारणा अत्यन्त उत्कृष्ट रूप में दिखाई देती है। जल शुद्धि, वायु शुद्धि, भूमि शुद्धि के विषय में अनेक वर्णन मिलते हैं इसके अतिरिक्त वृक्ष, वनस्पति–संरक्षण, प"ाु संरक्षण की धारणा बनाये रखने के लिए दण्ड और प्राय"िचत विधान का वर्णन उपलब्ध होता है। अत्रि स्मृति में अत्रि जी त्रिलोकी के कल्याण के विषय में सम्पूर्ण पाप सन्देहों का ना"ा करने वाले सनातन धर्म शास्त्र का वर्णन करते है। जल शुद्धि के विषय में इस प्रकार वर्णन किया गया है – ''जला"ाय बावड़ी, कुँआ, तालाब, मृत्त इत्यादि के स्प"र् से दूषित हो जाते है या अस्थि और चर्म एवं गर्दभ–कुत्ते बीच में गिरकर मर गए तो उनकी शुद्धि छः सौ घड़े जल भरकर बाहर निकालने और सम्पूर्ण उदक निकालने से तथा पंचगत्य जलने से होती है।''[34]

भूमि संरक्षण की धारणा बनाये रखने के लिए पृथ्वी शुद्धि के उपायों का वर्णन किया गया है –

> ''समार्जनोपाच°ानेन सेकेनोल्लेखनेन च
> गवा च परिवासेन भूमि शुद्धयति पंचाभि''[35]

अर्थात् पृथ्वी की शुद्धि जल छिड़कने, बुहारने, लीपने और खोदने से ही हो जाती है और गायों के रहने से भी होती है। स्वस्थ रहता हुआ जो व्यक्ति राजमार्ग पर मल–मूत्र कर दे, राजा उसे दो कार्षापण से दण्डित करे तथा उसी सं उस मल–मूत्र को साफ करावाए। यदि रोगी, बूढ़ा, गर्भिणी या बालक राजमार्ग पर मल–मूत्र कर दे तो उसे सावधान करते हुए निषेध कर दें तथा उस स्थान को स्वच्छ करवा लें। मनु ने इन्हें आर्थिक दण्ड न देना शास्त्र मर्यादा बतलाई है।

[34] अत्रि स्मृति, पृ0 226।
[35] मनु स्मृति, (V 124)।

शास्त्र में भूमि शुद्ध रखने के लिए इन स्थानों पर मल–मूत्र इत्यादि वर्जित किया है – बीच रास्ते में भस्म पर, गो”ााला में, जोते हुए खेत में, पानी में, चिति (ईंट का भट्ठा) और बर्तनों का आंवा, पहाड़ पर, पुराने देव मन्दिर में, बाम्बी पर तथा जीवयुक्त बिलों में। चलते और खड़े होकर भी कभी मल–मूत्र का त्याग न करें। इसके अतिरिक्त वायु, अग्नि, ब्राह्मण, सूर्य–पानी और गायों को देखते हुए मल–मूत्र का त्याग करना वर्जित किया गया है।

''न मूत्रं पथि कुर्वीत, न भस्मनि न गो ब्रजें।
न फाल कृष्टे न जले न चित्यां न च पर्वते।
न ससत्त्वेषु गर्तेषु न गच्छन्नापि च स्थितः।''[36]

स्मृतियों में वृक्ष, वनस्पति–संरक्षण की धारणा बनाए रखने के लिए दण्ड एवं प्रायर्ि"चत विधान का वर्णन किया गया है। उनके सुखी दुःखी आदि के होने का वर्णन उपलब्ध है। पूर्व जन्म के कारण पेड़–पौधे अत्यधिक तमोगुण से युक्त अन्त”चेतना वाले तथा सुख–दुःख के अनुभव से युक्त होते है। इसलिए वृक्ष और लता आदि पौधों के फल फूल, पत्तों और लकड़ी आदि के द्वारा जैसा–जैसा उपभोग होता हो, उसको नष्ट करने वाले अपराधी को वैसा ही दण्ड देना चाहिए ऐसा शास्त्र में बताया गया है।

याज्ञवल्क्य स्मृति में वृक्षों और औषधियों को बिना प्रयोजन के काटने पर दण्ड निर्ि"चत किया गया है। कोपलों से युक्त डालों वाले वृक्षों की शाखा, तना या सम्पूर्ण वृक्ष काटने पर यदि वह वृक्ष मनुष्य के जीविका–निर्वाह का साधन हो तो बीस, चालीस और अस्सी पण दण्ड लगता है। इसके अतिरिक्त धार्मिक स्थान, श्म”ाान, सीमा, पवित्र स्थान और देवता के मन्दिर में उत्पन्न हुए वृक्ष और पीपल, पला”ा आदि के वृक्ष की शाखा काटने पर प्रथम दण्ड से दुगुना दण्ड देने की धारणा उपलब्ध है।[37]

[36] मनु स्मृति, (IX, 45–47)।
[37] मनु स्मृति – (VIII - 285)।

जो मनुष्य वन में विचरण करते हुए सम्पूर्ण जाति के मृगों को मारता है वह 'अहोरात्र' उपवास करे और जात वेद से मत्र को जप करता हुआ स्थिर रहे। हंस, कौवा, मोर, कारंडव, सारस, चाप, भास, इनको जो मारता है वह तीन दिन उपवास करने से शुद्ध होता है। इसके अतिरिक्त हड्डी वाले क्षुद्र जीवों को तथा बिना हड्डी वाले क्षुद्र जीवों को मारकर शूद्र–हत्या व्रत करने का वर्णन उपलब्ध होता है। इस प्रकार अनेक प्रकार के प"ाु–पक्षी का वध करने पर दण्ड प्रायि"चत, दान करने की प्रबल धारणा स्मृतियों में उपलब्ध होती है।

1-7 i|jk.kk e: i;kZoj.k

पुराणों में पर्यावरण संरक्षण की धारणा सम्पूर्ण रूप से उपलब्ध होती है। धर्म, अहिंसा, शान्ति, पंचतत्त्व, प"ाु–पक्षी एवं वृक्ष–वनस्पति संरक्षण और यज्ञ की धारणा उपलब्ध होती है। पुराणों में हिंसापूर्ण धर्म को अधर्म बताया गया है। जो कार्य हिंसामय हो उसे ऋषिगणों ने रोकने का प्रयास किया है। पुराणों में यह वर्णन उपलब्ध होता है कि ऐहिक तथा पारलौकिक कर्मों को करने के लिए इन्द्र ने अन्य देवताओं के साथ जब सर्वप्रथम यज्ञ की प्रथा प्रचलित की उस समय यजुर्वेद के अध्येता तथा हवन करने वाले ऋषिगण प"ाु बलि का उपक्रम कर रहे थे। उसी समय वहाँ बधे हुए प"ाुओं को देखकर ऋषिगण इन्द्र से यज्ञ की विधि के विषय में कहने लगे कि हिंसा पूर्ण धर्म की इच्छा से यह महान अधर्म नहीं करना चाहिए। इस यज्ञ में प"ाु वध की यह प्रथा नवीन मालूम पड़ी थी। इन प"ाुओं की हिंसा यज्ञ से धर्म का विना"ा करना माना गया।

मत्स्य पुराण में सभी प्रकार की शान्तियों का वर्ण नही आका"ाीय, पृथ्वी सम्बन्धी, महोत्पात, आ जाने पर, अति वृष्टि एवं अनावृष्टि के कुअवसर पर वैष्णवी शान्ति करने की धारणा उपलब्ध होती है। इसके अतिरिक्त पर्यावरण शुद्ध करने के लिए नित्य नियम से हवन करने की धारणा उपलब्ध होती है जिसके करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है।[38]

[38] ि"ाव पुराण – II - 38।

जो गाय का वध करते हैं वह पाँच कला तक न"क की घोर यातनाओं को झेलते है। यदि काष्ठ, पाषाण, शस्त्र से गाय की मृत्यु हो जाए तो शास्त्र में उनके भिन्न प्रायf"चत करने को कहा गया है। माँस खाने वाले पक्षी–प"kुओं की हत्या करने पर दूध देने वाली गाय का दान करने का वर्णन मिलता है। अस्थि युक्त प्राणी की हत्या करने पर ब्राह्मण को कुछ दान देना चाहिए। अस्थि रहित प्राणी की हिंसा करने पर प्राणायाम से शुद्धि होने की उपलब्धता होती है।

वृक्ष–वनस्पति संरक्षण की धारणा बनाये रखने के लिए पुराणों ने इस प्रकार वर्णन किया है कि जो व्यक्ति वन में वृक्षों को लगाता है वह व्यतीत हुए तथा आगे आने वाले समस्त पितृ वं"kों का उद्धार कर देता है। इसलिए वृक्षारोपण का पुण्य कार्य अव"य करना चाहिए।[39]

वनस्पतियों के विषय में इस प्रकार कहा गया है कि विषम जंगलों के पत्रों को तोड़ डालना भी उपपातक है। f"kव पुराण, गरूड़ पुराण के अनुसार, तृप्त, गुल्म, तना, बल्ली के त्वक का हर्ता या हनन करने वाला मानव जड़ और वृक्ष की योनि में जाता है।[40]

1-8 tSu /keZ esa i;kZoj.k

सभी भारतीय धर्मों की यह अलौकिक वि"kषता रही है कि उनमें निजोपकार के साथ–साथ परोपकार का भी उपदे"k दिया गया है। भारतीय धर्मों के केन्द्र बिन्दु में यदि आम कल्याण की अभीष्ट भावना है तो इनकी परिधि वि"व कल्याण की कामना में निहित हैं।

श्रमण एवं वैदिक संस्कृति भारतीय संस्कृति के दो मुख्य स्तम्भ है। प्रसिद्ध विद्वान वाचस्पति गैरोला ने लिखा है कि ''वैदिक युग में व्रात्यों और श्रमण ज्ञानियों की परम्परा का प्रतिनिधित्व जैन धर्म ने किया है।''[41]

[39] f"kव पुराण – II - 17।
[40] गरूड़ पुराण – उत्तर्राद्ध खण्ड – 32।
[41] भारतीय द"kन, पृ0 93 / वाचस्पति गैरोला।

जैन धर्म की मान्यतानुसार यह धर्म अनादि है एवं तीर्थकरों के द्वारा प्रवर्तित होता रहता है, जैन धर्म में तीर्थंकारों की परम्परा अनादि एवं अनंत स्वीकार की गयी है। वर्तमान युग में जैन धर्म का प्रवर्तन करने वाले चौबीस तीर्थकरों में प्रथम तीर्थकर ऋषभदेव एवं अंतिम चौबीसवें तीर्थकर महावीर थे। जैन धर्म के प्रथम तीर्थकर ऋषभदेव का नामोल्लेख श्रीमद भागवत में भगवान विष्णु के आठवें अवतार के रूप में किया है। इसमें वर्णित ऋषभदेव एवं जैन धर्म के प्रथम तीर्थकर ऋषभदेव के माता–पिता एवं पुत्रादि के नामों में भी समानता है।

भगवान ऋषभदेव से महावीर स्वामी तक के उपदे"ाों को जैनाचार्यों ने परम्परा से प्राप्त करके लिपिबद्ध किया, जिसे वर्तमान में जैनागम (जिनवाणी) के नाम से जाना जाता है। जैनागम में पर्यावरण संरक्षण एवं संवर्धन के लिए अनेक सिद्धान्तों का उपदे"ा दिया गया है। इन सिद्धान्तों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि युग के प्रारम्भ से ही जैन धर्म में मनुष्यों के साथ–साथ प्रकृति एवं पर्यावरण के प्रति भी कल्याणकारी दृष्टिकोण रखा गया है। जिन समस्याओं के प्रति हम आज जागरूक हुए हैं। उनके समाधान जैन धर्म ने हमें हजारों साल पहले प्रदान कर दिये थे। प्रकृति एवं पर्यावरण की रक्षा एवं उसके संतुलन के सम्बन्ध में जैन धर्म के जिन सिद्धान्तों का उपदे"ा दिया गया है वे वर्तमान में भी प्रासंगिक है।

हमारे पर्यावरण के मूल घटकों को दो भागों में वर्णित किया जा सकता है। जीव एवं अजीव। जिसमें जीवन एवं प्राण हैं वह जीव है जिसमें जीवन एवं प्राण नहीं है वह अजीव है। जैन धर्म में इन्हें चेतन एवं अचेतन नाम दिया गया है। जैन धर्म की मान्यतानुसार पुदल अचेतन है एवं जीव (आत्मा) चेतन है। जिसमें आत्मा विद्यमान होती है उसे चेतन या जीवधारी माना जाता है। जैन धर्म में स्प"ान, रसनाघ्राण, चक्षु एवं कर्ण इन पाँच इन्द्रियों के आधार पर जीवों का विभाजन किया गया है। इसमें जिन जीवधारियों की केवल एक इन्द्रिय वाले जीवों को त्रस कहा गया है। मनुष्य को पाँच इन्द्रियों वाला त्रस जीव माना गया हैं। स्थावर जीवों में पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं वनस्पति जीवों की गणना की गयी है। इसका आ"ाय यह है कि जैन धर्म पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं वनस्पति में भी जीवन स्वीकार

करता है एवं यही पंच तत्त्व पर्यावरण के मूल घटक भी हैं। वैज्ञानिक डा0 जगदी"ा चन्द्र बोस के अथक साध कार्यों के उपरान्त वैज्ञानिकों ने भी इन पंच स्थावरों में से एक वनस्पतियों में जीवन के अस्तित्व को स्वीकार कर लिया है। इसमें जैन धर्म की पंच स्थावरों की मान्यता को और अधिक बल मिला है। हो सकता हे कि निकट भविष्य में वैज्ञानिक शोध कार्यों के परिणाम स्वरूप पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु में भी जीवन की अवधारणा सत्य सिद्ध हो जाए।

इन स्थावरों को प्राण एवं चेतना से युक्त मानने के कारण जैन धर्म यह भी मानता है कि इन्हें भी सुख एवं दुःख की अनुभूति होती है क्योंकि सभी प्राणधारी सुख एवं दुःख की अनुभूति करते हैं परन्तु कुछ जीव उसकी अभिव्यक्ति नही कर पाते हैं।

प्राकृतिक संसाधनों पर मनुष्य की निर्भरता आदिकाल से ही रही है इसलिए मनुष्य ने इनका दोहन प्रारम्भ से ही किया है। जब तक प्राकृतिक संसाधनों का दोहन अल्प मात्रा में किया जाता रहा तब तक प्रकृति में एक संतुलन बना रहा क्योंकि दोहन से होने वाली क्षति पूर्ति स्वयमेव हो जाती थी। जनसंख्या वृद्धि होने के साथ–साथ प्राकृतिक संसाधनों का दोहन अत्यधिक मात्रा में होने से प्रकृति में एक असंतुलन पैदा होने लगा एवं प्राकृतिक पर्यावरण के संरक्षण की तीव्र आव"यकता महसूस होने लगी। जल, वायु, जैसे प्राकृतिक तत्त्व, सभी प्राणियों के लिए अनिवार्य रूप से आव"यक हैं एवं इनके अभाव में जीवन के अस्तित्व की कल्पना नहीं की जा सकती अतः जीवन की रक्षा के लिए प्रकृति में उपलब्ध संसाधनों का सीमित उपयोग करने की ि"ाक्षा जैन धर्म में दी गई है। जैन धर्म में बिना किसी प्रयोजन किये जाने वाले कार्यों को अनर्थ बतलाकर उन्हें पाप क्रिया माना गया है। ''बिना प्रयोजन भूमि खोदना, वृक्षादि को उखाड़ना, दूब आदि हरी घास को खोदना एवं रौंदना, पानी खीचना, फल–फूल पत्रादि का तोड़ना, इन क्रियाओं को जैन धर्म में प्रमादचर्या नामक अनर्थदंड कहा है।''[42] जैन धर्म के इस सिद्धान्त में पर्यावरण के तत्त्वों के असीमित एवं अनाव"यक दोहन का निषेध हजारो

[42] आचार्य अमृत चन्द्र /पु0सि0/143।

वर्ष पूर्व किया गया था। इस सिद्धान्त की वर्तमान में तीव्र आव”यकता महसूस की जा रही है।

अहिंसा जैन धर्म का आधारभूत सिद्धान्त है। जैन धर्म में अहिंसा की परिधि इतनी व्यापक है कि इसमें मनुष्य प”ाु–पक्षियों के साथ–साथ सम्पूर्ण पर्यावरण भी समाहित है। अहिंसा, धर्म की महानता, का वर्णन करते हुए जैन धर्म में कहा गया है – ''इस जगत में अणु से छोटी दूसरी वस्तु नही है और आका”ा से बड़ी कोई चीज नहीं है। यह अहिंसा सभी आश्रमों का हृदय है, सर्व शास्त्रों का गर्भ है और सभी व्रतों का सार है।''[43] जैन धर्म में एक अन्य स्थान पर लिखा है – ''पर्वतों सहित स्वर्णमयी पृथ्वी का दान करने वाला पुरूष एक जीव की रक्षा करने वाले पुरूष के समान नही हो सकता।''[44] लेकिन व्यावहारिक दृष्टि से अहिंसा के द्वारा पर्यावरण की भी रक्षा होती है। जैन धर्म में पर्यावरण के मूल तत्त्व जैसे जल, वायु, वनस्पति, भूमि, अग्नि, को स्थावर जीवों की श्रेणी में रखा गया हैं एवं पारिस्थितिकी तंत्र के दूसरे जीव जैसे प”ाु–पक्षी, कीट–पतंगे, सरीसृप एवं मनुष्यों को त्रस्त जीवों की श्रेणी में रखा गया है। जैन धर्म में स्थावर जीवों (जल वायु) आदि की अनाव”यक हिंसा के निषेध के साथ ही प”ाु–पक्षी आदि त्रस्त जीवों को मारने का पूर्ण निषेध है। ''प”ाु–पक्षियों के ि”ाकार से कई प्रजातियाँ विलुप्त हो चुकी है एवं कई प्रजातियाँ विलुप्त होने के कगार पर है। गत दो हजार वर्षों में 160 स्तनपायी जीव, 88 पक्षी प्रजातियाँ लूप्त हो चुकी हैं। वैज्ञानिकों के अनुसार आगामी पच्चीस वर्षों में एक प्रजाति प्रति मिनट की दर से विलुप्त हो जायेगी।''[45] इसलिए जैन धर्म में प”ाु–पक्षियों के ि”ाकार को महापाप कहा गया हे एवं इसे व्यसन की श्रेणी में रखकर किसी भी सभ्य मनुष्य के लिए इसका पूर्ण निषेध किया गया है। इससे प्रकृति में पारिस्थितिक संतुलन बना रहेगा।

जलगालन सिद्धान्त के अनुसार जलगालन अर्थात् पानी छानकर प्रयोग करने का सिद्धान्त जैन धर्म का महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। जलगालन युक्ति में जल प्रदूषण

[43] आचार्य ि”ावकोटि / भगवती आराधना 784–790।
[44] आचार्य अमित गति / अ0श्रा0 / 11 / 5।
[45] विज्ञान प्रगति पत्रिका / अक्टूबर 99, पृ0 47।

से मुक्ति का रहस्य छिपा हुआ है। जैन धर्म में पानी को कपड़े से छानने के बाद पीने एवं अन्य कार्यों में प्रयोग करने का निर्दे"ा दिया गया है। जैन धर्म में पानी छानने की सरल क्रिया भी अतिविि"ाष्ट मानी जाती है क्योंकि पानी छानने के बाद कपड़े के ऊपर बचने वाले सूक्ष्म जीवों को उसी जल स्रोत में प्रवाहित किया जाता है जहाँ से जल ग्रहण किया जाता है। जिससे जल के उन सूक्ष्म जीवों की प्राण रक्षा हो सके। इसके अलावा इस छने हुए जल को पीने से हमारे स्वास्थ्य की रक्षा भी होती है। वर्तमान में जलगालन की इस विधि का प्रयोग वाटर फिल्टर के रूप में किया जा रहा है। यद्यपि वाटर फिल्टर प्रोसेस से केवल स्वास्थ्य रक्षा ही संभव है। इससे जल के अनुयायी जल को वस्त्र से छानकर पीने को ही प्राथमिकता देते हैं। जलगालन विधि से जैन विद्वानों ने निर्दे"ा दिया है कि जल के एक स्रोत के सूक्ष्म जीवों को दूसरे स्रोत में नहीं छोड़ना चाहिए। अतः स्पष्ट है कि प्राचीन काल के जैन विद्वान भी अपने वि"ोष ज्ञान के द्वारा इस तथ्य को समझते थे कि भिन्न–भिन्न स्रोतो के जल की रासायनिक गुणवत्ता भिन्न–भिन्न होती है इस कारण एक जल स्रोत के जीव दूसरे जल स्रोत में जीवित नहीं रह सकते। परन्तु वर्तमान में नगरों से निकलने वाले गंदे पानी को एवं कारखानों से निकले अपि"ाष्ट जल को नदियों एवं समुद्रों में प्रवाहित किया जा रहा है। इससे नदियों एवं समुद्रों में जल प्रदूषण खतरनांक स्थिति में पहुँच चुका है एवं इनमें रहने वाली अनेक जीवों की प्रजातियों के अस्तित्व पर खतरा मंडरा रहा है।

सामाजिक संरचना में व्यक्ति की आजीविका का महत्वपूर्ण स्थान है। यद्यपि प्रारम्भिक काल में व्यक्ति की आजीविका का उद्दे"य स्वयं एवं परिवार के भरण पोषण तक ही सीमित था इसलिए जैन धर्मानुसार युग के प्रारम्भ में भगवान ऋषभ देव ने मनुष्यों को आजीविका हेतु, असि, मसि, कृषि, विद्या, वाणिज्य एवं ि"ाल्प की ि"ाक्षा अपनी प्रजा को दी थी। उन्होंने मनुष्यों को कृषि–प्रधान कर्म व्यवस्था का उपदे"ा दिया था। सामाजिक ढाँचे में मनुष्यों ने एक दूसरे की आव"यकताओं की पूर्ति हेतु असि, मसि, विद्या, वाणिज्य एवं ि"ाल्प जैसे कार्यों को भी आजीविका का साधन बनाया लेकिन धीरे–धीरे मनुष्यों की प्रवृत्ति अपनी अनिवार्य आव"यकताओं से

ऊपर उठकर धनार्जन एवं विलासी वस्तुओं की पूर्ति की ओर जाने लगी तब आजीविका का साधन व्यावसायिक एवं औद्योगिक धन्धों के रूप में विकसित होने लगे। इससे मनुष्य एवं प्रकृति के मध्य संतुलन बिगड़ने लगा। औद्योगिकीकरण की तीव्र गति ने प्रकृति के ताने बाने को छिन्न–भिन्न कर दिया और इससे पर्यावरण को यूरोपीय क्षति हुई। जैन धर्म में प्राचीन समय से ही ऐसे व्यावसायिक साधनों का निषेध किया गया है, जिनसे पर्यावरण को क्षति पहुँचती हो। पर्यावरण को क्षति पहुँचाने वाले निषिद्ध व्यापार कार्यों की श्रेणी में वन जीविका (पेड़–पौधों को काटकर लकड़ी का व्यापार करना) अग्नि जीविका (कोयला तैयार करके बेचना) स्फोट जीविका (बम, पटाके, बारूद का व्यवसाय) सरःतोष (जला"ायों को सूखाकर उनकी भूमि का प्रयोग) दवप्रदा (जंगल जलाना), विष वाणिज्य (कीटना"ाक एवं जहर का व्यापार) यंत्र पीडन (बड़ी–बड़ी म"ीनों के प्रयोग का व्यापार) आदि सम्मिलित है। यह कर्म पर्यावरण एवं प्रकृति के लिए घातक हैं, इनके दूरगामी परिणामों से पूरी मानव सभ्यता के अस्तित्व पर खतरा मंडरा सकता है। इसलिए जैन धर्म में मनुष्य के सामाजिक एवं आर्थिक विकास के लिए कृषि आधारित आजीविका को सर्वश्रेष्ठ उद्यम माना गया है। अतिभोगवादी प्रवृत्ति एवं असीमित आकांक्षाओं के कारण मनुष्य प्रकृति का तीव्र दोहन करके अपने अस्तित्व को खतरे में डाल रहा है। इसलिए अतिभोगवादी एवं असीमित इच्छाओं की प्रवृत्ति को रोकने के लिए जैन धर्म में 'परिग्रहपरिमाणव्रत' (इच्छा परिमाणव्रत) का उपदे"ा दिया गया है। इसके द्वारा मनुष्यों को निर्दे"ा दिया गया है कि उन्हें अपनी वास्तविक आव"यकता से अधिक अन्न, धन, वैभव, भूमि–भवन आदि का संचय न करने का संकल्प ग्रहण करना चाहिए। इस व्रत से जहाँ एक ओर प्रकृति एवं पर्यावरण का हित होगा वही दूसरी ओर प्रकृति के सीमित संसाधनों का लाभ समाज के प्रत्येक वर्ग को समान रूप से प्राप्त हो सकेगा।

जैन धर्म में आहार को शारीरिक शक्ति के साथ–साथ वैचारिक शक्ति का भी स्रोत माना जाता है। मांसाहार के लिए प"ाु–पक्षियों, जलचर जीवों एवं अण्डजों की हत्या करनी पड़ती है। इसलिए जैन धर्म में इसका पूर्ण निषेध है। प्रकृति ने

वनस्पतियों एवं अनाजों में सभी पौष्टिक प्रदान किये है। इसलिए यही मनुष्यों के लिए उपयुक्त आहार है। शाकाहार से मस्तिष्क में न्यूरो इन हीबीटरी ट्रान्स मीटर्स उत्पन्न होते है एवं सिरोटोनिन का स्तर ठीक बना रहता है। जिससे मस्तिष्क शान्त रहता है। मांसाहार से मस्तिष्क में न्यूरो एक्साइटेटरी ट्रान्समीटर्स उत्पन्न होते हैं एवं सिरोटोनिन का स्तर कम हो जाता है। इससे मस्तिष्क अ”ाान्त एवं हिंसक हो जाता है। मांसाहार के उत्पादन से पेय जल की समस्या भी विकराल रूप ले रही है।

जैन धर्म में सहअस्तित्व के सिद्धान्त के माध्यम से अहिंसा के सिद्धान्त की आधारि”ाला रखी गई है। जैन धर्म समस्त जीवों के अस्तित्व एवं विकास में आस्था रखता है। परस्पर ये सभी जीव एक–दूसरे के उपकारी है एवं एक–दूसरे के उपकार–प्रतिउपकार से ही उनके अस्तित्व की रक्षा होती है। यही जैन धर्म का सहअस्तित्व सिद्धान्त है। प्रकृति जैव–विविधता से परिपूर्ण हैं यदि जीवों की इस विविधता में से एक भी प्राणी का पूर्ण विना”ा होता है तो इसका प्रभाव सभी प्राणियों पर पड़ता है। प्रकृति एवं पर्यावरण के सभी घटकों में मनुष्य सर्वोपरि है।

1-9 Hkkjrh; lLdfr e i;koj.k

प्राचीन भारत में मानव का सर्वप्रमुख ध्येय प्राकृतिक व्यवस्था के साथ सामंजस्य बनाये रखना था। वे प्रकृति के साथ सहयोगात्मक भाव से रहते थे। पर्यावरण इसके लिए व्यापक शब्द है। प्रस्तुतः इसका तात्पर्य उस समूची भौतिक और जैविक व्यवस्था से है जिसमें जीवधारी रहते है, बढ़ते है और अपनी स्वाभाविक प्रवृत्तियों का विकास करते है। अतः पर्यावरण का अर्थ जीवों की अनुक्रियाओं को प्रभावित करने वाली समस्त, भौतिक, रासायनिक तथा जैविक परिस्थितियों का योग है। वास्तव में पर्यावरण एक आवास है जिसमें हम सभी रहते है। मानव और प्रकृति को एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। मानव का जीवन आश्रय ही प्राकृतिक व्यवस्था है।

मनुष्य जब संसार में आता है तो वह पूर्णतः निर्वस्त्र होता है उसे उसके अभिभावक वस्त्र पहना देते हैं लेकिन वही व्यक्ति बड़े होने पर प्रकृति के वस्त्रों को हटाने पर जुट जाता है। ऐसा कई बार अज्ञानताव"ा हो सकता है लेकिन जिन लोगों को प्राकृतिक उपादानों की उपयोगिता का अनुमान है उनसे भी यह गलती हो जाती है तो वह अन्धाधुन्ध तथा अनियोजित विकास होड़। मनुष्य की सभी आव"यकताओं की पूर्ति प्रकृति करती है हमारे ग्रन्थों में उसे विभिन्न रूपों में माँ यानि पूज्य कहा गया है। हमारे समाज में विभिन्न प्रकार से पर्यावरण संरक्षण को संस्कृति परम्पराओं में वन एवं वृक्षों का महत्वपूर्ण स्थान है। यही कारण है कि हमारी संस्कृति को अरण्य संस्कृति के नाम से जाना जाता है। वेदों व धार्मिक ग्रन्थों में वनस्पति चिन्तन की अपनी वि"ाष्टता है। यजुर्वेद के रूद्राध्याय में हरे भरे वृक्षों तथा उनके रक्षकों को वि"ाेष आदर सत्कार देने की बात कही गयी है –

'नमोंः वृक्षेभ्यों हरि के"ोम्य'
(हरे–भरे वृक्षों के लिए सत्कार का भाव हो)
वनानां पतये नमः
(वनों के रक्षक के लिए आदर सत्कार हो)
वृक्षणं पतये नमः अरण्याना पतये नमः
(वृक्ष पालकों के लिए नमस्कार तथा अरण्य पालकों के लिए नमस्कार हो)

वृक्षों के प्रति अपनत्व व आदर भाव भारतीय संस्कृति को वि"व की संस्कृतियों में वि"ाष्ट स्थान प्रदान करती है। व्यावहारिक तथ्य इस धरा की प्रत्येक जैविक क्रियाओं की मूलभूत आव"यक ऊर्जा है। इस ऊर्जा का स्रोत सूर्य है, सूर्य से पेड़–पौधे ऊर्जा ग्रहण कर धरा की विविध क्रियाओं का संचालन करते हैं। इतना ही नहीं पेड़–पौधे सूर्य से ऊर्जा वायुमण्डल से कार्बन डाई आक्साइड और जलवाष्प लेकर अपना जीवन चक्र चलाने हेतु आव"यक भोजन बनाते है। और मानवी वर्ग व अन्य जीव जगत की आधारभूत आव"यकता आक्सीजन (प्राणदायिनी वायु) को पैदाकर उसे वायुमण्डल में छोड़ते है। पेड़–पौधों का यह इस धरा में जीवन का आधार है। जैसा कि बद्ध ने कहा है –

''वन एक अद्भूत जीव रूप है, जिसकी अनुकम्पा की कोई सीमा नही है जो अपने जीवन के लिए कुछ नहीं माँगता, पर अपने उत्पाद जीवन भर बाँटता रहता है। यही सभी को सुरक्षा देता है। यहाँ तक कि अपना ना"ा करने के लिए आए कुठार धारी को भी छाया प्रदान करता हैं पर्थ के किनारे हे वृक्ष। तुम युग–युग जीवों और आनन्दपूर्वक रहो, क्योंकि तुम अपनी मंजरियों से भी किलों का पराग से भ्रमरों का तथा फलों से पथिकों का सदा उपकार करते हो।''[46]

हमारे ऋषिमुनि–तपस्वी वृक्षों के अभिन्न मित्र थे। वे वृक्षों के सानिध्य में उनकी स्नेहिल घनी छाया के नीचे बैठकर अध्ययन मनन और तपस्या करते थें। इस तरह वृक्ष हमारी भौतिक आव"यकताओं की पूर्ति के साथ–साथ आध्यात्मिक प्रेरणा के स्रोत थे। वे देवताओं के सम्पर्क सूत्र माने जाते थे। और समाज उनकी पूजा अर्चना देवताओं की तरह करता था। भारतीय ऋषियों ने प्रत्येक वृक्ष में किसी न किसी देवता का प्रतिरूप देखा, प्रायः हर पेड़ के साथ कोई न कोई कथा जूड़ी है और उसे धार्मिक महत्व मिला है। इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है –

> पीपल का वृक्ष। स्वयं भी कृष्ण जी ने कहा कि – ''मैं
> वृक्षों में पीपल हूँ।''[47]

हिन्दू धर्म की मान्यता के अनुसार मृतकों को अंतिम संस्कार के समय ले जाते समय रास्ते में पीपल के वृक्ष के नीचे थोड़े समय के लिए रखते हैं फिर आगे बढ़ते हैं। अंतिम संस्कार में किए जाने वाले सारे कर्मकाण्ड पीपल वृक्ष के नीचे संपादित किये जाते है।

> वैवध्य योग होने पर कन्याओं की प्रतीकात्मक शादी
> सर्वप्रथम पीपल से कराए जाने का धार्मिक प्राविधान है।[48]

---

[46] वन अनुसंधान पत्रिका – अंक 3।
[47] विकल्प – डॉ0 दिने"ा चमोला – सं0 2005, पृ0 28।
[48] नवग्रह वनस्पतियाँ पत्रिका – एच0एम0 त्रिपाठी, पृ0 19।

कई प्रदे"ाों में पीपल के वृक्षों को पुत्रदाता माना जाता है। इसलिए पुत्र चाहने वाली स्त्रियाँ सांयकाल पीपल वृक्ष के नीचे दीपक जलाती है। विग्रह हवन और पूजा पाठ के समय पीपल के पत्ते, लकड़ियाँ शुभ मानी जाती है।[49]

पीपल को वृक्षों का सम्राट माना जाता है। इसकी महत्ता को इस प्रकार प्रतिपादित किया गया है –

मूलं ब्रह्म त्वचा, विष्णुः आखे रूद्र महे"वरः
पत्रे–पत्रे देवानाम वृक्ष राज नमोऽस्तुति।।

पीपल और तुलसी में दिव्य औषधीय गुण विद्यमान है। पीपल सर्वाधिक आक्सीजन देता है यह वैज्ञानिक तथ्य है। तुलसी के औषधीय गुण सर्वविदित है।

हमारे पूर्वज सदैव प्रकृति को वन्दनीय मानते रहे। अपने दैनिक जीवन में उसके समस्त जड़ व चेतन रूपों को अपने से अभिन्न स्वीकारते हुए सहअस्तित्व के सिद्धान्त को अनुकरणीय माना व उसे हमारी सभ्यता एवं संस्कृति में आदर पूर्वक पिरोया व सजाया। प्रकृति व उसमें व्याप्त समस्त प्राणियों व वनस्पतियों के प्रति आदर की भावना आज भी हमारे दे"ा में प्रदर्"िात है। नाना प्रकार के प"ाु–पक्षी, वृक्ष–लताएँ, पुष्प–पत्र आदि विषय हमारी वास्तु कला, प्राचीन भवनों और ग्रामीण चित्रकला में परिलक्षित होते हैं। वृक्षों की उपासना वनों से सम्बन्धित मेले व कुछ वृक्षों की वरदायिनी शक्तियों पर आसीन आस्था हमे जीवन में भी वृक्षों का गुणगान व उनकी अनेक प्रकार से स्तुति की गयी है। श्रीमद्भागवत में वृक्षों के महत्व को द"ााया गया है –

''अहो एषाम् वरं जन्य सर्व प्राण युध जीवनम।
सुजन्वस्येव धन्या मही रूहा येभ्यो निराला यान्तिः नार्थिनः''

अर्थात् – समस्त प्राणियों को जीवन प्रदान करने वाले इन वृक्षों का जन्म कितना उत्तम है। सज्जनों जैसे कितने धन्य है जिनके पास से कोई याचक निरा"ा नही लौटता।[50]

[49] विकल्प – डॉ0 दिने"ा चमोला, पृ0 28।

पौराणिक काल से ही वृक्ष भारतीय संस्कृति के अभिन्न अंग रहे हैं। वि"व कवि रविन्द्र नाथ टैगोर से जब भारतीय संस्कृति के बारे में पूछा गया तो उनका उत्तर था – ''भारत की संस्कृति न तो गाँवों की है न शहरों की – नगरों की। भारतीय संस्कृति अरण्य संस्कृति है। हमारे इतिहास परम्परा, द"र्ान और संस्कृति का निर्णय अरण्य में ही हुआ है। महर्षि, विद्वान दा"र्ानिक, तपस्वी, अरण्य में ही रहे और उन्होंने अपने क्रियाकलापों से भारतीय मानस को प्रभावित किया।''[51]

संस्कृति का उद्भव ही अरण्य और आश्रमों में हुआ है। तथा वृक्ष सदैव ही हमारे आध्यात्म "िाक्षा, साधना एवं ज्ञान प्राप्ति के केन्द्र बिन्दु रहे हैं। इसके साक्षी हमारे वेद पुराण तथा अन्य सभी धर्मों के धर्म ग्रन्थ हैं। महाभारत और रामायण में दण्डकारण्य नन्दन वन तथा पंचवटी जैसे वनों का आकर्षक वर्णन किया गया है। भगवान बुद्ध के जीवन की सभी महत्वपूर्ण घटनाएँ वृक्षों की छाया में पटी थी। इनका जन्म अ"ाोक वृक्ष की छाया में तथा पीपल के पेड़ के नीचे ज्ञान प्राप्त किया आम के बगीचे में धर्म का उपदे"ा दिया तथा सागौन के पेड़ों के वन में परिनिर्वाण प्राप्त किया। अपने उपदे"ा में उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि प्रत्येक मनुष्य को पाँच साल में कम से कम एक वृक्ष तो जरूर लगाना चाहिए। पौराणिक दृष्टि से मदार, पलास और गूलर, शमी, दूब आदि के वृक्ष भी हमारे भारतीय संस्कृति के अंग रहे है – स्कन्द पुराण के अनुसार मदार की उत्पत्ति भगवान सूर्य से बताई गई है। इनके जड़ में भगवान शंकर का वास होता है। सूर्य ग्रहण की शान्ति करने हेतु मदार की लकड़ी का हवन में प्रयोग किया जाता है। वैवध्य योग होने पर कन्याओं का विवाह कहीं–कहीं मदार से कराने की परम्परा है। पौराणिक मान्यता के अनुसार ब्रह्म जी पार्वती के श्राप से पला"ा वृक्ष हो गए। यज्ञोपवीत संस्कार में ब्राह्मण को इस वृक्ष का दण्ड (द्रण्डा) दिया जाता है। क्योंकि इसमें ब्रह्मा जी का निवास माना जाता है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार यह वृक्ष प्रजापति की हड्डियों से उत्पन्न हुआ है। तैत्तरीय संहिता में वर्जित एक कथा के अनुसार वषटकार ने गायत्री का सिर

[50] भारतीय वनिकी अनुसंधान एवं "िाक्षा परिषद, देहरादून पत्रिका, पृ0 17।
[51] विकल्प पत्रिका – डॉ0 दिने"ा चमोला।

काट डाला जिससे उनका रक्त जमीन के अंदर चला गया तथा उसी से खैर की उत्पत्ति हुई। नवग्रह की पूजा में भी खैर की लकड़ी का वि"ोष महत्व है।

वैदिक काल से लेकर आज तक शमी वृक्ष भारत वर्ष में अपने विभिन्न गुणों के कारण पूजित रहा है। राजस्थान के वि"नोई समाज में शमी को वि"ोष तौर पर पूजते हैं। शमी के काँटे जाने पर एक बार वि"नोई समाज ने प्रबल विरोध करते हुए अपने प्राणों की आहुति दे दी थी शास्त्र में शमी को पापों का शमन करने वाला बताया गया है।

> शमी अमम में पापं लोहित कष्टका।
> धारिव्यर्जुन वागाचां शमस्य प्रियवादिनी।।

धार्मिक दृष्टि से शमी वृक्ष में लक्ष्मी का वास माना गया है। इसका प्रयोग मांगलिक कार्यो में किया जाता है। अभिज्ञान शाकुन्तलम में महाकवि कालिदास ने शमी का वर्णन किया है।

> ''दुयन्ते नाहितं तेजो दधानां भृतये भुवः।
> अवेहि तनया ब्रह्म स्त्राग्निगर्भा शमीमिव।।

राजस्थान में दुर्भिक्ष पड़ने पर शमी की फलिया खाकर लोग अपनी क्षुधा शांत करते हैं। शमी का महात्म्य भारतीय संस्कृति में जगह–जगह धार्मिक पुस्तकों में वि"ोष तौर पर बताया गया है।[52]

पौराणिक मान्यता के अनुसार दूब की उत्पत्ति बासुकी नाग की पीठ से मानी जाती है। भादों के शुक्ल पक्ष की अष्टमी को दुर्गाष्टमी के रूप में मनाएँ जाने का विधान है। इसमे दूब की पूजा की जाती है। ऋग्वेद और अथर्ववेद में भी दूब की महिमा कही गयी है। धार्मिक कर्मकाण्डों में दूब को शुभ मानते हुए प्रयोग किया जाता है। दूब की जड़ में ब्रह्म, तन में विष्णु एवं पत्ती में भगवान शंकर का निवास स्थान माना जाता है।

[52] नवग्रह वनस्पतियाँ – एच0एम0 तिवारी, पृ0 23–24।

जैन धर्म में भी जिन वृक्षों की छाया के नीचे तीर्थकारों को ज्ञान की प्राप्ति हुई है केवली वृक्ष कहा जाता है और ऐसी मान्यता है कि धार्मिक स्थलों पर केवली वृक्षों के रोपण से उस स्थल की आध्यात्मिक शक्ति में वृद्धि होती है।

इस प्रकार वन एवं वृक्षों के प्रति प्रेम का सन्दे"ा हमारे सभी प्राचीन धर्म ग्रन्थों एवं नीति"लोकों में अनेक प्रकार से मिलता है। हजरत मोहम्मद साहब ने फरमाया है –

> ''दरख्त (पेड़–पौधे) लगाओं और जब मनुष्य फल खाँएगे या
> जानवर चारा चरेंगे तो इसका उतना ही सबाब मिलेगा जैसे
> फल या चारा खिलाकर मिलता है।''[53]

यदि हमें एक स्वस्थ, स्वच्छ, सुन्दर पृथ्वी आगामी पीढ़ियों के हाथों में देनी है तो हमे सयत्न भारतीय संस्कृति जीवन दृष्टि को पुनरूज्जीवित करना होगा उसे सक्रिय रूप से क्रियान्वित करना होगा। एक बार संत बिनोवा भवि ने संस्कृति की व्याख्या करते हुए कहा था –

> ''भूख लगना प्रकृति है
> दूसरे से छीनकर खा जाना विकृति है
> बाँटकर खाना संस्कृति है।''

2- Hkkjrh; lkfgR; dyk vkj i;koj.k

2-1 jkek;.k e: i;koj.k

रामायण में पर्यावरण की अवधारणा सजीव रूप में दिखाई देती है। रामायण में धर्म, लोक–कल्याण, प्रकृति प्रेम, अहिंसा एवं प"ाु–पक्षी, संरक्षण के प्रति उत्तम धारणा उपलब्ध होती है। रामायण में प्रकृति–प्रेम लक्षित होता है। अ"ाोक वाटिका को नन्दन वन और चित्र रथ वन से भी अधिक आहलाद उत्पन्न करने वाला एवं

[53] हरित अभियान अनुभव – 2001 पत्रिका वन विभाग, उ0प्र0, पृ0 26।

रमणीय बताया गया है जो लताओं, वृक्षों और सैकड़ों प्रकार के अ”ाोक वृक्षों से शोभित एवं मृगों और पक्षियों से भरी तथा गन्ध युक्त तथा रस युक्त थी।[54]

इसके अतिरिक्त ग्रन्थ में अनेक प्राकृतिक दृ”यों का वर्णन उपलब्ध होता है। जिसमें प्रकृति प्रेम भाव स्पष्ट दिखाई देता है सुतीक्षिण महर्षि रामादि को विदा करते हुए दण्डकारण्य के विषय में बता रहे है कि मार्ग में पुष्कल फल–मूल सम्पन्न वन मिलेंगे जिनमें सीधे–साधे मृग तथा शान्त पक्षी दिखाई पड़ेंगे। तड़ाग और सरोवर भी दिखाई देगें जिनमें कमल खिले होगें, जल स्वच्छ होगा और जहाँ तहाँ कारण्डव पक्षी किलोले करते होंगे। लक्ष्मण को उन आश्रमों तथा मार्ग के अनुपम दृ”यों को देखने के लिए कहा गया है।[55] इसके अतिरिक्त चित्रकूट पर्वत की रमणीयता का वर्णन भी मिलता है। विविध पक्षियों से परिपूर्ण पर्वत, स्फटिक जैसी स्वच्छ भूमि और केवड़े के फूल जैसा दिखाई देने वाला प्रदे”ा विभिन्न जाति के मृग, व्याघ्र, चीते, भालुओं के निवास से युक्त मिलता है। रामायण में अहिंसा व प”ाु–पक्षी संरक्षण के प्रति भी उत्तम धारणा उपलब्ध होती है। इस प्रकार रामायण में अनेकों वर्णन आये हैं जिनमें प्रकृति प्रेम लक्षित होता है।

2-2 egkHkkjr e: i;kZoj.k

अहिंसा, कल्याण, प”ाु–पक्षी संरक्षण और वृक्ष–वनस्पति संरक्षण की धारणा बनाये रखने के लिए महाभारत में अनेक रूपों में धर्म के द्वारा मार्ग प्रदर्”ात किया गया है। अहिंसा के विषय में इस प्रकार कहा गया है कि वेदज्ञ पुरूष अहिंसा को ही धर्म का लक्षण मानते हैं। जो कर्म अहिंसा युक्त हो, आत्मवान पुरूष हो उसे ही करने के लिए कहा गया है। जो महात्मा अहिंसा–धर्म का आचरण करते हैं वे स्वर्ग में वास करते है। इसलिए अहिंसा को परमयज्ञ, परमबल एवं संयम परमदान, मित्र एवं सुख और सत्य कहा गया है। सब यज्ञों में जो दान किया जाता है, सब तीर्थों के स्नान तथा सब दानों के फल मिलकर भी अहिंसा के सदृ”ा नहीं है। अहिंसक मनुष्य की तपस्या अक्षय होती है। हिंसा रहित मनुष्य सब जीवों के माता–पिता के

[54] रामायण, आरण्य कांड – IX - 2–3, 6–7, 11–13।
[55] रामायण, आरण्य कांड – VIII - 13–16।

समान है। इसलिए अहिंसा से होने वाले लाभों को सौ वर्षों में भी वर्णन नही किया जा सकता।

महाभारत युग में प”ाुओं के प्रति जनरूचि की धारणा भी दिखाई देती है। उस समय राजा और राजकुमार भी अपने हाथों से प”ाुओं की सेवा करते थे। नकुल ने एक स्थान पर कहा है – ‘‘राजा विराट के घोड़ों का साईस बनूगा क्योंकि यह काम मुझे बहुत प्रिय है।’’[56] इसके अतिरिक्त प”ाु–पक्षियों का वध करने पर तथा नाना प्रकार के वृक्ष काटने पर जन–समाज के समक्ष कुकर्म प्रकट करते हुए तीन दिन और रात केवल वायु–पान करने से पुरूष की पाप से निवृत्ति होती है। अधर्म से वृक्ष, प”ाुओं की हिंसा करने वाला, वन जलाने वाला, पाप ग्रस्त पुरूष प्रायf”चत करने का अधिकारी है।[57]

महाभारत काल में वृक्षों की सुरक्षा के प्रति अनेकों धारणाएँ उपलब्ध होती है। कल्याण की इच्छा करने वाले मनुष्य को वृक्ष लगाने चाहिए। वृक्ष लगाकर उनकी पुत्रों की भाँति रक्षा करनी चाहिए। वृक्षों को लगाने वाले व्यक्ति का पुत्र माना जाता है जो वृक्ष का दान करता है वृक्ष परलोक में उसे पुत्र के समान पार कराता है।

प्रकृति संरक्षण की धारणाएँ बनाये रखने के लिए ऋषि वेद व्यास ने इस प्रकार अनेक श्लोकों की रचना की जिससे ज्ञात होता है कि उस समय मनुष्य प्रकृति से प्यार करता था। उसके संरक्षण के लिए कल्याण और अहिंसा की भावना को स्वीकार किया गया है।

2-3 Hkkjrh; dyk e: i;koj.k

भारतीय जीवन और द”ार्न में जड़ एवं चेतन दोनों में एक ही ब्रह्म यानी ई”वर की परिकल्पना की गई है। भारतीय शास्त्रों में प्रकृति को प्रारम्भ से ही मानव के सहयोगी या सहचरी के रूप में देखा गया है। इसलिए यजुर्वेद (36/17) के शान्ति मंत्र में पृथ्वी और अन्तरिक्ष के साथ ही वनस्पति, जलवायु, औषधि सभी के

[56] महाभारत, विराट पर्व, पृ0 3, 2।
[57] महाभारत, शान्ति पर्व, पृ0 35, 6।

शान्ति की प्रार्थना की गई है। हमारे पूर्वजों को यह बात पूरी तरह स्पष्ट थी कि प्रकृति की शान्ति और मनुष्य के साथ उसके सह अस्तित्व के बिना पर्यावरण संरक्षण और जीवन की सत्ता तथा मानव संस्कृति के विकास की कल्पना नहीं की जा सकती है। आज मनुष्य के प्रति कूल आचरण और जीव तथा वनस्पति जगत के प्रति उसके हिंसक व्यवहार ने स्वयं उसी के लिए अस्तित्व का खतरा उत्पन्न कर दिया है। भारतीय वा¯मय में पंचमहाभूत तत्त्वों जल, पृथ्वी, वायु, अग्नि और आका"ा को वन्दनीय माना गया है। क्योंकि इन पाँच तत्त्वों में वस्तुतः प्रकृति की उपस्थिति और उसका विस्तार दिखाई देता है जिसके बिना मनुष्य का अस्तित्व सम्भव ही नहीं है।

''"ां ना द्यावा पृथ्वी पूर्व द्वूतौ शमन्तरिक्षं दृ"ाये नो अस्तुः।
शं न औषधिर्वनिनो भवन्तु शं नो रजसस्पतिरस्तु विष्णुः।।''[58]

अर्थात् हे ई"वर! हम जब प्रातः काल अपने नेत्र खोंले तो यह पृथ्वी और द्यूलोक हमे मंगलकारी मिलें और हम अंतरिक्ष की ओर अपने नेत्र से देखे तो वह भी हम पर सुख की वर्षा करे। पृथ्वी की सम्पूर्ण वनस्पतियाँ हमारे लिए कल्याणकारी हों। हे जगत्पति! आप हम पर अपनी ऐसी कृपा बनाये कि हम शुभ कार्य करे और हमारे चतुर्दिक सुख की वर्षा होती रहे।

भारतीय कला अपनी समग्रता में चाहे चित्र हो, मंदिर या स्तूप हो या मूर्तियाँ हो भारतीय द"ीन और सामाजिक चिंतन को ही मूर्त रूप में व्यक्त करती हैं। उनमे समकालीन तथा भविष्य दोनों के लिए व्यावहारिक संकेतों की प्रस्तुति हुई है और कला के माध्यम से जीवन का मर्म समझाया गया है। भारतीय कला वास्तव में अपने समय का ऐसा मूर्त या प्रत्यक्ष दस्तावेज है जिसमें व्यक्ति और समाज की गतिविधियों को समष्टि भाव के साथ पर्यावरण के बीच और उससे अभिन्न व्यक्त किया गया है। पर्यावरण यानी जीव और वनस्पति जगत के साथ मानव जीवन का सहअस्तित्व। मानव जीवन के विकास का मूलाधार भी यही है। वेद, पुराण,

[58] ऋग्वेद 7/35/5।

कालिदास एवं अन्य सभी विद्वानों की रचनाओं में जीवन को पर्यावरण के साथ विकसित होते दिखलाया गया है। भारतीय कला में भी मनुष्य के साथ पर्यावरण की अभिन्नता उसकी विभिन्न धार्मिक और धर्मेत्तर गति विधियों में अभिव्यक्त हुई है।

मौर्यकाल में अ"ोक के स्तम्भों पर सिंह, वृषभ, गज और अ"व जैसे प"ाुओं और पद्म का अंकन प्रतीकात्मक रूप से बौद्ध धर्म या बुद्ध के जीवन की घटनाओं की अभिव्यक्ति से सम्बन्धित है। मथुरा, भरहुत, साँची के शुंग कालीन उदाहरणों में प"ाु और वनस्पति जगत का विस्तृत अंकन हुआ है जिसमें अधिकां"ातः मनुष्य और वनस्पति तथा प"ाु जगत को एक–दूसरे के पूरक के रूप में दिखाया गया है। मनुष्य की सभी धार्मिक और धर्मेत्तर गतिविधियाँ उन्हीं के बीच हुई। कुषाण कला में मथुरा एवं गांधार क्षेत्रों की मूर्तियों में भी वनस्पति और प"ाु जगत का अंकन साथ–साथ हुआ है। चौथी शती में गुप्तकाल तक आते–आते, मथुरा, सारनाथ, राजगीर, अकोटा, उदयगिरि, देवगढ़ के मूर्त उदाहरणों में मनुष्य और उसकी गतिविधियों की केन्द्रीय पृष्ठभूमि में वनस्पति और प"ाु जगत का प्रभाव"ाली और सार्थक अंकन हुआ है। देवमूर्तियों के सिंहासन, प्रभामण्डल, या अन्य अलंकरण के रूप में या मंदिरों के प्रवे"ा द्वारों पर उकेरी जल देवियों (गंगा–यमुना) के रूप में इनका अनेकत्र अंकन मानव जीवन के साथ प्रकृति के सम्पृक्त भाव को व्यक्त करता है। सारनाथ की बुद्ध मूर्तियों में प्रभामण्डल में पुष्प और लताओं का मन भावन अलंकरण बुद्ध के आध्यात्मिक सौन्दर्य की वृद्धि में सहायक होने के साथ ही प्रकृति की अनंत ऊर्जा और मनुष्य एवं देव आकृतियों में उसके प्रवाह का भी सूचक है। इसी प्रकार बुद्ध मूर्ति की पीठिका पर धर्म चक्र के दोनों ओर दो मृगों का अंकन उस शान्ति का प्रतीक है जिसकी वि"व स्तर पर स्थापना बुद्ध के धर्मोपदे"ाों का मूल उद्दे"य था। कालिदास की विभिन्न रचनाओं में मानव सौन्दर्य की श्रेष्ठतम अभिव्यक्ति के लिए भी उपादान प्राकृतिक जगत से लिए गये है, जैसे बुद्ध, तीर्थकर एवं महापुरूषों के शान्त नेत्र पद्म के समान, नायिका के चंचल नेत्र खंजन पक्षी के समान दिखाने का उल्लेख मिलता है।

भारतीय कला में गुप्तकाल से गजमुख गणे"ा, वानरमुख हनुमान, वराह और सिंह मुख विष्णु के वराह और नरसिंह अवतार स्वरूपों की अवधारणा और अभिव्यक्ति प"ु जगत के साथ देवजगत को सम्पृक्त कर प"ु जगत के महत्व को उजागर किया गया है। इसी प्रकार ि"ाव, विष्णु, कृष्ण, किसी न किसी वृक्ष पर्वत से सम्बन्धित है। सभी धर्मों के देवी–देवताओं के साथ नाग एवं वृक्ष का सम्बन्धित होना भी भारतीय कला में पर्यावरण संरक्षण की चेतना से ही प्रेरित रहा है। ि"ाव–विष्णु ("ोष"ायी) बलराम एवं (सर्पफणों का छत्र) एवं बुद्ध तथा पा"र्वनाथ एवं सुपा"र्वनाथ तीर्थकरों के साथ मूर्तियों में नाग का दिखाया जाना पर्यावरण के प्रति सभी धर्मों के सम्मान चिन्तन को प्रकट करता है।

7वीं से 14वीं शती ई0 के मध्य की भारतीय कला में वि"ााल मंदिरों और उनकी भित्तियों तथ अन्य भागों पर अनेक देवी देवताओं और मानव मूर्तियों के अंकन का सर्वत्र वनस्पति और प"ु पक्षी जगत की प्रस्तुति सह अस्तित्व भाव से हुई है। सभी ब्राह्मण देवी देवताओं के साथ वाहन कोई न कोई प"ु और पक्षी ही दिखाया गया है। जो उनकी मूर्तियों का अभिन्न लक्षण और साथ ही उनकी क्रिया"ाीलता के अनुरूप है। सृष्टि के पालनकर्त्ता विष्णु के साथ तीव्रगति वाला गरूड़ ि"ाव के साथ धर्म ध्यान धैर्य का प्रतीक वृषभ और सृष्टिकर्त्ता एवं वेदों के ज्ञाता ब्रह्म के साथ ज्ञान का प्रतीक हंस इसी कारण दिखाया गया है।

असुरों के संहारकर्त्ता महिसमर्दिनी दुर्गा के साथ भी शक्ति का प्रतीक सिंह वाहन इसी कारण प्रसिद्ध है। जैन तीर्थकर ब्राह्मण देवी–देवताओं के समान वाहनों पर आरूढ नहीं होते वरन् प"ु–पक्षियों का उनकी मूर्तियों की पीठिकाओं पर चिन्ह के रूप में अंकन हुआ है। जैसे ऋषभनाथ की पीठिकाओं पर वृषभ, अजितनाथ, सम्भवनाथ, अभिनन्दन के साथ क्रम"ाः गज, अ"व और कपि तथा पा"र्वनाथ के साथ सर्प, महावीर के साथ सिंह चिन्ह के रूप में दिखाया गया है।

खजुराहों, मोढेरा, भुवने"वर, कुम्भारिया, कोणार्क, हलेबिड, बेलूर के मंदिरों के अधिष्ठान एवं वितानों पर अनेक"ा, वनस्पति, प"ु–पक्षी, तथा मानव जगत का

सम्पृक्त रूप में अंकन तत्कालीन पर्यावरणीय चेतना अध्ययन की दृष्टि से उल्लेखनीय है। इस सन्दर्भ में सबसे महत्वपूर्ण हलेविड का 12वीं शती ई0 का होयस ले"वर मंदिर है जिसके अधिष्ठान पर वनस्पति और प"ाु (हंस, सिंह, गज) जगत का देव मानव जगत के साथ समवेत रूप में रूपायन हुआ है।

'गोम्मटे"वर बाहुबली' की प्रतिमा भारतीय कला का एक विलक्षण उदाहरण है। प्रथम जैन तीर्थकर ऋषभनाथ के पुत्र बाहुबली ने विजय के क्षणों में सर्वस्व त्याग का निर्णय लिया और बीतरागी के रूप में गहन साधना में डूब गये। परिणामतः बाहुबलि ने जैन धर्म में त्याग साधना की मूर्ति बनकर श्रेष्ठतम प्रतिष्ठा प्राप्त की और जैन कला में उनकी अनेक मूर्तियाँ भी बनी। इन्होंने कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े होकर ऐसी गहन साधना की कि तलावल्लरियों ने उनके सम्पूर्ण शरीर को ही आच्छादित कर दिया। शास्त्र में बाहुबली के साथ लता+वल्लरियों को 'सर्वा संगिनी' कहा गया है। साधना की स्थिति में उनके शरीर पर सर्प, वृ"िचक, छिपकली, जैसे भयानक जन्तु भी स्वतंत्र भाव से विचरण कर रहे थे जिन्हें कला में भी बाहुबली के साथ दिखाया गया है। एलोरा, देवगढ़, बादामी, अयहोल, खजुराहों बिल्हारी की मूर्तियों में ऐसा ही अंकन हुआ है। इस कलाकृति से बेहतर मानव एवं जीव तथा वनस्पति जगत के सहअस्तित्व का उदाहरण और क्या हो सकता है। बाहुबली मूर्ति में मानव और प्रकृति के सहअस्तित्व के स्पष्ट संकेत के कारण ही जैन कला और आस्था में वि"ाालतम् और सुन्दरतम् उदाहरण कर्नाटक में श्रवण बेल गोल, वेणूर, कारकल और धर्म स्थल में है। आज के पर्यावरण चिंतन और तत्सम्बन्धी वै"िवक, चिंता में इस भारतीय मूर्ति को पर्यावरण मानव सहअस्तित्व के प्रतीक मूर्ति के रूप में प्रचारित–प्रसारित किया जा सकता है।

भारतीय परम्परा के ये उदाहरण हमारे पूर्वजों के पर्यावरण चेतना की गम्भीरता को व्यक्त करते है। पर्यावरण के वर्तमान भीषण असंतुलन से वै"िवक ताप में वृद्धि, अतिवृद्धि, अनावृष्टि, ग्ले"ियर का तेजी से पीघलना, ध्रुवों पर तापमान में खतरनाक परिवर्तन, के कारण बर्फ के पिघलने से समुद्र के स्तर में होने वाली

महाविना"ाक वृद्धि की आ"ांका, ओजोन परत में छिद्र, जल और वायु में भीषण प्रदूषण जैसी अनेक समस्याएँ पूरी मानवता के अस्तित्व के लिए खतरनाक है।

2-4 vfHkys[kksa esa i;kZoj.k

कलिंग युग का भीषण नर संहार, तत्कालीन सांस्कृतिक परिवर्तन ने सम्राट अ"ाोक की सोच को ही बदल डाला। मौर्य सम्राट अ"ाोक के अभिलेखों में जिन विषय वस्तुओं एवं बिन्दुओं पर ध्यान दिया गया है उनमें सामाजिक दायित्व का निर्वहन एक महत्वपूर्ण विषय के रूप में सामने आता है। इस अभिलेखों में हखामनी शासकों अथवा उत्तरवर्ती भारतीय शासकों राजकीय अभिलेखों के सदृ"ा राजा के वं"ाानुचरित एवं उपलब्धियों का विवरण नही प्रस्तुत किया गया बल्कि सामाजिक आचरण में मानवतावाद के सचेत प्रयोग पर जोर दिया गया है।

अ"ाोक के सभी अभिलेख 'देवानां प्रिय प्रियद"ाी' वाक्य से आरम्भ होते हैं। अर्थात् अ"ाोक के सभी लेखों में राजा का संदे"ा ही दोहराया गया है। अ"ाोक अपने तृतीय ि"ालालेख में कहता है कि देवानां प्रियद"ाी राजा इस प्रकार कहता है – बारह वर्षों से अभिषिक्त हुए मुझ द्वारा यह आज्ञा दी गयी। इसी प्रकार पंचम ि"ालालेख कालसी संस्करण में कहता है कि 'देवनां प्रियद"ाी राजा ने कहा, कल्याण (करना) दुष्कर है। बराबर गुहालेख प्रथम के अनुसार द्वाद"ा (बारह) वर्ष से अभिषिक्त राजा प्रियद"ाी द्वारा यह न्यग्रोध (नामक) गुफा अजीवर्को को दी गई। द्वितीय बराबर गुहालेख के अनुसार द्वाद"ा वर्ष से अभिषिक्त राजा प्रियद"ाी द्वारा खलतिक पर्वत पर यह गुफा आजीवकों को दी गयी। इस प्रकार तृतीय बराबर गुहालेख से भी आजीवकों के निवास के लिए गुफा दान का उल्लेख है। मौर्य सम्राट अ"ाोक अपने शासन काल के बारहवें वर्ष में आजीवकों के समाज में गुफाएँ दान की आजीवकों के कल्याण हेतु गुहादान का विवरण सर्वप्रथम बराबर पहाड़ी से प्राप्त इन्ही गुहालेखों से होते हुए यह एक धार्मिक कृत्य है।

अ"ाोक के रूम्मिनदेई अभिलेख में उल्लेख किया गया है कि बीस वर्षों से अभिषिक्त देवानां प्रियद"ाी राजा स्वयं आकर (इस स्थल) को गौरवान्वित किया

क्योंकि यहाँ शाक्य मुनि उत्पन्न हुए थे पत्थर की दृढ दीवार बनाई गई, और पाषाण स्तम्भ स्थापित किया। लुम्बिनी ग्राम बलि (नामक कर) से मुक्त किया और अष्टभागी बना दिया गया। यह लेख राजा द्वारा लुम्बिनी ग्राम की प्रजा पर किये गए अनुग्रह को द"र्ााता है। इसमें पाषाण स्तम्भ (सिलाथं में) स्थापित करने का विवरण मिलता है।[59]

अ"ाोक के प्रथम पृथक कलिंग लेख में 'देवताओं के प्रिय की आज्ञा से तोसली के नगर व्यवहारक (नगर प्र"ाासक) महामात्र से इस प्रकार कहना चाहिए – जो कुछ मैं सोचता हूँ वहीं चाहता हूँ वह क्या है? उसे कार्यान्वित करता हूँ और उसकी सूचना समुचित उपायों से देता हूँ और कार्य को सिद्ध करने का मुख्य उपाय है आप लोगों को f"ाक्षा देना। आप लोग अनेक सहस प्राणियों के ऊपर इसलिए नियुक्त किये गये है कि लोगों का प्रेम मुझे प्राप्त हो सके।' अपने सातवें अभिलेख में अ"ाोक ने यह स्वीकार किया है कि – उसके पूर्वमार्गी राजाओं द्वारा भी धर्म वृद्धि के लिए प्रयास किये गये थे लेकिन उनमें से पूरी तरह सफल नहीं हुए थे वह कहता है – ''इस सम्बन्ध में देवानाम प्रियद"र्ाी राजा ने ऐसा कहाँ ऐसा मुझे लगा। समय व्यतीत हुआ राजाओं ने ऐसी इच्छा की कि किस प्रकार लोग अनुरूप धर्म वृद्धि से उत्पन्न किये जाय। परन्तु लोग अनुरूप धर्म वृद्धि से उन्नत हुए। तब किस प्रकार लोग (धर्म का) अनुसरण करें। किस प्रकार लोग अनुरूप धर्म वृद्धि से उन्नत करें। किस प्रकार धर्म वृद्धि से अभ्युदय करावें? इस सम्बन्ध में देवानांप्रिय राजा ने ऐसा कहा। 'मुझे ऐसा लगा कि धर्म श्रावणों के सुनाने की व्यवस्था करू? धर्मोपदे"ा का आदे"ा करूँ। इसको सुनकर लोग (धर्म का) अनुसरण करेंगे, अभ्युदय प्राप्त करेंगे। धर्म वृद्धि में अधिक उन्नति करेंगे। इस प्रयोजन के लिए मेरे द्वारा धर्म श्रवण सुनाये गए। विविध प्रकार के धर्मानु"ाासन अज्ञाप्त हुए जिससे मेरे राजपुरूष जो बहुत जनों से नियुक्त है उनका उपदे"ा करेंगे और (विस्तार के साथ) धर्म की व्याख्या करेंगे।''[60]

[59] रोमिला थापर – 'अ"ाोक और मौर्य साम्राज्य का पतन' ग्रन्थ f"ाल्पी, नई दिल्ली–1999, पृ0 215।
[60] राजबली पाण्डेय – 'अ"ाोक के अभिलेख' ज्ञान मंडल लि0 वाराणसी, स0–2022, पृ0 98–100।

अ"ाोक अपने पंचम ि"ालालेख में प्र"ाासनिक परिवर्तन की घोषणा की बात की है। अपने प्र"ाासनिक अधिकारियों को संबोधित कर आज्ञा की घोषणा करवाता है। बहुत समय व्यतीत हुए, पहले धर्म महापात्र नही थे वे मेरे द्वारा जब धर्म अभिषेक के 13 वर्ष हो गये नियुक्त किये गए। धम्म की स्थापना एवं वृद्धि तथा धर्म युक्त जनों के सुख और कल्याण के लिए वे सभी सम्प्रदायों में कार्य करने के लिए लगा दिये गये है।[61]

इस प्रकार अ"ाोक ने मनुष्यों को धर्म के मार्ग पर चलाकर देवताओं का सामीप्य करा दिया, दूसरे शब्दों में यह स्पष्ट किया गया कि पहले जम्मू द्वीप में देवता और मनुष्य अमिश्र थे अब मिश्रित हो गए। अ"ाोक देवताओं और मनुष्यों को इसी पृथ्वी पर मिश्रित होने की बात करता है परलोक में नहीं।

अ"ाोक के प्रथम ि"ालालेख (गिनगार संस्करण) में प्रतिषेध (ऐसा मत करो) का उल्लेख है जिसमें लिखा है कि 'यह धर्मलिपि देवानांप्रिय प्रियद"ाी राजा द्वारा लिखवाई गयी है (अर्थात् उत्कीर्ण कराई गयी) यहाँ (अर्थात् मेरे साम्राज्य) में कोई जीव (अर्थात् मानेवतर जीवधारी) मारकर हवन न किया जाय और कोई समाज किया जाय।' इस ि"ालालेख का केन्द्रीकृत जीव हिंसा निषेध समाज का निषेध, (न च, समाजो कत्तव्यो) इत्यादि है। इस अभिलेख में देवानांप्रिय अपना मंतव्य उजागर करता हुआ दिखाई देता है तथा इसमें आदे"ा की अनुगूँज सुनाई देती है।

पंचम ि"ालालेख (देहली टोपरा) का विषय भी प्रतिषेध ही है जिसमें देवों का प्रियद"ाी राजा इस प्रकार कहता है छब्बीस वर्षो से अभिषिक्त मुझ द्वारा ये ज्ञात उत्पन्न (जीव) अवध्य कर दिये गये हैं, यथा शुक (तोता), सारिका (मैना) अरूण, चक्रवाक, हंस, सब चतुष्पद जो परिभोग (उपयोग) को नही प्राप्त होते और न खाये जाते हैं। गर्भिणी या पयस्विनी (दूध पिलाती) बकरी, भेड़ी, शुकरी तथा उनके छः महीने से कम के बच्चे अवध्य हैं। वधि कुक्कुट (मुर्गे) को न काटना चाहिए। जीव

[61] श्रीराम गोयल – पूर्वोक्त, पृ0 44–45।

सहित भूसे न जलाना चाहिए, अनर्थ के लिए या विहिंसा के लिए वन को न जलाना चाहिए। जीव के द्वारा जीव का शोषण नही होना चाहिए।[62]

गिरनार के प्रथम संस्करण ि"ालालेख द्वारा यह सुविप्ति होता है कि सम्राट अ"ाोक ने अपने राज्य में ही नही अपितु समीवर्ती राज्यों यथा चोल, पाँडय, सतिय पुत्र, केरल पुत्र, ताम्रपर्णी तथा यवन राज्य में भी प"ाु एवं मनुष्यों की चिकित्सा व्यवस्था कराई थी तथा उनके उपभोग के लिए राजमार्गों पर कूप एवं वृक्ष भी लगवाया था। यह अभिलेख सम्राट अ"ाोक को जनहित के प्रति लगाव, प"ाु प्रेम तथा पर्यावरण के प्रति सजग सम्राट के रूप में स्थापित करता है। इस प्रकार सम्राट अ"ाोक अपने परोपकारी कार्यों द्वारा तत्कालिन समय में समाज में फैली तीव्र प"ाु हिंसा पर प्रतिबंध, जीवों के संरक्षण तथा वृक्षारोपण आदि कार्य किये जाने का आदे"ा देता है। जिससे कि तत्कालीन पारिस्थितिकीय तंत्र में जैव विविधता बनी रहे।

त्रयोद"ा ि"ालालेख ("ाहबाज गढ़ी) संस्करण में अ"ाोक धर्म विजय को श्रेष्ठ मानते हुए यह कहता है कि यह इह लौकिक एवं पारलौकिक फल देने वाला है, धर्म में अनुरक्त होने से जो आनन्द प्राप्त होता है वह परमानंद है। अपने दूसरे स्तम्भ लेख में अ"ाोक स्वयं प्र"ान करता है 'कियं चु धम्मे'? (धर्म क्या है?) इसका उत्तर वह दूसरे और सातवें स्तम्भ लेखों में स्वतः देता है। वह हमें उन गुणों को गिनाता है जो धम्म का निर्माण करते है। इन्हें इस प्रकार रख सकते हैं – आपासिनवे बहुकथा ने दयादा ने सचे सोचवे मादवे साधवे चं, अर्थात् धम्म पाप है, अत्यधिक कल्याण है, दया है, दान है, सत्यवादिता है, पवित्रता है मृदुता है। इस प्रकार अ"ाोक हमें धर्म के विधायक और निषेधात्मक दोनों पक्षों को बताया है। और यह भी बताने का प्रयास किया है धम्म वृद्धि के परिपालन से मनुष्य किस प्रकार स्वर्ग की प्राप्ति करता है और उसे इहलोक और परलोक दोनों में पुण्य की प्राप्ति होती है। और धर्म का पूर्ण परिपालन तभी संभव हो सकता है जब मनुष्य उसके पुण्यों के साथ–साथ इन विकारों (दुर्गुणों) से भी अपने को मुक्त रखे। उसके लिए

[62] परमे"वरी लाल गुप्त – पूर्वोक्त, पृ0 65–66।

भी यह आव"यक है कि मनुष्य सद्य आत्मनिरीक्षण करता रहे ताकि उसे अधः पतन मार्ग में अग्रसर करने वाली बुराईयों का ज्ञान हो सके।

2-5 Hkkjrh; lkfgR; e: i;kZoj.k

पृथ्वी पर मानव जाति का अस्तित्व लगभग ढेड़ करोड़ वर्ष से है। तब भी हरे–भरे जंगल, बलखाती नदियाँ, कलरव करते पछी, नदियाँ, सागर, ऊचे–ऊचे पहाड़ रहे होंगे। इन्हीं के बीच मानव ने अपनी आँखे खोली होगी। धीरे–धीरे मनुष्य अपनी आदिम अवस्था से निकलकर विकास की ओर बढ़ने लगा। और औद्योगिक क्रांति का सूत्रपात हुआ। प्रगति और औद्योगिकरण पर्यायवाची बन गये और यह उत्कृति सम्पूर्ण वि"व में हुई। परन्तु इस विकास यात्रा में मनुष्य यह भूलता गया कि वह लगातार पर्यावरण का विना"ा कर रहा है। आज स्थिति यह है कि प्रत्येक प्रगति"ील राष्ट्र इस बात से चिंतित है कि पर्यावरण प्रदूषण को कैसे रोका जाय और ई"वर की ओर से जो सुन्दर उपहार हमें मिला है इसकी रक्षा कैसे की जाय पृथ्वी पर जितने भी जीव जन्तु है, वे पर्यावरण पर ही आश्रित है। इसलिए पर्यावरण के अभाव में जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती। पर्यावरण हमारे चारों ओर उपस्थित प्राकृतिक और अप्राकृतिक परिस्थितियों का योग है जो मनुष्य को प्रभावित करता है। यह आवरण के रूप में हमारे चारों ओर उपस्थित रहता है। पर्यावरण में ही समस्त जीव–जन्तुओं का जीवन संभव है। पर्यावरण अनेक कारकों से मिलकर बना है। जिसका मनुष्यों और जीव–जन्तुओं पर भी प्रभाव पड़ता है। जो पर्यावरण का क्षेत्र प्रभावित करता है वह कारक कहलाता है। पर्यावरण का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। मानव अपने जीवन यापन के लिए सदैव से अपने पर्यावरण पर निर्भर रहता चला आया है। विकास के नाम पर उसकी छेड़छाड़ भी बढ़ती गई। उपभोग्य संस्कृति उसे पर्यावरण दोहन के लिए इसे उकसाती रही अन्धाधुन्ध दोहन के भयानक परिणाम झेल रहे हैं। हम भी इस पर्यावरण की एक इकाई है। आज पर्यावरण प्रदूषण इतना अधिक बढ़ गया है कि हम अपना मांसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य खोते चले जा रहे हैं। जल–प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, वायु प्रदूषण, तथा रेडियोधर्मी प्रदूषण आज इतने भयानक रूप में हैं कि सम्पूर्ण वि"व चिताग्रस्त है।

प्रदूषण जल, हवा, मुद्रा आदि के भौतिक रासायनिक या जैविक गुणों का अवांछनीय परिवर्तन है जो सामान्यतः महसूस किया जाता है और जो जैव जीवन पर नुकसान देह प्रभाव डालकर स्वस्थ जीवों का जीवन कठिन बना देता है।

साहित्य ने इस दि"ाा में अपनी चिन्ता बार–बार की है। आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक साहित्य ने प्रकृति के साथ अपना अन्र्तसम्बन्ध बनाया हुआ है। आज मानव द्वारा जो प्रकृति पर अत्याचार हो रहे हैं इसपर साहित्यकारों ने अपनी चिंता बराबर अभिव्यक्त की है। हमारा यह शरीर प्रकृति के पाँच तत्त्वों से बना है और उसी में मिल जाता है इसलिए इन तत्त्वों का आदर करना हमारा साहित्य सिखाता है। वेदों में भी हमें वनों के महत्व की बताया गया है। हमारे धर्म ग्रन्थों में प्रकृति के घटकों जल, वायु, वृक्ष, भूमि और वनस्पति को देवता मानकर पूजा अर्चना करने का उपदे"ा किया गया है। गंगा को माँ का दर्जा दिया गया है जिसे धरती पर उतारने का 'भगीरथ' प्रयत्न की आव"यता पड़ी। सरोवरों का हमारे यहाँ धार्मिक महत्व है। हमारे पूर्वजों ने पर्यावरण को धर्म से इसलिए जोड़ दिया था क्योंकि वे जानते थे कि भारत की सामान्य जनता विज्ञान को माने न माने धर्म को अव"य मानती है। यहाँ तक कि उन्होंने वन्य जीवों को ई"वर से जोड़कर उनकी रक्षा करने का संदे"ा दिया है। क्योंकि प्रत्येक जीवन पर्यावरण के लिए अत्यन्त उपयुक्त है। चूहा गणे"ा जी का, मोर सरस्वती का, मगरमच्छ गंगा का, नंदी महादेव का यहाँ तक की उल्लू को भी लक्ष्मी का वाहन बताया गया है। गाय और कृष्ण का, सर्प और महादेव का, शेर और दुर्गा का जो सम्बन्ध हमारे धर्म ग्रन्थों में है वह इसलिए है कि कहीं मानव इनका ना"ा न करें क्योंकि इनकी सुरक्षा में ही पर्यावरण की सुरक्षा थी। पीपल, नीम, आँवला, बेर, कदम्ब, तुलसी आदि वृक्षों की भी हम पूजा करते हैं। जो सृष्टि के लिए अत्यन्त आव"यक है। आम्रपत्रों तथा पान के बिना हमारे यहा मंगल कार्य नही होता है। भगवान के अवतारों का और वनों का बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। दंडकवन, वृदावन, नैमिषवन आदि वृक्षों का उल्लेख हमे मिलता है। राम हो या कृष्ण दोनों अपने जीवन का अधिकतम् समय वनों में ही बिताया है। भगवान बुद्ध को भी परमज्ञान की प्राप्ति बोधगया में पीपल के वृक्ष के

नीचे हुई थी। जीवन के अंतिम पड़ाव में तो वन गमन की व्यवस्था की गई है। हमारे शास्त्रों में वृक्षों की सेवा को मोक्षदायिनी माना गया है। ब्रह्मचर्य आश्रम, वानप्रस्थ आश्रम, सन्यास आश्रम, वनों में ही व्यतीत होते थे। आधुनिक साहित्य में भी कई ऐसे साहित्यकार हैं जो अपनी कलम से मानव को जगाने का कार्य कर रहे है। तथा पर्यावरण के प्रति अपना चिन्ता भाव व्यक्त कर रहे है। श्रीधर पाठक ने एक जगह संकेत किया है –

> ''उस कारीगर ने कैसा यह सुन्दर चित्र बनाया है,
> कहीं पे जलमय, कही रेतमय, कही धूम कहीं छाया है।
> लगा हुआ है वस्तुमान का एक दूसरे से सम्बन्ध,
> दूषित क्योंकर हो सकता है उस कर्त्ता का अटल प्रबन्ध।[63]

पर्यावरण ई"वर प्रबन्ध है जिसके प्रति हमें आस्थावान होना चाहिए। वन्य जीव की सुरक्षा तथा वनों पर ही जिनका जीवन निर्भर है इन वनवासियों की चिन्ता भी हमें करनी चाहिए। वनों का अंधाधुंध छेदन कर हम अपने आदिवासी भाइयों का जीवन भी बरबाद करने में लगे हैं। औद्योगिकीकरण के नाम पर उनके वन, वन से मिलने वाली उपजीविका यहाँ तक की उनकी संस्कृति भी हम छिनने जा रहे हैं परिणामस्वरूप नक्सलवाद बढ़ता जा रहा है। विकास तभी माना जायेगा जब सारे समाज का उसमें सहभाग हो। विकास और विज्ञान के नाम पर जो असंतुलन हो रहा है वह चिंता का विषय है। 'कामायानी' में प्रसाद ने तो प्रकृति पर हो रहे अत्याचार का परिणाम ही प्रलय दिखते है। जब रक्षक ही भक्षक का कार्य करे तब प्रकृति को रौद्ध रूप धारण करना पड़ता है। कामायानी के चिंता सर्ग में प्रलय का कारण पृथ्वी प्रकृति का शोषण ही दिखाया गया है।

> ''अपने में सब कुछ भर कैसे व्यक्ति विकास करेगा?
> यह एकांत स्वार्थ भीषण हैं, अपना ना"ा करेगा।''[64]

---

[63] जगत सचाई सार – श्रीधर पाठक।
[64] कामायानी – कर्म सर्ग – प्रसाद।

इससे बड़ी चुनौती या चेतावनी क्या हो सकती है। प्रकृति हमारे उत्कर्ष साधन है जिसकी रक्षा करना हमारा आद्य कर्त्तव्य है। महानगरीय, संत्रास, म”ीनी युग, दुर्द”ाा, से हम हमारे प्राकृतिक संपदा की बिगाड़ रहे है। हम अपनी सृष्टि के प्रति, सौन्दर्य के प्रति, संवेदना”ून्य हो रहे है इसलिए अज्ञेय जैसे प्रयोगवादी कवि भी चिंतित है –

''नंदा, जल्दी ही बीस तीस पचास बरसों में
हम तुम्हारे नीचे एक मरु बिछा चुके होंगे
और तुम्हारे उस नदी द्योत सीढ़ी वाले मंदिर में
जला करेगा मरु दीप।''[65]

जिसे हम उत्तर आधुनिककता कह रहे है वह हमें प्रकृति से दूर करती जा रही है। इसलिए जीवन असह्य हो गया है। नदी ड्राइंग रूप में फ्रेम बनकर टंगी है। ऋग्वेद में एक जगह लिखा गया है –

''न देवा नामति व्रतं शतात्मा च न जीवति।''[66]

देवताओं के नियम तोड़कर कोई सौ वर्ष भी नही जी सकता प्रकृति भी देवताओं की भाँति हैं भला इस प्रकृति को तोड़कर हम कैसे जी सकते है।

पर्यावरण प्रदूषण की जो भयावहता है उसकी चिन्ता साहित्य में बराबर अभिव्यक्त हुई है। साथ ही अनेक कलाकारों ने इस भयावहता को स्वयं प्रगति के नाम पर शोषक मानव की ही कटघरे में खड़ा किया है।

3- i;koj.k ifjj{k.k e ukjh dh Hkfedk

वनस्पतियों का नारी जीवन पर प्रभाव सम्बन्धी प्रमाण सैन्धव सभ्यता से ही दिखाई पड़ने लगती है। कुछ मुहरों पर नारी के गर्भ से निकलता हुआ वृक्षा चित्रित है। वृक्षों में पीपल पवित्र वृक्ष था एक अन्य मुद्रा की छाप है जिसमें दो नग्न नारियाँ अंकित है जो एक–एक हाथ में ध्वज पकड़े खड़ी है। ध्वजों से पीपल की पत्तियाँ

[65] क्योंकि मै उसे जानता हूँ – अज्ञेय।
[66] 10–33–9।

निकलती हुई दिखाई गई है। वैसे भी हड़प्पा मोहन जोदड़ो से नारी मूर्तियाँ या आकृतियाँ पुरूषों की तुलना में अधिक प्राप्त हुई है। जिससे पता चलता है कि पूरी हड़प्पा सभ्यता मातृसत्तात्मक थी वहा भी मातृ"ाक्ति का प्रभूत आदर होता था। चाहे देवी के रूप में या गृहस्थ नारी के रूप में या पर्यावरण की संरक्षिका की रूप में। प्रारम्भिक गुप्त कालीन मृण्मुद्राओं पर मातृदेवी की प्रतिमा लगभग इसी रूप में द"ान होता है। अन्तर केवल इतना है कि पौधे को उनके गर्भ से निकलते हुए न दिखाकर उनके ग्रीवा से निकलते हुए दिखाया गया है। इसका सीधा–साधा अर्थ है नारी की प्रजनन शक्ति की उपासना दृ"यमान जगत के उत्पत्ति एवं पालन सम्बन्धी कार्य में वनस्पति जगत एवं मातृ"ाक्ति दोनों की भूमिका मानव अस्तित्व के लिए समान रूप से महत्वपूर्ण है। हमारे प्राचीन साहित्य, वेदों एवं शास्त्रों में पर्यावरण संरक्षण एवं प्रकृति की उपासना करने की बात कही गयी है। ऋग्वेद के द"ाम मंडल में वर्णित अरण्यानी सूक्त में नाना प्रकार की औषधियों तथा वनों के गुणों एवं उपयोगिताओं का उल्लेख प्राप्त होता है। वनदेवी को ही ऋग्वेद में अरण्यानी कहा गया है। वन सम्पदा के लिए प्रयुक्त स्त्रीलिंग वाचक संज्ञा है। इसी प्रकार ऋग्वेद के वनौषधि सूक्त में औषधियों को भी दिव्य दृष्टि से प्र"ांसित किया गया है। औषधियों को माताएँ एवं देवियाँ बताया गया है एवं सोम को उनका राजा कहा गया है। रामायण और महाभारत में भी अनेक प्रसंगों में वृक्षों की महत्ता एवं उनकी उपासना का संकेत मिलता है। रावण द्वारा अपÞता सीता माता का अ"ाोक वाटिका के वृक्षों के बीच आश्रय लेने के वर्णन एवं इसके अतिरिक्त शाल, चंदन, उदुम्बर एवं न्यग्रोध आदि वृक्षों का वर्णन प्राप्त होता है। महाभारत एवं पुराणों में वृक्षों को धर्मपुत्र माना गया है। वाराह पुराण में उल्लेख है कि जो कोई पीपल, नीम या बरगद का एक वृक्ष, अनार या नारंगी के दो वृक्ष, आम के पाँच पौधे रोपित करता है वह कभी भी नरक नही भोगता है।[67] इस प्रकार अनेक धार्मिक तर्कों का आश्रय लेकर वनस्पतियों को संरक्षित किया गया है। प्रत्येक ऐसे धार्मिक कृत्य निर्वहन में महिलाओं की भूमिका पुरूषों के सापेक्ष महत्वपूर्ण रखी गयी है। नीम और तुलसी

---

[67] वाराह पुराण, 172, 36, 37।

को पूजनीय बताकर घर–घर में प्रतिष्ठित कर दिया गया। पीपल और बरगद की तो वि"ोष तौर पर महिलाएँ पूजा करती रही है।

प्रमुख धार्मिक वनस्पतियों में आम, आँवला, पीपल, बरगद, बेल, दूब, कु"ा, तुलसी, मदार, हल्दी, रूद्राक्ष, नारियल, केला और चंदन आदि को धार्मिक भावना से जोड़ा गया जिससे हमें उनके प्रति अनुराग हो जाए और हम उनकी रक्षा करें। महिलाएँ इनको प्राचीन काल से ही सजगता से संचित/संरक्षित करती चली आ रही है।

प्राचीन भारतीय साहित्य तथा कला कृतियों में पूर्ण कल"ा की उत्पादिका शक्ति को 'श्री' (लक्ष्मी) के रूप में चित्रित किया गया है। श्री लक्ष्मी का भारतीय कला में प्राचीनतम अंकन हमें भरहुत तथा साँची से प्राप्त होता है। श्री लक्ष्मी कमल पर आसीन है, कहीं–कहीं पृष्ठ भाग पर पुष्पों कलियों तथा पत्तों से युक्त कमल पौधे निकलते हुए दिखाए गए है। वेदिका पर वृक्षों के साथ नारियों की क्रीड़ारत अथवा उपासनारत दिखाया गया है।[68]

साँची एवं भरहुत के स्तूपों पर वृक्षों–पासना से सम्बन्धित अनेक दृ"यांकन हैं। जिसमें नारी आकृतियाँ वृक्षोपासना करती हुई दिखाई गई है। वट वृक्ष की पूजा वैधव्य से मुक्ति दिलाने वाली मानी गई है। इसे वट सावित्री व्रत के नाम से ख्याति प्राप्त हुई। मंदिरों पर भी वृक्षों के साथ नारी आकृतियाँ दिखाई पड़ती है। प्राचीन वाङमय के अनु"ीलन से स्पष्ट होता है कि वृक्ष पूजा से मनोकामना पूर्ण होती है, पुत्र हीन को, पुत्र निर्धन को, सम्पत्ति रोगी को आरोग्य, शत्रु का ना"ा एवं ब्रह्म तेज की उपलब्धि वृक्षार्चन से होती है। ये उपलब्धियाँ महिलाओं के द्वारा वृक्षोपासना से पुरूषों की तुलना में सहज साध्य बतायी गयी है।

महाकवि कालिदास का समग्र–साहित्य ही पर्यावरण संरक्षण की भावना से भरा पड़ा है। शकुन्तला प्रकृति के पालने में पली एवं बढ़ी हुई वन कन्या है। शकुन्तला की विदाई पर महर्षि कण्व सभी आश्रमवासी प्राणियों को संबोधित करते हुए आग्रह करते है – ''हे! तपोवन के वृक्षों। जो तुम लोगों को पहले जल पिलाये

[68] जेम्स फर्गुसन ट्री एण्ड सर्पेन्ट व"र्ीप, पृ0 117।

बिना–जल नही पीती थी। श्रृंगारप्रिया होकर भी जो तुम्हारे कोमल किसलय श्रृंगार हेतु नही तोड़ती थी, तुम्हारे फूलों की उत्पत्ति के समय जो प्रसन्न होकर उत्सव मनाती थी, वह शकुन्तला आज अपने पतिगृह जा रही है, तुम सब उसे पतिगृह गमन हेतु अपनी अनुज्ञा प्रदान करो।''[69]

इस प्रकार पौराणिक साहित्य अपने इतिहास का अनु"ाीलन करने पर हमें पर्यावरण के विकास की कड़ी में महिलाओं का उतना ही योगदान रहा है जितना कि पुरूषों का, महिलाएँ किसी भी क्षेत्र में पुरूषों से पीछे नही हैं जहाँ तक पर्यावरण संरक्षण का प्र"न है महिलाओं ने पर्यावरण संरक्षण के लिए ज्यादा कठिन और बड़ी लड़ाइयाँ लड़ी है। चिपको आंदोलन महिलाओं के त्याग, बलिदान एवं उत्सर्ग का ही परिणाम है।

आधुनिक जीवन में पर्यावरण संतुलन की समस्या बहुत ही ज्वलंत विषय है। वैसे तो पर्यावरण चिंतन विगत दो–तीन द"ाकों से ही किया जाने लगा है। जबकि हमारे दे"ा में ऋषि परम्परा के अनुसार भारतीय मनीषी भौतिक एवं आध्यात्मिक पर्यावरण के प्रति प्राचीन काल से ही सजग थे। प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से उनका चिंतन समग्र भारतीय वाङमय में परिलक्षित होता था। पर्यावरण का सम्बन्ध मात्र प्राकृतिक संतुलन से नहीं वरन् आध्यात्मिक व सामाजिक वातावरण को परि"ाुद्ध व पवित्र बनाये रखने के लिए भी किया जाता है। ऐसा कहा गया है कि ''जिस समाज ने अपने पर्यावरण को ठीक ढ़ंग से समझकर उसके साथ समायोजन कर प्रकृति को मार्ग प्र"ास्त करने का प्रयास किया वह सभ्यता की दौड़ में आगे निकल गया। यद्यपि आदिकाल से मानव पर्यावरण से अपनी आव"यकताओं की पूर्ति करता रहा है। अतः पर्यावरण के प्रति उसका लगाव व सजगता बढ़ती गई। कालान्तर में प्रकृति में अत्यधिक दोहन वैज्ञानिक व औद्योगिक विकास की अनियोजित अनियंत्रित, प्रगति ने पर्यावरण संकट की स्थिति उत्पन्न कर दी है। वि"व का प्रथम पर्यावरण सम्मेलन जो कि स्टाक होम में संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा वर्ष 1972 में

[69] अभिज्ञान शाकुन्तलम – 4/9।

आयोजित किया गया जिसमें लगभग 119 राष्ट्रों ने 'एक ही पृथ्वी' के सिद्धान्त को स्वीकार किया। उसी क्रम में संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम की नींव भी रखी गई।

आज हमारे सामने पर्यावरण संकट से उत्पन्न चुनौतियाँ है। क्योंकि वि"व का कोई भी दे"ा नही है जो किसी न किसी रूप में पर्यावरण संकट से ग्रसित न हो। पूरी दुनियाँ में प्राकृतिक संसाधनों का दोहन तीव्र गति से हो रहा है। उससे प्रकृति की अमूल्य सम्पदा शीघ्र ही समाप्त हो जायेगी। फिर से पुनः उसकी भरपाई करना असंभव है। अतः धरती तथा जीवधारियों को बचाने के लिए पर्यावरण संरक्षण अति आव"यक है। पर्यावरण संकट से उत्पन्न चुनौतियों का सामना करने में ि"ाक्षा हमे किस प्रकार सक्षम बना सकती है इस विषय को लेकर 14 से 16 अक्टूबर 1977 को सोवियत संघ में स्थित टेबलिसाई त्रिओजरिया में वि"व का प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय सरकारी सम्मेलन हुआ, जिसमें पर्यावरण संरक्षण के लिए ि"ाक्षा से सम्बन्धित आज के संकटों पर गहरे रूप से विचार किया गया कि यह ि"ाक्षा एक वि"व व्यापक आजीवन कार्यकलाप होना चाहिए जिसमें सम्पूर्ण समाज का योगदान हो। और पर्यावरणीय ि"ाक्षा भी अवधारणा औपचारिक ि"ाक्षा का एक अंग बन सके। प"िचमी दे"ाों के लिए पर्यावरण विकास का अर्थ उसके जीवन यापन स्तर को उठाना हो सकता है, परन्तु भारतीय संस्कृति में पर्यावरण का अर्थ यहाँ के लोगों की जीवन मृत्यु का प्र"न है। महात्मा गाँधी जी कहा करते थे – ''प्रकृति में हर एक की आव"यकता पूर्ति के लिए पर्याप्त साधन हैं किन्तु लालच पूरा करने के लिए नहीं। इस लालची प्रवृत्ति से ही पृथ्वी के हर भाग में पर्यावरण संकट उत्पन्न हुए हैं जैसे बाढ़, सूखा, भूस्खलन, अतिवृष्टि महामारी आदि।''

हम पर्यावरण चुनौतियों का तभी सामना कर सकते है जब इस विषय में महिलाओं को जागरूक करें। तथा उनकी भूमिका निहित हो। क्योंकि वि"व में नारियों के बिना न तो कोई लौकिक कार्य में सफलता प्राप्त होती है और न ही साधना में सिद्धि। प्रकृति व महिला दोनों जननी हैं। दोनों का रि"ता आपस में अटूट है। इसलिए एक के विना"ा से दूसरे का विना"ा स्वाभाविक है। पर्यावरण संकट में महिलाओं को सबसे ज्यादा कष्ट उठाना पड़ रहा है। अतः महिलाओं को

जागरूक करना अति आव”यक है। क्योंकि नारी जब कोई काम में लग जाती है तो वह पहाड़ को भी हिला देती है। हम इतिहास पर दृष्टि डाले तो यह पूर्ण रूप से दृष्टिपात होता है कि जिस तरह से महिला बड़ी संख्या में स्वतंत्रता आन्दोलन से जूड़ी थी उसी प्रकार से पर्यावरण संकट आन्दोलनों में भी सक्रीय रूप से भाग ले रही है। वनों के अस्तित्व को बनाए रखने के लिए सर्वप्रथम सितम्बर 1730 में राजस्थान के जोधपुर जिले के खेजड़ली गाँव में वन बचाओं आन्दोलन बड़े पैमाने पर प्रारम्भ हुआ था। 20वीं शताब्दी के प्रारम्भिक द”ाक में उत्तर का”ाी जनपद के तिलाड़ी नामक स्थान पर तथा टिहरी कुमाँऊ गढ़वाल में वन आन्दोलन में महिलाओं द्वारा किये गए। इसी क्रम में चिपको आन्दोलन 1977 में महिलाओं द्वारा एक नारा दिया गया। ''क्या है जंगल के उपचार? मिट्टी, पानी और बयार। मिट्टी, पानी और बयार जिन्दा रहने के आधार।'' महिलाओं का यह नारा आज सारी दुनिया में फैल गया है। महिलाओं द्वारा इसे पर्यावरण सुरक्षा का तथा स्थाई अर्थव्यवस्था क अभिनव आन्दोलन बना दिया। वृक्षों को बचाने के लिए इस आन्दोलन जिसमें महिलाएँ वृक्ष के पहले स्वतः कटवाने के लिए प्रस्तुत हो जाती थी। इस प्रकार चिपको आन्दोलन महिलाओं में त्याग व बलिदान का ही परिणाम है। इसी प्रकार भारत की स्व0 प्रधानमंत्री इन्दिरा गाँधी के भी भावो को भूलाया नही जा सकता। 1972 में जब पहली बार पर्यावरण सम्बन्धी अन्तर्राष्ट्रीय सेमिनार में स्टाकहोम गई और सेमिनार में लिए गए निर्णयों के सफल क्रियान्वयन हेतु श्रीमती गाँधी ने पर्यावरण के महत्व को बताते हुए कहा कि पर्यावरण को संरक्षण में लेना भावूकता नही वरन् हमारे प्राचीन मनीषियों ने जिस सत्य की खोज की थी, उसका पुनः आविष्कार करना है।

महिलाएँ भावी वि”व की शक्ति हैं, रक्षिकाएँ हैं। क्योंकि विकास”ाील दे”ाों में महिलाएँ कृषि कार्य, ईंधन खोजने, खाना पकाने, पानी लगाने, बच्चों का पालन–पोषण करने तथा परिवार के सदस्यों की देखभाल से लेकर परिवार के अधिकां”ा उत्तरदायित्वों का निर्वाहन करती है। इसलिए पर्यावरण संकट का महिलाओं से अधिक सम्बन्ध है।

जल हमारी मूलभूत आव"यकता है। दूषित पर्यावरण में स्वच्छ जल का मिलना अति कठिन हो गया है। इस दे"ा में अधिकां"ा भागों में जल स्रोत सूख रहे है। ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाएँ को पानी लेने दूर–दूर तक जाना पड़ता है। इसके साथ–साथ नगरीय क्षेत्रों में स्वच्छ जल त्रासदी है। प्रसिद्ध महिला समाज"ाास्त्री वीणा मजूमदार का कहना है – पंचवर्षीय योजनाओं में सिंचाई की ओर ध्यान दिया गया परन्तु पीने के स्वच्छ जल की समस्या को हल करने की दि"ाा में ठोस कार्य नहीं किये गए। प्रदूषित जल के प्रयोग से विभिन्न प्रकार के रोगों का प्रति"ात हमारे दे"ा में तेजी से बढ़ रहा है। उसी क्रम में पानी हेतु की गई अव्यवस्थित बोरिंग, भूकम्प जोन संहारकारी विपदा को पैदा करने में सहयोगी साबित हो रही है।

आज भी भारत की 64 प्रति"ात ग्रामीण जनता घरेलू ईंधन के रूप में लकड़ी तथा प्रकृति प्रदत्त ईधन का प्रयोग करती है। जिससे महिलाओं के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। घरों के भीतर वायु प्रदूषण हर वर्ष मौत के लिए उत्तरदायी होता है। विभिन्न सर्वेक्षणों के आधार पर ईंधन के धुँए से महिलाएँ काफी छोटी उम्र में ही दिल के रोग से ग्रसित हो जाती है। भारत जैसे विकास"ाील दे"ा में महिलाएँ घरेलू ईधन पर निर्भर रहती है। इस प्रकार घर की धूरी ही कमजोर हो गई तो, परिवार, समाज एवं राष्ट्र का कु"ाल संचालन कैसे संभव होगा। अतः ऊर्जा के ऐसे साधनों का उपयोग करने को प्रेरित करें तथा महिलाओं को गैर परम्परागत ऊर्जा स्रोतों जैसे वायो गैस, हवा चक्की सोलर, गीजर तथा सोलर कुकर आदि के उपयोग हेतु जानकारी दी जाए।

पर्यावरण संकट में मुख्य रूप से सरकार के वन्य जीवन की सुरक्षा जनसंख्या विस्फोट व शहरीकरण, औद्योगीकरण जैसी समस्याओं को आधार माना है। जबकि असंतुलन का मुख्य कारण जल आपूर्ति, सामुदायिक शौचलय व घरों में उपलब्ध शुष्क शौचालय सम्बन्धी परम्परागत तरीकों के उपयोग का भयानक स्थान है। ये संक्रमण फैलने वाले तत्व महिलाओं के स्वास्थ्य पर ज्यादा प्रभाव डालते है। गरीब विकास"ाील दे"ाों में पहले ग्रामीण क्षेत्रों की समस्या के अतिरिक्त यह अब नगरीय समस्या भी बनती जा रही है।

नवगठित राष्ट्रीय पर्यावरण परिषद के समक्ष 25 अप्रैल 1994 को अपने उद्‌घाटन भाषण में श्री नरसिम्हा राव पहले ऐसे प्रधानमंत्री थे, जिन्होंने कहा है, सफाई प्रबन्धन भी पर्यावरण की रोकथाम के मुख्य तत्वों में से एक है। कम खर्च वाले सफाई सुविधाएँ उपलब्ध करावे। इसके लिए विभिन्न संस्थाएँ इस क्षेत्र में अपने सहयोग हेतु शामिल है। जैसे वि"व बैंक के सहयोग से सुलभ इण्टरने"ानल नामक वि"व प्रसिद्ध भारतीय स्वयंसेवी संगठन, नगर निगम। इसके साथ–साथ अन्तर्राष्ट्रीय एजेन्सियाँ जैसे यूनीसेफ, वि"व स्वास्थ्य संगठन, वि"व बैंक और यू0एन0डी0वी0 भी सहयोग हेतु सम्मिलित है।

भारत की जनसंख्या 2001 को लगभग एक अरब तक जो कि विगत द"ाकों की अपेक्षा अधिक है। इसके मुख्य उत्तरदायी कारक जन्म दर अधिक क्या, मृत्यु दर में कमी होना है। इसका मुख्य कारण महिलाओं का अि"ाक्षित होना है तथा उनमें व्याप्त धार्मिक अंधवि"वास की भावनाएँ हैं। आदि मानवीय आधारभूत आव"यकताओं से वंचित रह जाते है।

महिलाओं को विभिन्न संचार माध्यमों से इलेक्ट्रानिक मीडिया से ि"ाक्षित कर उन्हें पर्यावरण के गम्भीर पहलुओं से अवगत कराया जा सकता है। समाज ि"ाक्षा एक सतत प्रक्रियाँ है तथा यह तभी अपने उद्‌दे"य में सफल हो सकती है जब इसका सम्प्रेषण व्यवस्थित तरीके से किया जाय। पर्यावरण व्यक्ति के विचारों, आदतों पर प्रभाव डालता है। अतः एक स्वस्थ राष्ट्र का निर्माण करने और साफ सुथरा पर्यावरण उपलब्ध कराने के लिए महिलाओं के संदर्भ में पर्यावरण समाज, ि"ाक्षा आज संसार की सबसे बड़ी आव"यकता है। अतएव यह हमारा नैतिक दायित्व है कि समान ि"ाक्षा व्यवस्थित तरीके से दी जाय जिससे राष्ट्र की समग्रता मिल सके।

4- i;koj.k lj{k.k e vkfnoklh dh Hkfedk

आदिवासी आदिम जाति, जनजाति, वनवासी, अनुसूचित जनजाति आदि किसी भी नाम से हमारे समाज में पहचाना जाने वाला वह वर्ग है जो प्रायः जंगलों

पहाड़ों और दूर दराज के इलाको में आधुनिक सभ्यता के लाभो से वंचित, प्रगति की दौड़ से पिछड़ा, ि"ाक्षा तथा जागरण के वरदान से प्रायः अछूता और शोषक का ि"ाकार है। ये आदिवासी समूचे दे"ा की जनसंख्या का 78 प्रति"ात है। लेकिन यह समझना भूल होगी की हमारी जनजातियाँ हर दृष्टि से हीन है और उनके पास सुन्दर और अनुकरणीय कुछ भी नही है। उनके जीवन में वास्तव में ऐसा कुछ है जो हमे प्रभावित किये बिना नही रहता। उनका नि"छल–निष्कपट स्वभाव, ईमानदारी, परिश्रमी जीवन, मेल–मिलाप और सहयोग की प्रवृत्ति, भूखे पेट भी नाच–गाने की मस्ती उनके रंग–रंगीले लोक नृत्य, फाके होने पर भी भीख न माँगने का स्वभाव, सहज ही मर्म को छू लेते हैं। असाधारण सहन"ीलता के साथ ही स्वाभिमान को ठेस लगने पर ये लोग मर मिटने को तैयार रहते हैं। दे"ा के अनेक आदिवासी क्षेत्रों में लगातार सूखा पड़ने पर भी शाम ढली नही कि आपको आदिवासियों के गाँवों से मांडर (ढोल) की थाप पर नाच–गानों की लहरियाँ सुनाई पड़ने लगेंगी। ऐसा है इन प्रकृति–पुत्रों का जीवन। हमें यह नही भूलना चाहिए कि वनवासी या आदिवासी वर्ग की कुर्बानी पर ही सारे दे"ा का आर्थिक विकास हो रहा है। चाहें सड़के बने, चाहें बाँध, चाहें इस्पात या दूसरे बड़े कारखाने खुलें, चाहें रेलें और नहरे निकले आदिवासियों की जमीन और गाँव की उड़जते है। और उनके जीवन पर ही प्रभाव पड़ता है। और वे लोग शहरों में जाकर मजदूरी करने और रिक्"ाा चलाने पर मजबूर होते है। अतः उनकी जमीन लेकर शीघ्र मुआवजा देने, झूम की खेती का विकल्प देने अर्थात उनके पूनर्वास का पूरा–पूरा प्रबंध हमारी विकास योजनाओं का अनिवार्य अंग होना चाहिए। तभी जनजातियों को सत्ता संतोष मिलेगा।

तमाम योजनाओं में आदिवासियों का अधिकाधिक सहायता का प्रावधान रहा है। योजनाएँ बनी और लागू भी हुई, लेकिन उसका कुछ भी फायदा नही हुआ। वन आदिवासियों के लिए दाता–त्राता एवं अभिरक्षक है। जहाँ से उन्हें खाद्य पदार्थ, रोजगार आर्थिक समृद्धि एवं उनकी संस्कृति के विकास को बल मिला। वनों से जहाँ उन्हें ईधन, चारा, घर बनाने की लकड़ी मिलती है वही उनके गहरे मनोभावों

को पूर्ण संतोष मिलता है। अकाल के समय केवल वन ही आदिवासियों के पोषक रह जाते है। आदिवासियों ने आदिकाल से वन पारिस्थितिकी से सम्बन्ध जोड़ा है। वनों में रहने के वे इतने अभ्यस्त हो गए है कि उन्हें कही बाहर ले जाया जाय तो अधिक कठिनाई का अनुभव करते है।

जंगल व्यापक रूप से काट डाले गए। तथा बड़े बाँध तथा कारखाने बनाकर उन्हें हजारों की तादात में बेघर और बेरोजगार कर दिया गया है। उनकी महिलाओं को हजारों की तादात में मैदानों और शहरों में लाकर वे"यावृत्ति के लिए मजबूर किया गया है। कुपोषण और यौन रोगों की वृद्धि ने उनके स्वास्थ्य को चौपट कर दिया है। बड़े उद्योगों तथा व्यापार ने उन्हें बेघर और कंगाल बना दिया है। आदिवासियों की स्थिति की छलनी में इतने छेद हैं कि जो कुछ साधन उसमें डाले जाते हैं वे सब निकल जाते है। और इनकी स्थिति बद से बदतर होती जाती है।

इस दे"ा के इतिहास की सबसे महत्वपूर्ण और बड़ी घटना वैदिक आर्यो का प्रवे"ा और विस्तार तथा आर्यों की आर्य पूर्व की जातियों पर विजय है। जिसके परिणामस्वरूप जो लोग आर्य विजित प्रदे"ा में रहे वे शूद्र तथा अति"ाूद्र के रूप में आर्यों की सामाजिक वर्ण व्यवस्था में शामिल कर लिए गये और जो स्वाधीनता की रक्षा के हेतु अपना राज्य छोड़कर जंगलों और पहाड़ों में चले गए, वे ऋग्वेद की भाषा में दस्यू कहलाए। उन्होंने वहाँ जंगल साफ करके छोटे–छोटे गाँव बसा लिए और धीरे–धीरे उनके छोटे–छोटे राज्य भी बन गए। उनकी आर्य राजाओं से युद्ध और संधि की स्थिति चलती रही। इस दे"ा के इतिहास में हारी हुई जातियाँ इसी प्रकार दस्यू और वनवासी बनती रही। अंग्रेजी राज्य काल में यह सब जातियाँ पड़ोसी राजाओं द्वारा युद्ध, प्रलोभन, अथवा धोखे से अपने–अपने राज्यों में शामिल कर ली गई। पहले छोटे जमींदारों के रूप में बाद में भूमिहीन, साधनहीन जनता के रूप में। स्वाधीनता खोकर राज्यों में शामिल होने के साथ ही राज्यों के समर्थ तथा उच्च वर्ग के लोगों द्वारा उनका शोषण प्रारम्भ हो गया। ब्राह्मण धर्म–कर्म, तीर्थ पूजा आदि के नाम पर राजा, जमींदार, सुरक्षा, लोगवाग बेगार आदि के नाम पर, वै"य कर्ज, व्यापार उद्योग–धन्धों आदि के नाम पर उनका और उनके क्षेत्रफल का

शोषण करने लगे। विजयी लोगों द्वारा विजितो के शोषण की यह परम्परा आज तक बराकर चलती और बढ़ती रही है। भारत की आजादी के बाद भी सत्ता और सम्पत्ति का एकाधिकार इस दे"ा के उच्चवर्गीय समूहों के हाथ में ही केन्द्रित रहा है। इसलिए आदिवासी क्षेत्रों पर आदिवासी जनों का शोषण भी वर्षों से बढ़ता ही आ रहा है।

प्रायः प्रत्येक क्षेत्र में इन जातियों की आर्थिक स्थिति कमजोर पड़ी है। रोजगार कम हुए है, रोजगार के प्राकृतिक साधन कम हुए हैं। बहुत जगह उन्हें बेदखल किया गया है। वर्षों से वे बेदखल ही पड़े हैं। मुआवजे में जमीन, घर और काम मिले ही नही है। मिले है तो बहुत अपर्याप्त है। उच्च जातीय साहुकारों का शोषण उन्हें बेघर और साधनहीन बना रहा है। राज्याधिकारी उनके साथ दुर्व्यवहार करते है और लूटते है। उनके सामने वर्तमान भी नही है, भविष्य भी नही है। बड़े कारखानों और बाघो ने बड़े पैमाने पर बेदखल करके उन्हे दर–दर का भिखारी बना दिया है। ये सब मिलकर उनके क्षेत्र का भयंकर रूप से शोषण तथा दोहन कर रहे है। जंगलों को काटे जाने से उनकी जीविका के साधन समाप्त हो गए है। पुराने साधन छीन लिए गए, नये साधन आज के प्रतियोगिता के युग में घुसखोरी और सिफारि"ा के रहते उन्हें मिलने भी नहीं देते है।

वन एवं आदिवासी एक–दूसरे के पूरक हैं एवं आदिवासियों की आर्थिक द"ाा मुख्य रूप से वनों पर आधारित है। वन आदिवासियों के लिए दाता–त्राता एवं अभिरक्षक है जहाँ से उन्हें खाद्य पदार्थ, रोजगार, आर्थिक समृद्धि एवं उनकी संस्कृति के विकास को बल मिला। वनों से जहाँ उन्हें ईधन, चारा, घर बनाने की लकड़ी मिलती है वहीं उनके गहरे मनोभावों को पूर्ण संतोष मिलता है। अकाल के समय केवल व नही आदिवासियों के पोषक रह जाते है। आदिवासियों ने आदिकाल से वन पारिस्थितिकी से सम्बन्ध जोड़ा है। वनों में रहने के वे इतने अभ्यस्त हो गये है कि उन्हें कही बाहर ले जाया जाय तो अधिक कठिनाई का अनुभव करते है। आबादी के पास के वन कटाई से बिगड़ गये है तथा पुनर्भरण के अभाव में आबादी के दवाब से लगातार उजड़ रहे है। कुछ क्षेत्रों में आदिवासियों की वनों पर

रचनात्मक निर्भरता के स्थान पर अरचनात्मक निर्भरता, उनके सचेत निर्णय का प्रतिफल नही है। अरचनात्मक निर्भरता का सहारा लाचारी एवं गरीबी के कारण लिया जाता है। जिसमें व्यापारिक एवं औद्योगिक हितों की प्रधानता रहती है तथा वन संसाधनों को केवल फायदा उठाने का स्रोत माना जाता है।

आदिवासियों की वनों पर निर्भरता आदिवासियों में लगभग 85 प्रति"ात परिवार भू–स्वामी है। जिनके पास औसतन 2.24 हेक्टेयर भूमि है। अधिकतर कृषक एक ही फसल उगाते हैं एवं उत्पादकता अत्यन्त कम है। खेतों पर इमारती लकड़ी के वृक्ष बड़े है जिनका प्रबन्ध किसानों की आर्थिक द"ाा सुधार सकता है। कृषि वनिकी अपनाकर यहा का किसान उत्पादकता बढ़ाकर अपनी आर्थिक द"ाा में आमूल परिवर्तन लाने के साथ–साथ पर्यावरण संरक्षण में भी योगदान देगा। आदिवासियों के पास बैल, गायें, बकरियाँ, भेड़ें एवं मुर्गियाँ है जो पर्यावरण घटक के रूप मे है। जो पूर्ण रूप से प्रकृति पर ही निर्भर है। अधिकां"ा आदिवासी परिवार इमली तथा आम लगाए हुए है। जो पर्यावरण संरक्षण का एक विकल्प है। इसके अलावा अमरूद, कटहल, मुन्गा, सल्फी, केला एवं रानी झाड़ी आदि रोपण की प्रथा भी आदिवासियों के यहाँ है जो कहीं न कहीं पर्यावरण संतुलन में अपना योगदान प्रदान करते है। आदिवासी वृक्षारोपण में महुआ का वृक्ष लगाने का प्रबन्धन करते है जो फल, फूल तथा बीज कई प्रकार से उनके परिवार का भरण पोषण करते हैं। प्रत्येक परिवार द्वारा न्यूनतम 1.58 एवं अधिकतम 5.44 टन जलाऊ लकड़ी का उपयोग खाना पकाने एवं तापने के लिए उपयोग करते है। यह वह लकड़ियाँ होती है जो पेड़ से सूखकर गिरती है। ये आदिवासी किसी पेड़ का नुकसान पहुँचाकर अपना स्वार्थ नहीं साधते है।

पर्यावरण संतुलन को ध्यान में रखते हुए आदिवासियों को सुविधा मुहैया कराने की सरकार को कोि"ा"ा करनी चाहिए। आदिवासी तथा वनवासियों के विकास पर वि"ोष ध्यान दिया जाना चाहिए ताकि उनके जीवन यापन की व्यवस्था ठीक हो सके। गंदी बस्तियों में रहने वालो को सीधी सहायता दी जानी चाहिए। ताकि उनके जीवन यापन की व्यवस्था ठीक हो सके। राष्ट्रीय पर्यावरण संगठनों को

अधिक से अधिक राजनैतिक समर्थन और आर्थिक सहायता दी जानी चाहिए। इसके साथ ही संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम को भी मजबूत बनाने में मद्द देनी चाहिए। क्योंकि यह एक ऐसा प्रमुख संगठन है जो अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रयास करता है। ऋण देने वाले संगठनों को भी अपने मापदण्ड बदलकर अब इस ओर ध्यान देना चाहिए कि ऋण से चलाई जा रही परियोजनाओं या अन्य कार्यक्रमों से पर्यावरण दूषित न हो। विभिन्न दे"ाों की सरकारों को यह भी स्वीकार करना चाहिए कि पर्यावरण की लगातार खराबी से राष्ट्रीय सुरक्षा को भी खतरा हो सकता है और राष्ट्र का अस्तित्व तक संकट में पड़ सकता है। लेकिन अमरीका, एि"ाया तथा अफ्रीका के कई भागों में पर्यावरण प्रदूषण से उथल–पुथल, राजनैतिक तनाव तथा हिंसा की घटनाएँ बढ़ती जा रही है।

fu"d"k

इसमें भारतीय दर्शन : संस्कृति और पर्यावरण, भारतीय साहित्य और पर्यावरण, पर्यावरण परिरक्षण में नारी की भूमिका तथा पर्यावरण परिरक्षण में आदिवासी की भूमिका है। इन सभी के अन्तर्गत, वेदों में पर्यावरण, संहिताओं में पर्यावरण, धर्मसूत्रों में पर्यावरण, ब्राह्मण ग्रन्थों में पर्यावरण, स्मृतियों में पर्यावरण, पुराणों में पर्यावरण, जैन धर्म में पर्यावरण, भारतीय संस्कृति में पर्यावरण, रामायण में पर्यावरण, महाभारत में पर्यावरण, भारतीय कला में पर्यावरण, अभिलेखों में पर्यावरण, भारतीय साहित्य में पर्यावरण तथा पर्यावरण संरक्षण में नारी की भूमिका आदि की ओर संकेत किया गया है।

v/;k;&pkj

आधुनिक हिन्दी कविता में प्रर्यावरण चिंतन की भूमिका

1- vk|kfxdhdj.k

    1-1 vk|kfxd Økfr

    1-2 Hkkjr esa vk|kfxd Økfr

    1-3 vk|kfxd Økfr dk izHkko

    1-4 vk|kfxd fodkl dk i;kZoj.k ij izHkko

2- **मनुष्य का मशीनीकरण**

3- foKkuokn

4- vk/kqfud dfork esa i;kZoj.k fparu dh Hkkfedk fu"d"kZ

1- vk|kfxdhdj.k

1-1 vk|kfxd Økfr

अठ्ठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और उन्नीसवीं के पूर्वार्द्ध ने कुछ पश्चिमी देशों ने तकनीकी, सामजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक स्थिति में काफी बड़ा बदलाव आया। इसे ही औद्योगिक क्रांति के नाम से जाना जाता है। यह सिलसिला ब्रिटेन से आरम्भ होकर पूरे विश्व में फैल गया। 'औद्योगिक क्रांति' शब्द का इस सन्दर्भ में प्रयोग सबसे पहले आरनोल्ड टायनवी ने अपनी पुस्तक 'लैक्चर्स आन दि इंडिस्ट्रयल रिवोलूशन इन इंग्लैण्ड' में सन् 1844 में किया।

औद्योगिक क्रांति का सूत्रपात वस्त्र उद्योग के मशीनीकरण के साथ आरम्भ हुआ। इसके साथ ही लोहा बनाने की तकनीक आयी और शोधित कोयले का आधिकारिक उपयोग होने लगा। कोयले को जलाकर बने वाष्प की शक्ति का उपयोग होने लगा। शक्ति चलित मशीनों के आने से उत्पादन में जबरदस्त वृद्धि हुई। उन्नसवीं सदी के प्रथम दो द”ाकों में पूरी तरह से धातु से बने औजारों का विकास हुआ। इसके परिणामस्वरूप दूसरे उद्योगों में काम आने वाली म”ीनों के निर्माण को गति मिली। उन्नीसवी शताब्दी में यह पूरे प”िचम यूरोप तथा उत्तरी अमेरिका में फैल गयी।

सन् 1868 में जर्मनी के केम नीज शहर के एक कारखानें का म”ीन हाल 16वीं तथा 17वीं शताब्दियों में यूरोप के कुछ दे”ों ने अपनी नौ शक्ति के आधार पर दूसरे महाद्विपों मे अधिपत्य जमा लिया। उन्होंने वहाँ पर धर्म तथा व्यापार का प्रसार किया। उस युग में म”ीनों का आविष्कार बहुत कम हुआ था। जहाज लकड़ी के ही बनते थे। जिन वस्तुओं का भार कम परन्तु मूल्य अधिक होता है उनकी बिक्री सात समुद्रों पार भी हो सकती थी। उस युग में नये व्यापार से धनोपार्जन का एक नया प्रबल साधन प्राप्त किया। और कृषि का महत्व कम होने लगा। व्यक्तियों में किसी सामंत की प्रजा के रूप में रहने की भावना का अंत होने लगा। अमरीका के स्वाधीन होने तथा फ्रांस में ''भातृत्व, समानता और स्वतंत्रता'' के आधार पर होने

वाली क्रांति ने नये विचारों का सूत्रपात किया। प्राचीन श्रृंखलाओं को तोड़कर नयी स्वतंत्रता की ओर अग्रसर होने की भावना का आर्थिक क्षेत्र में यह प्रभाव हुआ कि गाँव के किसानों में अपना भाग्य स्वयं निर्माण करने की तत्परता जाग्रत हुई। वे कृषि का व्यवसाय त्याग कर, नए अवसर की प्रतीक्षा करने लगा। यह विचारधारा 18वीं शताब्दी के अंत में समस्त यूरोप में व्याप्त हो गई। इंग्लैण्ड में उन दिनो कुछ नए यांत्रिक आविष्कार हुए।

इंग्लैण्ड में नए स्थानों पर जंगलों में खनिज क्षेत्रों के निकट नगर बसे, नहरों तथा अच्छी सड़कों का निर्माण हुआ और ग्रामीण जनसंख्या अपने नये स्वतंत्र विचारों को क्रियान्वित करने का अवसर का लाभ उठाने लगी। दे”ा में व्यापारिक पूँजी, साहस तथा अनुभव को नया क्षेत्र मिला। व्यापार वि”वव्यापी हो सका। दे”ा की मिलों को चलाने के लिए कच्चे माल की आव”यकता हुई। उसे अमरीका तथा ए”िाया के दे”ाों से प्राप्त करने के उद्दे”य से उपनिवे”ाों की स्थापना की गई। कच्चा माल प्राप्त करने और तैयार माल बेचने के साधन की वही उपनिवे”ा हुए। नई व्यापारिक संस्थाओं, बैंकों और कमी”ान एजेटों का प्रादुर्भाव हुआ। एक वि”ोष व्यापक अर्थ में दुनियाँ के विभिन्न हिस्से एक दूसरे से सम्बन्ध होने लगे। 18वीं सदी के अंतिम 20 वर्षों में आरम्भ होकर 19वीं शती के मध्य तक चलती रहने वाली इंग्लैण्ड की इस क्रांति का अनुसरण यूरोप के अन्य दे”ाों ने किया। हालैण्ड तथा फ्रांस में शीघ्र ही तथा जर्मनी, इटली आदि राष्ट्रों में बाद में यह प्रभाव पहुँचा। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में व्यापारियों ने अपने–अपने राज्यों में धन की वृद्धि की और बदले में सरकारों ने सैन्य सुविधाएँ तथा वि”ोषाधिकार माँगे। इस प्रकार आर्थिक तथा राजनीतिक क्षेत्रों में व्यापार तथा संज्ञा का यह सहयोग उपनिवेषवाद की नींव को सुदृढ़ करने में सहायक हुआ। राज्यों के बीच अपने दे”ाों की व्यापारनीति को प्रोत्साहन देने के प्रयास में उपनिवे”ाों के लिए युद्ध भी हुए। उपनिवे”ाों का आर्थिक जीवन 'मूल राष्ट्र' की औद्योगिक आव”यकताओं की पूर्ति करने वाला बन गया। स्वतंत्र अस्तित्व के स्थान पर परावलंबन उनकी वि”ोषता बन गयी। जिन दे”ाों में औद्योगिक परिवर्तन हुए वहाँ मानव बंधनों से मुक्त हुआ। नये स्थानों पर नए

व्यवसायों की खोज में वह जा सका धन का वह अधिक उत्पादन कर सका। मालिक–मजदूर सम्बन्धों को सहानुभूति पूर्ण बनाने की चेष्टाए होने लगी। मानव मुक्त हुआ, पर वह मुक्त हुआ धनी या निर्धन होने के लिए, भर पेट भोजन पाने या भूखा रहने के लिए, वस्त्रों का उत्पादन कर स्वयं वस्त्र विहिन रहने के लिए। इस प्रकार 18वीं शती के अंतिम 20 वर्षों में फ्रांस की राज्यक्रांति से प्रेरणा प्राप्त कर इंग्लैण्ड में 19वीं शताब्दी में विकसित म”ीनों का अधिकाधिक उपयोग होने लगा। उत्पादन की नई विधियों और पैमानों का जन्म हुआ। यातायात के नये साधनों द्वारा वि”वव्यापी बाजार का जन्म हुआ। इन्ही सबसे सम्बन्धित आर्थिक एवं सामाजिक परिणामों का 50 वर्षों तक व्याप्त रहना क्रांति की संज्ञा इसलिए पा सका कि परिवर्तनों की वह मिश्रित श्रृंखला आर्थिक–सामाजिक व्यवस्था में आधारभूत परिवर्तन की जन्मदायिनी थी।

1-2 Hkkjr e vk|kfxd Økfr

प्राचीन काल में भारत एक संपन्न दे”ा था। भारतीय कारीगरों द्वारा निर्यात, माल, अरब, मिश्र, रोम, फ्रांस तथा इंग्लैण्ड के बाजारों में बिकता था। और भारत वर्ष के व्यापार के लिए विदे”ाी राष्ट्रों में होड़ सी लगी रहती थी। इसी उद्दे”य से सन् 1600 में ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना इंग्लैण्ड में हुई। यह कंपनी भारत में बना हुआ माल इंग्लैण्ड ले जाकर बेचती थी। भारतीय वस्तुएँ वि”ोषकर रे”ाम और मखमल के बने हुए कपड़े इंग्लैण्ड में बहुत अधिक पसंद की जाती थी, यहाँ तक कि इंग्लैण्ड की महारानी भी भारतीय वस्त्रों को पहनने में अपना गौरव समझती थी। परन्तु यह स्थिति बहुत दिनों तक बनी न रह सकी। औद्योगिक क्रांति के परिणामस्वरूप इंग्लैण्ड में माल बड़े पैमाने पर तैयार होने लगा और यह उपनिवे”ाों में बेचा जाने लगा। अंग्रेज व्यापारियों को अपनी सरकार का पूरा–पूरा सहयोग प्राप्त था। भारतीय करीगर निर्बल और बिखरे हुए थे, अतएव वे म”ाीन की बनी वस्तुओं से प्रतिस्पर्धा करने में असमर्थ रहें। फलतः उन्हें अपना पु”तैनी पे”ाा छोड़कर खेती का सहारा लेना पड़ा। इस प्रकार औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप भारतीय उद्योग धन्धों का ना”ा हो गया तथा लाखों कारीगर भूखों मरने लगे। औद्योगिक

क्रांति जो इंग्लैण्ड के लिए वरदान स्वरूप थी, भारतीय उद्योगों के लिए अभि"ााप सिद्ध हुई।

आधुनिक रूप से भारत वर्ष का औद्योगीकरण 1850 ई0 से आरम्भ हुआ। सन् 1853–54 में भारत में रेल और तार की प्रणाली प्रारम्भ हुई। यद्यपि रेल बनाने का मुख्य उद्दे"य कच्चे माल का निर्यात तथा निर्मित माल का आयात करना था। तो भी रेलों में भारतीय उद्योगों को वि"ोष सहायता मिली। प्रारम्भ में भारतीय पूँजी से कुछ सूती मिले और कोयले की खदानें स्थापित की गई। धीरे–धीरे ये उद्योग बहुत उन्नत हो गया। कुछ समय के प"चात् कागज बनाने और चमड़े के कारखाने भी स्थापित हो गए और 1908 ई0 में भारत वर्ष के प्रथम बार लोहे और इस्पात का कारखानों की प्रारम्भ हुआ। प्रथम महायुद्ध (1914–1918) के अनन्तर उद्योगों की उन्नति में वि"ोष रूप से सहायक सिद्ध हुई। सन् 1922 और 1939 ई0 के बीच सूती कपड़ों का निर्माण दुगुना और कागज का उत्पादन ढ़ाई गुना हो गया। 1932 ई0 में शक्कर के कारखानों की स्थापना भी हुई और 1935–36 ई0 में वे दे"ा की 95 प्रति"ात आव"यकता की पूर्ति करने लगे। द्वितीय महायुद्ध काल में भारतीय उद्योगों ने और भी अधिक उन्नति की। पुराने उद्योगों की उत्पादन शक्ति बहुत अधिक बढ़ गई और अनेक नवीन उद्योगों की भी स्थापना हुई। भारत में डीजल इंजन, पम्प, बाइसकिलें, कपड़ा सीने की म"ाीनें, कास्टिक सोडा, सोडऐ"ा क्लोरीन आदि का उत्पादन प्रारम्भ हुआ तथा दे"ा के इतिहास में पहली बार वायुयानों, मोटरकारों तथा जहाजों की मरम्मत करने का कार्य प्रारम्भ हुआ। द्वितीय महायुद्ध के अंत तक भारत वर्ष की गणना वि"व के प्रथम आठ औद्योगिक राष्ट्रों में होने लगी। उस समय भारतीय कम्पनियों में लगी हुई कुल पूँजी 424.2 करोड़ थी तथा उद्योगों में पच्चीस लाख मजदूर कार्य करते थे। भारत शक्कर, सीमेंट तथा साबुन के क्षेत्र में पूर्णतः आत्म निर्भर था तथा जूट के क्षेत्र में तो उसका एकाधिपत्य था।

स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत औद्योगिक उन्नति का नया अध्याय प्रारम्भ हुआ। राष्ट्रीय सरकार ने दे"ा की सर्वांगीण उन्नति के लिए पंचवर्षीय योजनाएँ बनाई। प्रथम पंचवर्षीय योजना काल में सरकार ने 101 करोड़ रूपये की रा"ि उद्योगों में

विनियोजित की तथा रासायनिक खाद, इंजन रेल के डिब्बे, पेनीसिलिन, डी0डी0टी0 तथा न्यूज प्रिंट बनाने के कारखानों की स्थापना की। दे”ा के पूँजीपतियों ने भी इस काल में 340 करोड़ रूपये की पूँजी लगाकर अनेक नये कारखानें खोले तथा पुराने कारखानों की उत्पादन शक्ति बढ़ाई। द्वितीय पंचवर्षीय योजना का मुख्य उद्दे”य दे”ा की औद्योगिक प्रगति को तीव्रतर करना था।

1-3 vk|kfxd Økfr dk iHkko

औद्योगिक क्रांति का मानव समाज पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा। मानव समाज के इतिहास में दो प्रसिद्ध क्रांतियाँ हुई जिन्होंने मानव इतिहास को सर्वाधिक प्रभावित किया। एक क्रांति उस समय हुई जब उत्तर पाषाण युग में मानव ने ि”ाकार छोड़कर प”ु पालन एवं कृषि का पे”ाा अपनाया, तो दूसरी क्रांति वह है जब आधुनिक युग में कृषि छोड़कर व्यवसाय को प्रधानता दी गई। इस औद्योगिक क्रांति के उत्पादन पद्धति गहरे रूप से प्रभावित हुई। श्रम के क्षेत्र में मानव का स्थान म”ाीन ने ले लिया उत्पादन में मात्रात्मक व गुणात्मक परिवर्तन आया। धन सम्पदा में भारी वृद्धि हुई। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार बढ़ा। औपनिवे”िाक साम्राज्यवाद का विस्तार भी औद्योगिक क्रांति का परिणाम था एवं नये वर्गों का उदय हुआ। इस क्रांति से किसी वर्ग को पूँजी जमा करने और शोषण करने का मौका मिला तो शोषित वर्ग को उस शोषण चक्र से मुक्ति के लिए तरह–तरह के प्रयत्न करने पड़े। फलतः श्रमिक आन्दोलनों का जन्म हुआ। इतना ही नहीं इस क्रांति ने सांस्कृतिक रूपांतरण को गति प्रदान की तथा समाज में एक मनोवैज्ञानिक परिवर्तन आया। प्राकृतिक संसाधनों का अधिकतम दोहन एवं प्रयोग तथा प्रकृति पर अधिकार करने की योग्यता से मानव का आत्मवि”वास ऊँचा हुआ। औद्योगिक क्रांति के परिणाम और प्रभावों को बखूबी व्यक्त किया गया है।

कारखानों में वस्तुओं का उत्पादन शीघ्र एवं अधिक कु”ालता से भारी मात्रा में होने लगा। इन औद्योगिक उत्पादों को आंतरिक और विदे”ाी बाजारों में पहुँचाने के लिए व्यापारिक गतिविधियाँ तेज हुई जिससे औद्योगिक दे”ा धनी बनने लगा।

इंग्लैण्ड की अर्थव्यवस्था उद्योग प्रधान हो गई। वहाँ औद्योगिक पूँजीवाद का जन्म हुआ। औद्योगिक एवं व्यापारिक निगमों का विस्तार हुआ। इन निगमों ने अपना विस्तार करने के लिए अपनी पूँजी की प्रतिभूतियाँ बेचना आरम्भ किया। इस तरह उत्पादन की असाधारण वृद्धि ने नई आर्थिक पद्धति को जन्म दिया।

बदलते आर्थिक परिदृ"य गाँवों के कुटीर उद्योगों का पतन हुआ। फलतः रोजगार की तला"ा में लोग शहरों की ओर भागने लगें क्योंकि अब बड़े–बड़े उद्योग जहाँ स्थापित हुए थे वही रोजगार की संभावनाएँ थी। स्वाभाविक तौर पर शहरीकरण की प्रक्रिया तीव्र हो गई। नए शहर अधिकतर उन औद्योगिक केन्द्रों के आस–पास विकसित हुए जो लोहे, कोयले और पानी की व्यापक उपलब्धता वाले स्थानों के निकट थे। नगरों का उदय व्यापारिक केन्द्र के रूप में उत्पादन केन्द्र, बंदरगाह नगरों के रूप में हुआ। शहरीकरण की प्रक्रिया केवल इंग्लैण्ड तक सीमित नहीं रही बल्कि जर्मनी, आस्ट्रेलिया, इटली आदि में भी विस्तारित हुई। इस तरह शहर अर्थव्यवस्था के आधार बनने लगें।

औद्योगिक क्रांति से आर्थिक असंतुलन राष्ट्रीय समस्या के रूप में सामने आया। विकसित और पिछड़े दे"ाों के मध्य आर्थिक असमानता की खाई गहरी होती चली गई। औद्योगीकृत राष्ट्र अविकसित राष्ट्रों का खुलकर शोषण करने लगे। आर्थिक साम्राज्यवाद का युग आरम्भ हुआ। इससे अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर औपनिवे"िाक साम्राज्यवादी व्यवस्था मजबूत हुई। औद्योगिक क्रांति के बाद राष्ट्रों की आपसी निर्भरता बहुत अधिक बढ़ गई जिससे एक दे"ा में घटने वाली घटना, दूसरे दे"ा को सीधे प्रभावित करने लगी। फलतः अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक तेजी एवं मंदी का युग आरम्भ हुआ।

औद्योगिक क्रांति का नकारात्मक परिणाम था कुटीर उद्योगों का विना"ा। यह नकारात्मक औद्योगिक परिणाम औद्योगिक दे"ाों पर नही बल्कि औपनिवे"िाक दे"ाों पर पड़ा। दरअसल औद्योगिक दे"ाों में कुटीर उद्योगों के विना"ा से बेरोजगार हुए

लोगों को नवीन उद्योगों के रूप में एक विकल्प प्राप्त हो गया। जबकि उपनिवे"ाों में इस वैकल्पिक रोजगार की व्यवस्था नही हो पाई।

औद्योगिक क्रांति ने जनसंख्या वृद्धि को संभव बनाया। वस्तुतः कृषि क्षेत्र में तकनीकि के प्रयोग ने खाद्यान्न उत्पादन बढ़ाकर भोजन आव"यकता की पूर्ति की। दूसरी तरफ यातायात के उन्नत साधनों के माध्यम से माँग के क्षेत्रों में खाद्यान्न उत्पादन बढ़ाकर भोजन आव"यकता की पूर्ति की। दूसरी तरफ यातायात के उन्नत साधनों के माध्यम से माँग के क्षेत्रों में खाद्यान्न की पूर्ति करना संभव हुआ। बेहतर पोषण एवं विकसित स्वास्थ्य एवं औषधि विज्ञान के कारण नवजात ि"ा"ाु एवं जीवन की औसत आयु में वृद्धि हुई।

औद्योगिक क्रांति में मुख्य रूप से तीन नए वर्गों को जन्म दिया। प्रथम पूँजीवादी वर्ग, जिसमें व्यापारी और पूँजीपति सम्मिलित थे। द्वितीय मध्यम वर्ग, कारखानों के निरीक्षक, दलाल, ठेकेदार, इंजिनियर, वैज्ञानिक आदि शामिल थे। तीसरा श्रमिक वर्ग, जो अपने श्रम और कौ"ाल से उत्पादन करते थे।

विभिन्न वर्गों के उदय ने सामाजिक असंतुलन की स्थिति पैदा कर दी। पूँजीपति वर्ग आर्थिक क्षेत्र में नहीं बल्कि राजनीतिक क्षेत्र में भी प्रभावी हो गया। ब्रिटि"ा संसद में उनका वर्चस्व था। अपने हितो के लिए यह वर्ग श्रमिकों को साथ लेकर उच्च वर्ग को नियंत्रित करने का प्रयास करता था। 1832 के एक्ट के तहत बुर्जुआ वर्ग की समृद्धि का मार्ग प्र"ाास्त हुआ। वस्तुतः 19वीं सदी तो बुर्जुआ युग के नाम से जानी जाती है।

श्रमिक वर्ग अब कारखानों के काम करने लगा। इसे कम वेतन पर प्रायः पन्द्रह से बीस घंटे काम करना पड़ता था। फलतः उसका शोषण बढ़ा। कारखानों में प्रका"ा, वायु और स्वच्छता का अभाव रहता था। उनका जीवन आवास, ि"ाक्षा, भोजन आदि का उचित प्रबन्ध नहीं होने के कारण नरकीय होने लगा। परिणाम स्वरूप श्रमिकों में असंतोष आ गया और श्रमिक आन्दोलन का जन्म हुआ। उन आन्दोलनों से सामाजिक तनाव भी पैदा हुआ।

परम्परागत भावानात्मक मानवीय सम्बन्धों का स्थान आर्थिक सम्बन्धों ने ले लिया। जिन श्रमिकों के बल पर उद्योगपति समृद्धि हो रहे थे। उनसे मालिक न तो परिचित था और न ही परिचित होना चाहता था। उद्योगों में प्रयुक्त होने वाली म"ीन और तकनीकी ने मानव की भी म"ीन का हिस्सा बना दिया। मानव–मानव का सम्बन्ध टूट गया और यह उनके म"ीन से जुड़ गया। फलतः संवेदन"ीलता प्रभावित हुई। वर्तमान की सर्वप्रमुख समस्या के सामने आने लगी।

औद्योगिक क्रांति के फल स्वरूप संयुक्त परिवार का आघात पहुँचा। वस्तुतः कृषि अर्थव्यवस्था में संयुक्त परिवार प्रथा का महत्व था। किन्तु औद्योगीकरण के बाद व्यक्ति का महत्व बढ़ने लगा और व्यक्ति अब घर से दूर जाकर कारखानों में काम करने लगा। जहाँ उसे परिवार रखने की सुविधा भी प्राप्त नही थी। इस तरह एक परिवार को बढ़ावा मिला।

नये औद्योगिक समाज में नैतिक मूल्यों में गिरावट आई भौतिक प्रगति से शराब और जुए का प्रचार बढ़ा। अधिक समय तक काम करने के बाद थकावट मिटाने के लिए श्रमिकों में न"ो का चलन बढ़ा। प्रेमचन्द्र के गोदान में इस स्थिति का चित्रण मिलता है। इतना ही नही औद्योगिक केन्द्रों पर वे"या वृत्ति फैलने लगी। उपभोक्तावादी प्रकृति बढ़ने से भ्रष्टाचार एवं अपराधों को बढ़ावा मिला।

शहरों में जनसंख्या के अत्यधिक वृद्धि के कारण निचले तबके को आवास, भोजन, पेयजल आदि का अभाव भुगतना पड़ा। अत्यधिक जनसंख्या के कारण औद्योगिक केन्द्रों के आस–पास कच्ची बस्तियों का विस्तार होने लगा। जहाँ गंदगी रहती थी। फलस्वरूप महामारी का प्रकोप भी होने लगा और श्रमिक वर्ग का स्वास्थ्य प्रभावित होने लगा।

औद्योगिक क्रांति से पुराने रहन–सहन के तरीकों, वे"ा–भूषा, रीति–रिवाज, धार्मिक मान्यता, कला–साहित्य, मनोरंजन, के साधनों में परिवर्तन हुआ। परम्परागत ि"ाक्षा पद्धति के स्थान पर रोजगारपरक तकनीकि एवं प्रबन्धकीय ि"ाक्षा का विकास हुआ। औद्योगिक क्रांति ने बालश्रम को बढ़ावा दिया और बच्चों से उनका बचपन

छीन लिया। इस समस्या से आज सारा वि”व जूझ रहा है। औद्योगिक क्रांति ने कामगारों की आव”यकता को जन्म दिया जो केवल पुरूषों से पूरा नहीं हो पा रहा था। अतः स्त्री भागीदारी कामगार वर्ग में हुई। अब स्त्रियों की ओर से भी अधिकारों की माँगे उठने लगी। उनमें चेतना जागृत हुई।

1-4 vkS|kfxd fodkl dk i;kZoj.k ij izHkko

मनुष्य इस सृष्टि की सर्वश्रेष्ठ रचना है। खाना, बैठना, रहना, प्रक्रियाएँ तो सभी जीव करते है परन्तु मनुष्य में चिंतन क्षमता आ जाने से वह वि”ाष्ट हो गया है। अपनी बुद्धि और विचार”ीलता से वह अपनी समस्त कामनाओं को साकार रूप दे सकता है। मनुष्य की इसी सोच व विचारधारा ने उसे पंख प्रदान कर दिए है। वह निरंतर नवीन अनुसंधान व आविष्कार करता रहा है। सफलताओं ने उसके साहस व उत्साह को चौगुना कर दिया है। आज वैज्ञानिक प्रगति के कारण औद्योगीकरण की प्रक्रिया इतनी तीव्र हो गई है कि उसे वातावरणीय सामंजस्य बनाए रखने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। बढ़ते औद्योगीकरण से वातावरण में प्रदूषण की मात्रा इतनी बढ़ गई है कि पर्यावरण के संतुलन का खतरा मँडराने लगा है। औद्योगीकरण विकास का सबसे अधिक प्रभाव महानगरों एवं अन्य घनी आबादी वाले शहरों में देखने को मिलता है। शहरों व महानगरों में जनसंख्या घनत्व अधिक होने से मोटर, गाड़ियों व दुपहिया वाहनों आदि की संख्या में बहुत तेजी से वृद्धि हुई है। ये वाहन अपने धुएँ में कार्बन मोनो आक्साइड जैसी विषैली गैस छोड़ते है जो हमारी श्वास प्रक्रियाँ में बाधक बनती है तथा साथ ही अनेक बीमारियों को जन्म देती है। वायु प्रदूषण फैलने से वायु मंडल में आक्सीजन की मात्रा कम होती जा रही है। एक सर्वेक्षण के अनुसार जापान की राजधानी टोक्यो में आज स्थिति यह है कि वहाँ आक्सीजन का अनुपात इतना अधिक प्रभावित हुआ है कि जगह–जगह आक्सीजन के सिलिंडर लगाए गए है जिससे आव”यकता पड़ने पर मनुष्य आक्सीजन ले सकता है।

वि"व के दूसरे सबसे अधिक प्रदूषित शहर लंदन में प्रदूषण की मात्रा इतनी अधिक है कि यदि यातायात संचालक को चार घंटे लगातार यातायात संचालन करना पड़े तो वह 100 से भी अधिक सिगरेट के तुल्य प्रदूषित वायु ग्रहण कर लेता है। हमारे दे"ा के महानगरों की स्थिति भी अधिक अच्छी नहीं है। दे"ा की राजधानी दिल्ली की यह स्थिति है कि लोग यहाँ प्रदूषित वायु और जल की उपलब्धता के मध्य ही जीने के लिए विव"ा है।

यातायात के साधनों के अतिरिक्त बड़े–बड़े कारखाने, मिले आदि न केवल वायु प्रदूषण को बढ़ाते है अपितु जल प्रदूषण तथा ध्वनि प्रदूषण आदि के लिए भी उत्तरदायी है। कल–कारखानों से निकला रासायनिक अव"ोष पानी के साथ बहकर नदियों में प्रक्षेपित हो जाता है जिससे स्वच्छ जल प्रदूषित हो जाता है। जिसके फलस्वरूप मनुष्य को पीने के लिए साफ पानी नहीं मिल पाता है तथा साथ ही जलीय–जन्तुओं का अस्तित्व भी खतरे में पड़ जाता है। औद्योगिक विकास के चलते लोगों का गाँवों से शहर की ओर पलायन जारी है जिससे शहरों का घनत्व बढ़ता ही चला जा रहा है। इन परिस्थितियों में नगरों व महानगरों के विस्तार की आव"यकता पड़ती है। लोगों को मकान प्रदान करने व उनकी अन्य आव"यकताओं की पूर्ति के लिए बड़ी मात्रा में वृक्षों का कटाव होता है।

कच्चे माल की आपूर्ति के लिए मनुष्य बड़े–बड़े जंगलों का सफाया कर रहा है जिससे वायु प्रदूषण को बढ़ावा मिल रहा है। इसके साथ ही वन्य जीव–जन्तुओं के संरक्षण की समस्या भी उत्पन्न होती जा रही है। जन्तुओं की अनेक प्रजातियाँ मनुष्य की स्वार्थ–लोलुपता व औद्योगीकरण की भेंट चढ़ गई तथा कई और लूप्त होने के कगार पर है। निःसंदेह जो औद्योगीकरण विकास हुए है या जो औद्योगीकरण प्रगति मनुष्य ने विगत वर्षों में की है उसे न तो रोका जा सकता है और न ही रोकने की आव"यकता है क्योंकि औद्योगीकरण मनुष्य की आव"यकता है। आव"यकता इस बात की है कि हम अपनी औद्योगिक प्रगति एवं प्रकृति के साथ तालमेल स्थापित करें। यदि प्रकृति और हमारे औद्योगकीरण के बीच सामजस्य स्थापित नही होता है तो हमारी यह प्रगति व्यर्थ है क्योंकि प्राकृतिक असंतुलन हमे

विना”ा की ओर ले जायेगा। सम्पूर्ण मानव सभ्यता खतरे में पड़ जायेगी। अतः अपने औद्योगिक विकास को नियंत्रण में रखना होगा। दूसरे शब्दों में हमें अपनी म”ाीनों व उत्पाद को इस प्रकार नियंत्रित करना होगा कि वे हमारे सहज जीवन को प्रमाणित न करें।

पर्यावरण को सुरक्षित व संतुलित रखने के लिए आव”यक है कि विषाक्त गैसों रसायनों व अन्य हानिकारक अव”ाेष उत्पन्न करने वाले कारखानों को नगर से दूर खुले स्थानों पर विस्थापित करें। नगरों के गंदे जल को नदियों में प्रक्षेपित न करें। वृक्षारोपण पर वि”ोष ध्यान दे तथा इसकी जागरूकता हेतु जन जागृति अभियान चलाएँ। वि”व स्तर पर परमाणु हथियारों का बहिष्कार हो ताकि युद्ध की विभिषिका से मानव जाति को बचाया जा सके। हालाँकि परमाणु अस्त्रों के बगैर की आधुनिक युद्ध ऐसे खतरनाक हथियारों से लड़ रहे हैं जिनसे वातावरण में भारी प्रदूषण फैलता है। रेडियोएक्टिव तत्वों की भरमार हो जाती है। जिनसे पूरा सजीव जगत प्रभावित होता है। पेट्रोलियम पदार्थों से निकला धुँआ वर्तमान युग की बड़ी समस्या है। इन सभी समस्याओं का निदान मानव अपनी बुद्धि का प्रयोग करके कर सकता है।

2- मनुष्य का मशीनीकरण

जब रेडियो, टी0वी0, सिनेमा, कम्प्यूटर आदि दृ”य श्रव्य के मनोरंजन के साधन नहीं थे आदमी के पास मनोरंजन शब्द के क्या अर्थ थे? यह प्र”न आज के प्रत्येक मनुष्य को सोचना चाहिए। क्योंकि इसी प्र”न के उत्तर में मनुष्य के सामने आ खड़ी हुई कई समस्याओं का हल है। आज के आदमी के पास चमत्कारी साधन मोबाइल है फोन है। वह रात–दिन अपने सम्बन्धियों के संपर्क में रहता है। पड़ोसी से भी वह सेलफोन पर ही बात कर पाता है यहाँ तक कि अपने परिवार से भी बात करने के लिए इसका उपयोग करता है।

उस जमाने में आदमी के पास सुबह उठकर रेडियो, टी0वी0, आई पाड का बटन अनकिट या इंटरनेट पर बैठ जाने के विकल्प नहीं थे। आदमी के पास भरपुर

समय था। आलसी से आलसी आदमी के पास भी सुबह उठकर सैर कसरत, दातुन–स्नान, शौच के बहाने दूर निकल जाने की नैसर्गिक प्रेरणाएँ थी उसके बाद कामधंधे पर लग जाने में भी आदमी दिन भर अपनी ही तरह की अन्य आदमजात प्राणियों के सम्पर्क में रहता था। शाम को भी गलियो, चौराहों, बाजारों, दुकानों पर मेल मुलाकातों के दौर चलते थे।

आज का आदमी देर रात तक कामधंधे या नौकरी से लौटता है, सुबह देर से उठता है और फिर सारा दिन वाहनो, कम्प्यूटरों, रेडियो, टी0वी0, मोबाइल फोन, के कृत्रिम संपर्कों में उलझा रहता है। कोि"ा करके जिम वगैरह जाकर सेहत बनाने की कोि"ा करता है तो भी सांस तो इसी वातावरण में लेनी है। जितना धुआँ उसकी कार फेंकती है उतना ही धुआँ प्रतियोगिता में उसके पड़ोसियों के वाहन इस तरह आज के मनुष्य ने अपने लिए नर्क खुद ही गढ़ रखा है। उस समय की कल्पना कीजिए जब आदमी के घर में माँ–बाप, भाई–बहन के रि"ते थे और दो–चार बाल–बच्चे। आवागमन के साधन के रूप में प"ाुओं द्वारा जाँचे जाने वाले वाहन थे। आदमी सुबह उठता और यदि उसका कही आने जाने का इरादा है तो उसे अपने गधे, घोड़े या बैल की सेहत, हाल–चाल, पूछना जानना, बहुत जरूरी थे। क्योंकि उसके बिना किसी लम्बी यात्रा की कल्पना करना फिजुल था। इस प्रकार विभिन्न प्रकार के सरोकारों से सुअर, गाय, घोड़े, गधे, कुत्ते, चिड़ियाँ, कौवे, गिद्ध आदि की देख–रेख अपने आप ही हो जाया करती थी। ये नगर निगम के संभालने के चीज नहीं थे। अब दूसरी बात ये कि क्या आपने इतिहास में कोई ऐसी घटना पढ़ी है – जब अनायास किसी राहगीर की मौत घोड़ा, बैल या गधे से चलने वाली गाड़ी से कुचल जाने से हो गई हो। जबकि आज दे"ा में प्रत्येक दिन हर घंटे, सैकड़ों वाहन दुर्घटनाओं में हजारों लोग काल कलविंत हो जाते हैं। सुबह आदमी घर से निकलता है तो शाम को तय नहीं होता कि वह घर सकु"ाल पहुँच ही जायेगा। और इसी को हम आदमी की तरक्की कहते है। आज के आद"ाि जीवन जीने वाले आदमी की यथार्थ स्थिति देखिए। देर रात गए वह घर लौटता है। रात एसी, पंखे, कुलर या हीटर की हवा में सोता है, देर सुबह उठकर वह म"ाीन के अलार्म से जागता है, जिम जाता है, यानी म"ाीनों से कार्य व्यवहार। घर में ड्राइंग

रूम, वेडरूम, बाथरूम, रसोई, छत, आँगन, लान, सब जगह यहाँ—वहाँ खड़े बिजली से चलने वाले उपकरणों से उसका वास्ता पड़ता है। आदमी का काम होता है बटन दबाना। बाकी सब चीजें अपने आप काम करती है। इस तरह इन उपकरणों में आदमी से उसके आदमजात, प्राणियों के सम्बन्ध छीन लिए हैं। या कहे कि उनका स्थान इन म"ीनों ने ले लिया है। अब आदमजात प्राणी इस आदमी को और ये आदमी उनको हर क्षण प्रभावित करते थे। लेकिन ये म"ीनें इन्हे आदमी क्या प्रभावित करेगा। इनसे ही आदमी प्रभावित रहता है। इन म"ीनों का प्रभाव ये होता है कि उसके शरीर के ही कुछ अंग इन म"ीनों के पूर्जों जैसे काम करने लगते है। यानी शरीर को पंखे, गीजर, टोस्टर, मिक्सर ग्राइन्डर, ए0सी0, कूलर, हीटर, हीट आयरन, कम्प्यूटर, फोन इन सबकी जरूरत अपरिहार्य अंगों जैसे ही पड़ने लगी है इनमें से यदि कुछ भी खराब होता है तो आदमी के शरीर की हालत तुरन्त पतली हो जाती है। आदमी की बेचैनी देखते बनती है, ऐसा लगने लगता है कि आदमी के प्राण तो इन म"ीनों में है। जबकि पिछले हजारों साल आदमजात ने इन म"ीनों की कल्पना से ही अजनबी रहते हुए बिताए है। ये म"ीनें तो उस जिन्न की तरह हो गई है जिन्हें पैदा होने के बाद कुछ ना कुछ करना ही है और आदमी इस दुष्चक्र में फँस गया है कि इनके लिए कोई ना कोई काम तला"ा करके रखे वर्ना ये म"ीनें उसे ही निगल जायेगी।

3- foKkuokn

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में भारतीय भाषाओं में विज्ञान का जिस तरह लोक प्रियकरण हो रहा था उसे वर्ना कुल राइजे"ान की संज्ञा प्रदान की गई। चूँकि दे"ा अंग्रेजी शासन के अधीन था अतः लेखकों में राष्ट्रीय भावना आन्दोलित हो रही थी। बंगाल में रामेन्द्र सुन्दर त्रिवेदी, दिल्ली में मास्टर रामचन्द्र तथा जका उल्ला और बनारस में लक्ष्मी शंकर मिश्र अपने—अपने लेखन द्वारा अपने—अपने क्षेत्रों में वैज्ञानिक अभिरूचि का विस्तार करने में लगे थे। उन्हें अंग्रेजी से परहेज नही था बल्कि हम यह कह सकते है कि उन्होंने आव"यकतानुसार अंग्रेजी से अपनी—अपनी भाषाओं में अनुवाद करके और स्वयं मौलिक लेखन करके दे"ा में विज्ञान लेखन की

नींव डाली। बीसवीं सदी के आरम्भ काल तक सैकड़ों पुस्तकें लिखी जा चुकी थी और बीसवीं सदी के पूर्वाद्ध तक इस संख्या में गुणात्मक वृद्धि होती रही। सन् 1970 के प"चात् हिन्दी में पर्यावरण, कम्प्यूटर तथा अन्तरिक्ष नवीन विषयों पर प्रचुर मात्रा में लेखन होता रहा। सागर विज्ञान और अंटार्कटिका अभियान भी अछुते नही रहे।

औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप पर्यावरण का जिस तेजी से विघटन हुआ उसकी चिंता सर्वप्रथम 1972 के स्टाक होम सम्मेलन में प्रकट की गई। पर्यावरण से जुड़ा हुआ विज्ञान परिस्थितिकी हो इसके अन्तर्गत पर्यावरण प्रदूषण, जैव विविधता पर पर्याप्त लेखन हुआ जिससे जनसामान्य में पर्यावरण तथा प्रकृति के प्रति जागरूकता उत्पन्न हुई और जल प्रदूषण, वायु प्रदुषण, ध्वनि प्रदूषण, मृदा प्रदूषण के साथ ही मानसिक प्रदूषण जैसी समस्याओं पर गम्भीरता से विचार हुआ। ओजोन परत की महत्ता, अभयारण्य की आव"यकता तथा जलवायु परिवर्तन ग्लोबल वार्मिग पर भी पर्याप्त साहित्य प्रका"। में आया। नैनोटेक्नोलाजी तथा जीनोमिकी जैसी नवीनतम विषयों पर भी लेखन हो रहा है।

वैसे तो कम्प्यूटर युग का सूत्रपात 1984 में हुआ किन्तु हिन्दी में कम्प्यूटर की पहली पुस्तक 1979 में रमे"। वर्मा ने लिख दी थी। जब स्कूलों, कालेजों तथा वि"वविद्यालयों में कम्प्यूटर ि"ाक्षा प्रारम्भ हुई तो अनेक पाठय पुस्तके भी लिखी गई। जून 2001 में 'कम्प्यूटर विविधा' नामक पत्रिका भी प्रका"ात हो रही है। इसके साथ ही सूचना प्रौद्योगिकी का पल्लवन हुआ। सागरों से खनिजों के दोहन और समुद्र से ऊर्जा प्राप्त करने की संभावना को लेकर काफी साहित्य प्रका"। में आया है। राकेटों, प्रक्षेपात्रों तथा कृत्रिम उपग्रहों को लेकर भी हिन्दी में प्रचुर लेखन हुआ है। हिन्दी में विज्ञान के प्रचार–प्रसार के लिए विज्ञान परिषद प्रयाग ने सन् 1958 से एक त्रैमासिक विज्ञान विषयक शोध–पत्रिका 'विज्ञान परिषद अनुसंधान पत्रिका' का प्रका"ान शुरू किया जो विगत 57 वर्षो से निरंतर प्रका"ात हो रही है। यह राष्ट्र भाषा हिन्दी में प्रका"ात होने वाली एक मात्र पत्रिका है जिसका दे"।–विदे"। में

स्वागत हुआ है। उसमें प्रका"ित शोध पत्रों की संक्षिप्तियाँ गण्यमान्य एजेन्सियों द्वारा प्रका"ित की जाती है।

4- vk/kfud dfork e i ;koj.k fpru dh Hkfedk

कामायनी एक ऐसा महाकाव्य है जो चिंतन के नवीन आयामों को भी उद्घाटित करता रहा है। और दूसरी ओर दा"ानिक–धार्मिक, भावभूमियों को काव्य के भावबोध पर व्यंजित करने का प्रयत्न करता रहा। कामायनी का अनु"ाीलन, मनोविज्ञान, मिथक, द"ान और की दृष्टि से मूल्यांकन हो चुका है अब कामायनी का मूल्यांकन विज्ञान और पर्यावरणीय परिप्रेक्ष्य में करने आव"यकता है।

आज का युग वैज्ञानिक युग है और वैज्ञानिक प्रस्थापनाओं में मानवीय चिंतन को अनेक नवीन दि"ााएँ प्रदान की है जिसमें आज के परिवे"ा में पर्यावरण समकालीन दौर का प्रमुख विम"ा के रूप में सामने आया है। जिस प्रकार दा"ानिक और धार्मिक प्रस्थापनाओं को काव्यात्मक भावबोध में ढाला जा सकता है उसी प्रकार वैज्ञानिक प्रस्थापनाओं के दुष्परिणाम से उत्पन्न पर्यावरण असंतुलन को काव्य की भावभूमि पर व्यंजित किया जा सकता है। शर्त केवल इतनी है कि वैज्ञानिक–चिंतन काव्य के क्षेत्र में आकर कवि की सर्जनात्मकता में इस प्रकार सम्मिलित हो जाए कि विज्ञान को तर्क साहित्य के तर्क में समाहित हो जाय। मानवीय धरातल पर वैज्ञानिक रचना का मनोभाव तभी श्रेयस्कर होता है जब वह मानव जीवन को मूल्यवान बनाने वाले अन्य प्रमुख मनोभावों को कुंठित नहीं कर देता, किन्तु दूसरी ओर अन्य मनोभावों की अभिव्यक्ति को रोकने की स्वतंत्रता उसे प्राप्त हो जाती है। तब वह अत्याचारी या आतंकवादी का रूप ग्रहण कर लेता है। मनु के अहंवादी व्यक्तित्व के द्वारा यह तथ्य प्रकट होता है और इड़ा पर उसका अतिचार एक ऐसे मनोभाव को सामने रखता है जो आतंकवादी अहं को अभिव्यक्त करता है। सारस्वत प्रदे"ा का समस्त द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी संघर्ष इसी का फल है जो आधुनिक वैज्ञानिक तकनीकी का प्रभाव है।

कामायनी में हमे अनेक ऐसी काव्यात्मक अभिव्यक्तियाँ प्राप्त होती है जो वैज्ञानिक प्रस्थापनाओं के दुष्परिणाम के पर्यावरणीय स्वरूप को व्यंजित करती है। कामायनी का यह चिंतन परक मनोभाव, अपने में एक महत्वपूर्ण भाव है। जो शक्ति के मनोभावों से सर्वथा भिन्न है। जिसका संघर्ष कामायनी के सर्गों में प्राप्त होता है इसीलिए कामायनी के अनेक सर्गों में सृष्टि–रहस्य, परमाणु–रहस्य तथा विकार का विना"ाकारी स्वरूप मिलता है। कामायनी का 'ि"ावद"र्ान' इसी स्थिति का सूचक है। कामायनी में ि"ाव का 'लास रास', 'तांडव–नृत्यं' कही न कही इसी ओर संकेत करते है। व्यक्ति एक चेतन–संत्ता दे जो सृष्टि का सबसे विकसित जीव है अथवा वह विकास क्रम का सबसे वि"ाष्टिकृत प्राणी है। यही एक ऐसा प्राणी है जो मस्तिष्क और विवके से युक्त है। अतः व्यक्ति की शक्ति यही चेतना है जिसके द्वारा यह आनन्द की क्रमिक भूमियों या स्तरों का साक्षात्कार करता है।

> चिर मिलित प्रकृति से पुलकित
> वह चेतन पुरूष पुरातन
> निज शक्ति तरंगायित था
> आनंद अंबुनि शोभन।[1]

मनुष्य अपनी मानवेत्तर प्रवृत्तियों से जो उसे विरासत के रूप में अपने पूर्वजों से प्राप्त है उनसे वह पूर्णरूप से छुटकारा नहीं पा सकता है, किन्तु उसका उन्नयन अव"य कर सकता है चूँकि मनुष्य संघर्ष"ाील प्राणी है। इसलिए उसके संघर्षीय विकास का दुष्परिणाम भी उसे स्वयं झेलना पड़ता है। प्रसाद ने लिखा है –

> मनुष्य आकार चेतना का है विकसित
> एक वि"व अपने आवरणों में ही निर्मित।[2]

कामायनी का यह मानवीय चेतना का विकास ही कामायनी का कथ्य है और कवि की सर्जनात्मकता इसी चेतना के आयामों का उद्घाटन करती है। कामायनी में ज्ञान के शक्ति रूप को जिससे वर्ग संघर्ष, द्वन्द, अहंवादी प्रवृत्ति एवं अतिवादी

---
[1] आनन्द सर्ग
[2] सर्ग

प्रवृत्तियाँ अधिक है, प्रसाद ने उन्हें नकारा है और उसके स्थान पर मानवीय संदर्भ की शुभ भूमिका को शैवागमों द"र्ान से प्रभावित हो, उजागर करने का प्रयत्न किया है। इसी से कवि ने मानवीय 'जड़ता' को चेतना युक्त करने की बात कही है –

तुम जड़ता को चैतन्य करो
विज्ञान सहज साधन उपाय।[3]

ज्ञान एक सर्जनात्मक प्रक्रिया है जो मानवीय ज्ञान को प्रत्येक क्षेत्र, चाहे वह धर्म और द"र्ान का क्षेत्र हो अथवा विज्ञान और साहित्य का सभी क्षेत्र सर्जनात्मक हैं। कामायनी के भावबोध में वैज्ञानिक परिदृष्टि का एक महत्वपूर्ण स्थान है।

सृष्टि रचना की प्रस्थापनायें कामायनी की भावभूमि में यत्र–तत्र प्राप्त होती है। वैज्ञानिक द्वारा यह मान्य है कि समस्त सृष्टि (ग्रह, नक्षत्र, नीहारिकाएँ) हाइड्रोजन धातु रूप में द्रव्य द"ाा में प्राप्त होती है जिसका तापमान बहुत अधिक होता है। जो सूर्य का अन्दरूनी तापमान है। यही पिण्ड क्रम"ाः ठंडा होने लगा और इसी से क्रमागत रूप से ग्रहों तथा नक्षत्रों का सृजन हुआ। इस पदार्थ को 'पृष्ठ भूमि–पदार्थ' कहा जाता है। काव्यात्मक भाषा में यह एक 'विराट–आलोड़न' है जिसमें ग्रह और तारागण बुदबुद के समान लगते है। प्रसाद की यह कल्पना वैज्ञानिक अन्वेषण पर भी आश्रित कही जा सकती है –

कोटि–कोटि नक्षत्र शून्य के महा विवर में
लास रास कर रहे लटकते हुए अधर में।[4]

परमाणु में आकर्षण शक्ति होती है और यह आकर्षण, विद्युत से परिवेष्टित होने के कारण 'विद्युत्कण' की धारणा को स्पष्ट करता है यदि इन परमाणुओं में आकर्षण न हो तो वे गतिहीन और भार स्वरूप ही रहते है। प्रसाद ने इस तथ्य को भी स्वीकार किया है।

[3] इड़ा सर्ग
[4] संघर्ष सर्ग

आकर्षण विहीन विद्युत्कण
बने भारवाही थे भृत्य।[5]

प्रसाद की ब्रह्मांडीय धारणा में परमाणु महत्वपूर्ण है। परमाणु की यह गति"ीलता, आव"यक भी है। प्रत्येक परमाणु दूसरे के प्रति आकर्षित ही नहीं होता, वरन उस आकर्षण में सृष्टि क्रम न जाने कितनी संभावनाएँ समाई रहती है। कामायनी की सर्जनात्मकता में जहाँ इन तत्वों का प्र"न है, वह महाकाव्य के भाव बोध में द्रष्टव्य है। कामायनी में गति की धारणा परिवर्तन वि"व के उन्मुक्त नर्तन और अनंत चेतन की उन्मद गति के रूपों में सामने आती है।

यह नर्तन उन्मुक्त वि"व का स्पन्दन द्रुतकर।
गतिमय होता चला जा रहा अपने पथ पर
अथवा
यह अनंत चेतन नचता है उन्माद गति से।[6]

कामायनी का 'कथ्य' एक वैज्ञानिक दा"िनिक परिदृष्टि को रेखांकित करता है, काम सर्ग में परमाणु उपर्युक्त तीनों तत्वों को रखकर प्रसाद ने आइंस्टाइन के परमाणु रहस्य को सर्जनात्मक प्रक्रिया में डालने का सफल प्रयत्न किया है।

अणुओं को यह विश्राम कहाँ
है कृतिमय वेग भरा कितना,
अविराम नाचता कंपन है
उल्लास सजीव हुआ कितना।[7]

प्रसाद ने वैज्ञानिक प्रस्थापनाओं को मानव सापेक्ष रूप में देखा है और शक्ति के विद्युत कणों को मानवता के कल्याण हेतु नियोजित करने की कामना की है। यही बात विकासवादी सिद्धान्त में प्रतिपादित अस्तित्व हेतु संघर्ष और स्पर्द्धा में बल"ाली की विजय की प्रस्थापना प्रसाद को मान्य है क्योंकि इड़ा और श्रद्धा सर्गों में स्पर्द्धा और संघर्ष के इसी रूप को प्रस्तुत किया गया है और वे संघर्ष और द्वन्द

[5] चिंता सर्ग
[6] संघर्ष सर्ग श्रद्धा
[7] काम सर्ग

के धरातल पर अविर्भूत स्पर्द्धा को महत्व देते है पर शक्तिवान की विजय उसी समय मानी जायेगी जब वह लोक कल्याण सापेक्ष हो –

स्पर्द्धा में जो उत्तम ठहरे, वे रह जावें।
संसृति का कल्याण करें, शुभ मार्ग बतावे।[8]

वैज्ञानिक चिंतन ने या तो पारम्परिक मूल्यों को पुनर्विवेचित करने का प्रयास किया अथवा उन्हें पूर्ण रूप से बहिष्कृत किया है। आत्मा, सत्य, ई"वर सौन्दर्यबोध, नैतिकता के प्रति विज्ञान द"ान ने जो नवीन सन्दर्भ दिए है उनके प्रति चाहे वि"वास न करें, पर इतना अव"य है कि उनका प्रभाव व्यक्ति, समाज तथा आध्यात्मिक–जगत तक पड़ा है। आधुनिक युग में विज्ञान का प्रभाव या वैज्ञानिक उपलब्धियों का प्रभाव कविताओं में व्यक्त हुआ है। इसी सन्दर्भ में सुमित्रानंदन पंत ने कहा है –

सक्रिय आज परिस्थितियों से रूद्ध चेतना
बहिदृष्टि विज्ञानों से नव बल संचय कर
बदल रहा जीवन यथार्थ, मानस–पदार्थ अब
नव मानव–मूल्यों से कुसमित सामाजिकता।[9]

विज्ञान–द"ान की आधुनिक प्रगति इस तथ्य की ओर संकेत करती है कि यांत्रिक वि"व की धारणा मुखर हो रही है विज्ञान ही ने यंत्रीकरण किया है। यांत्रिकीकरण का आलम यह हुआ कि पूरा वि"व आज वैज्ञानिक आविष्कारों से उत्पन्न दुष्परिणाम को झेल रहा है। विज्ञान पदार्थ और ऊर्जा के एकत्व की बात करता है इसी बात को रामधारी सिंह दिनकर ने इस प्रकार व्यक्त किया है –

द्वन्द रंच भर, नही कहीं प्रकृति और ई"वर में
द्वन्दों का आभास द्वैतमय मानस की रचना है।[10]

[8] श्रद्धा सर्ग
[9] 'सौवर्ण' सुमित्रानंदन पंत, पृ0 27
[10] उर्व"ी – दिनकर, पृ0 83

आज विज्ञान ने मानव के सामने दो आयाम खोले हैं एक तकनीकी प्रगति का और दूसरा वैचारिक क्रांति का। इन दोनों क्षेत्रों द्वारा विज्ञान जहाँ एक ओर शक्ति का आधार है वही दूसरी ओर वह चिंतन और विचारों का गति"ील क्षेत्र है। आज के युग की सबसे बड़ी समस्या पर्यावरण समस्या है क्योंकि विज्ञान के तकनीकी विकास के कारण प्रकृति का स्वरूप ही बिगड़ गया है। जिसका जिम्मेदार मनुष्य और विज्ञान दोनों ही है। सुमित्रानंदन पंत ने अपनी एक कविता 'भूतद"ान' में इसी तथ्य को रखा है –

> द"ान युग का अंत, अंत विज्ञान का संघर्षण
> अब द"ान विज्ञान सत्य का करता नत्य निरूपण।

कहा जाता है कि जब विज्ञान का अंत होता है तब द"ान का आरम्भ होता है। यांत्रिक वि"व की कल्पना इसी दृष्टि का फल है और कार्य कारण का नियम इसका प्रमाण माना जाता है। मूलतः भौतिकवादी विचारधारा इसी आधार को लेकर विकास प्राप्त कर सकी है। विज्ञान की प्रगति ने इसी दृष्टिकोण का समर्थन किया पर बीसवीं शताब्दी में आकर अनेक वैज्ञानिक चिंतको ने केवल इसी दृष्टिकोण को सत्य नही माना पर उन्होंने वि"व तथा प्रकृति को अधिक गहराई से देखने का प्रयत्न किया। पंत जी ने भौतिकवाद को जो एक मात्र मानव का अंतर–दर्पण कहा है। वह वैज्ञानिक भौतिकवाद के प्रति एक प्र"न चिहन सा है। उसी संदर्भ में कवि ने एक वैयक्तिक प्रतिक्रिया व्यक्त की है –

> करता भौतिकवाद, वस्तु जग का तत्त्वान्वेषण
> भौतिक भव ही एक मात्र मानव का अन्तर दर्पण।[11]

आधुनिक विज्ञान के इतिहास में परमाणु की धारणा तथा संरचना का रूप ठीक उसी प्रकार है जिस प्रकार सौर–मण्डल का है। यह तथ्य भारतीय विचारधारा के उस मत का स्मरण दिलाता है जो 'पिण्ड में ही ब्रहमाण्ड है' की धारणा को रेखांकित करता है। आधुनिक कविता में परमाणु–भावना का रूप नितोत विज्ञान

---

[11] युगवाणी – पंत, पृ0 3

सम्मत भी प्राप्त होता है। मुक्तिबोध में आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टि का अधिक शुद्ध रूप मिलता है। जो परमाणु की संरचना के प्रति सजग होते हुए भी उसे सर्जनात्मक रूप में भावाभिव्यक्ति का माध्यम बनाते है।

> परमाणु केन्द्र के आस–पास
> अपने गोल पथ पर
> घूमते है अंगारे/घूमते है इलेक्ट्रान/निज रि"म पथ पर
> इलेक्ट्रान–रि"मयों में बंधे हुए
> अणुओं का पूँजीभूत/एक महाभूत में।[12]

आधुनिक युग के लिए यह चुनौती है कि वह आणविक शक्ति का कैसा उपयोग करता है। यहाँ पर कवि ने आणविक शक्ति के दुष्प्रभाव की ओर ध्यानाकर्षित किया है। धर्मवीर भारती ने अंधाधुग, काव्य नाटक में जो ब्रह्मास्त्र का प्रभाव मानव जाति पर दिखलाया है वह प्रत्यक्षतः आणविक बम का दुषित प्रभाव है जो पूरे पर्यावरण के असंतुलित कर भावी पीढ़ियों को विकलांग, बौना और कुंठाग्रस्त बना देगा।

> ज्ञात क्या तुम्हे है परिणाम इस ब्रह्मास्त्र का,
> यदि यह लक्ष्य सिद्ध हुआ ओ नर प"ाु।
> तो आगे आनेवाली सदियों तक
> पृथ्वी पर रसमय वनस्पति नहीं होगी
> ि"ा"ाु होगें पैदा विकलांग और कुंठाग्रस्त
> सारी मनुष्य जाती बौनी हो जायेगी।[13]

मुक्तिबोध 'ज्ञान–संवेदन' के कवि है। इसका तात्पर्य यह है कि उन्होंने ज्ञान क्षेत्र को रचनात्मक संदर्भ प्रदान किया है और संवेदना के धरातल पर यथार्थ और विचार को रूपान्तरित कर उसे सृजनात्मक संदर्भ प्रदान किया है। इतिहास बोध और विज्ञान बोध का यही रचनात्मक संदर्भ उनकी रचना प्रक्रिया में ढल गया है।

[12] चाँद का मुह टेढा है, पृ0 85
[13] अंधायुग : धर्मवीर भारती, पृ0 93

आज की रचनात्मकता एक ऐसा तत्व है जो मेरे विचार से रचनात्मकता को नए आयाम प्रदान करता है। साथ ही कवि की यथार्थ दृष्टि को व्यापक बनाता है। मुक्ति बोध का आत्म संघर्ष परिवे"ा और ज्ञान क्षेत्रों की गहरी संवेदना से युक्त होकर रचना को जन्म देता है। इस रचना में जन की पीड़ा और वेदना का नर रूप प्राप्त होता है। उसमें दयनीयता नहीं है पर परिवे"ा से जूझने की शक्ति है। कवि का ज्ञान बोध इसी शक्ति को जन्म देता है और विज्ञान बोध इसका अपवाद नहीं है। मुक्ति बोध द्वारा प्रयुक्त परमाणु, दिक्काल, ब्रह्माण्डीय रचना तथा अन्य वैज्ञानिक प्रस्थापनाओं और विचारों का एक सार्थक रूपांतरण उनकी रचना प्रक्रिया में प्राप्त होता है।

मुक्तिबोध की रचनात्मकता में ज्ञान–संवेदन के विविध रूप या स्तर प्राप्त होते हैं। इस दृष्टि से विज्ञान बोध का संवेदना के धरातल पर रूपांतरण मुक्ति बोध की कविता का ऐसा स्वर है जो उनके यथार्थ बोध और आत्म संघर्ष को अर्थवत्ता प्रदान करता है।

परमाणु भावना के साथ कवि ब्रह्माण्ड के रहस्यों के प्रति जागरूक है जिसमें एक तार्किक दृष्टि से जो नक्षत्र–विद्या द्वारा उद्घाटित तथ्यों पर आधारित है। पर एक प्र"न चिन्ह के रूप में। स्वयं आईस्टाइन ने गुरूत्वाकर्षण को हरेक द"ाा में अनिवार्य माना है और ग्रहों का वृत्ताकार घूमना उनका सरलतम मार्ग ही जिसका की वे पालन करते है। इस वैज्ञानिक मान्यता को कवि ने रचनात्मक संदर्भ दिया है। और पूरी वैज्ञानिक परम्परा को आत्मसात कर ब्रह्माण्डीय रहस्य को व्यक्त किया है।

धरित्री व नक्षत्र
तारागण
रखते है निज निज व्यक्तित्व
स्वयं के अनुसार
गुरूत्व आकर्षण शक्ति का उपयोग
करने में असमर्थ।

× × × × ×
यंत्रबद्ध गतियों का ग्रह पथ त्याग कर
ब्रह्माण्ड अखिल की सरहदे माप ले।[14]

अंतिम दो पंक्तियों से यह ध्वनित होता है कि ब्रह्माण्ड की सरहदे यंत्रबद्ध गतियों से नापी जा सकती है और दूसरे स्तर पर कवि–व्यक्तित्व यंत्र बद्धगतियों से आबद्ध नहीं रहना चाहता है पर उससे परे जाना चाहता है। धरती के अंदर होने वाली रासायनिक क्रिया का सहारा लेता है जो चट्टानों की सृष्टि करती है। चट्टानें अपनी परतों में जैविक अव"ाषों के चित्र उभारती है जो इतिहास के दबे हुए गुप्त चित्रों को साकार करती हैं। इस तथ्य से हमारी विकास परम्परा का पता चलता है। इस सारी प्रक्रिया को कवि ने आत्मसात किया है और रचनात्मक संदर्भ के द्वारा उसे ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य प्रदान किया है।

पृथ्वी के पेट में घुस कर जब
पृथ्वी के हृदय की गरमी के द्वारा सब
मिट्टी के ढेर ये चट्टानें बन जायेगे
तो इन चट्टानों की
आंतरिक परतों की सतहों में
चित्र उभर आयेगें
हमारे चेहरे के, तन–बदन के शरीर के।[15]

शम"ोर बहादुर सिंह की कविता के अनेक आयाम है जो रचनात्मक स्तर पर प्रकट हुए है। इन आयामों में से एक क्षेत्र ऐसे रूपाकारों तथा अभिव्यक्तियों से है जो मेरे विचार से उनकी सर्जनात्मकता को नितांत नया आयाम देती है जिसकी ओर अभी तक ध्यान नहीं दिया गया है। शम"ोर ने पूरातत्व तथा भूगर्भ की प्रक्रियाओं को अपनी रचनात्मकता का अंग बनाया है जो उनके आत्मसंघर्ष और आत्मबोध की प्रक्रिया को रेखांकित करता है 'धरती के अंदर चट्टानों की

[14] कविता का अन्तर अनु"ाासनीय विवेचन – डॉ0 वीरेन्द्र सिंह – के0एल0 पचौरी प्रका"ान, दिल्ली, पृ0 72
[15] कविता का अन्तर अनु"ाासनीय विवेचन – डॉ0 वीरेन्द्र सिंह, पृ0 74

कसमसाहट' और फिर अन्तस्थल की निधि का क्रमिक उद्घाटन एक भूगर्भीय प्रक्रिया के सहारे कवि की आंतरिक गति"ीलता को व्यक्त करता है –

निःसं"ाय
अंतस्तल खिल–खिल जाता : चट्टानें भीतर
दुखती–सी कसमस जीवन की।[16]

अंतर की ये 'दुखती चट्टानें' सांकेतिक रूप से आंतरिक व्यथा की ऊर्जा को प्रकट करती है। इन चट्टानों पर जब प्रहार होता है तब वे फूटती हैं उनका विस्फोट होता है और 'खान की निधियाँ' ऊपर आ जाती है जो कवि की सृजनात्मक ऊर्जा का एक सांकेतिक रूप है।

बढ़कर उन पर
सीधी चोट लगाऊ, उनको ढाऊ बरबस
डूबी हुई खान की निधियाँ अपनी बरबस
लाऊँ ऊपर।[17]

यहाँ पर अपनी पद के द्वारा कवि व्यक्तिगत आंतरिक ऊर्जा पर बल देता है क्योंकि यह ऊर्जा ही रचनात्मकता को गति एवं अर्थ देती है। उत्खनन की प्रक्रिया को कवि ने कविता की रचना प्रक्रिया से जोड़कर पुरातत्व और कविता की गहराइयों की ओर संकेत किया है तो दूसरी ओर रचनाकार के अंदर होने वाली उत्खनन की ओर भी संकेत किया है जो सांकेतिक रूप से कवि की आंतरिकता की ओर संकेत करता है।

तब तेरे लिए पहाड़
आरावली के
पुरातन–तम
खोद–खोद डाले गए होगे
सदैव से एक भविष्य में अभी से

[16] कविता का अन्तर अनु"ाासनीय विवेचन – डॉ0 वीरेन्द्र सिंह, पृ0 76
[17] कुछ और कविताएँ – शम"ोर, पृ0 11

नग्नतम बिवाइयों दरारें
धरती के सीने में अंदर तक चली गई हुई
घूम–घूम कर
एक स्थिर चक्कर में
कविता की पंक्तियों की तरह।[18]

मुक्तिबोध ने भूगर्भीय बिम्बों का प्रयोग आत्मसंघर्ष और आत्मान्वेषण की प्रक्रिया में किया गया है जबकि शम"ोर में आत्मसंघर्ष का संवेदनात्मक रूप अधिक है। वह मुक्तिबोध की तरह द्वन्द्व और संघर्ष की दुर्दान्दता की, यथार्थ के दे"ा की, और गहरे आत्मपीड़न को उस सीमा तक व्यक्त नहीं करता है जिस सीमा तक मुक्तिबोध की कविता में प्राप्त होता है। मुक्तिबोध कहते है।

धरती के अंतर में कैसे चितक–चितक कर
चट्टानी सिलसिले
जिंदगी के तथ्यों के
ज्वलंत रस बन पिघल रहे थे
बनकर अंगारी रस–गंगा
हम ज्वालामुखियों में भीतर उतर रहे थे।[19]

सारा पर्यावरण अंतरिक्ष तथा नक्षत्र ग्रह, आदि किसी न किसी नियम से परिचालिंत है। धरती, चन्द्रमा, तारे ये सभी दिंक के विराट आयाम में स्थित है। कवि की एक कविता 'हमारी जमीन' है जिसमें सापेक्ष सम्बन्ध को द"ााते हुए धरती के एकांकीपन को व्यंजित किया गया है। पूरे ब्रह्माण्ड की विराट सापेक्षता में। कवि ने 'पृथ्वी चाँद के पास और सूर्य से दूर' इस पंक्ति के द्वारा एक वैज्ञानिक तथ्य को ही प्रकट किया है। यहाँ कवि पर्यावरण में ग्रहों के सापेक्ष सम्बन्ध को स्वीकार किया है।

हमारी जमीन जो सिर्फ अपने चांद से
पास है, सूरज से कितनी दूर हैं

[18] शम"ोर, पृ0 93
[19] चाँद का मुह टेढा है – मुक्तिबोध, पृ0 110

और ग्रहों से एक तरह से बंधी सी हुई,
पर सदैव के लिए अकेली –
हम दोनों कितने अकेले इस वि"व में
एक दम कितने अकेले –
दूर सबसे–सबसे।[20]

विज्ञान का प्रभाव साहित्य पर इस प्रकार पड़ा की आज समकालीन दौर में पूरा साहित्य विज्ञानमय हो गया है। पूरा साहित्य विज्ञान की प्रस्थापनाओं तथा उसके खोजने से उत्पन्न दुष्परिणाम को भी झेल रहा है। जो हमारे पर्यावरण को अपने आगो"ा में लेने का प्रयास कर रहा है। इसलिए काल की अनवरतता के साथ मनुष्य पीड़ा का यह सिलसिला चलता रहता है। संघर्ष का सिलसिला व्यक्ति को पस्त करता है या अनुसंधान की तरंगों पर को"ि"ा करता हुआ वह निरंतर गति"ील रहता है।

और मनुष्य। प्रकृति से संघर्ष में
पस्त होता जीव ....
या अनुसंधान की तरंगों पर बढ़ती
एक को"ि"ा, एक स्वप्न।[21]

भारतेन्दु से लेकर छायावाद तक का समय जिसने वैज्ञानिक दृष्टि को प्रारम्भिक रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। यह वैज्ञानिक–दृष्टि या विज्ञान–बोध एक विवेकाश्रित चिंतन है। जो साक्ष्यों और प्रमाणों के आधार पर कार्यकारण सम्बन्ध को अर्थ देता हुआ मानव प्रकृति, समाज तथा ब्रह्माण्ड के अंत सम्बन्धों को इसकी प्रक्रियाओं तथा घटनाओं को प्रेक्षण और प्रयोग के आधार पर नियमों और तटजनित अवधारणाओं को प्रतिपादित करता है। नवजागरण काल में प्रसाद, पंत, निराला ऐसे रचनाकार है जिनके सृजन एवं विचार में वैज्ञानिक दृष्टि का संकेत प्राप्त होता है। आधुनिक काल के पहले साहित्य में विज्ञान की अपेक्षा द"ान का अधिक प्रभाव था किन्तु ज्यों ही आधुनिक काल आगमन होता है त्यों ही

[20] शम"ोर – इतने पास अपने, पृ0 22–23
[21] कविता का अन्तर अनु"ाासनीय विवेचन – डॉ0 वीरेन्द्र सिंह, पृ0 106

विज्ञान का प्रभाव साहित्य में दिखने लगता है। जहाँ द"ान युग अंत तथा विज्ञान युग का प्रभाव दिखता है। जिसकी ओर छायावादी कवि सुमित्रा नंदन पंत ने 'युगवाणी' में कहा है।

> द"ान युग का अंत, अंत विज्ञानों का संघर्षण
> अब द"ान–विज्ञान सत्य का करता नव्य निरूपण।[22]

वैज्ञानिक–दृष्टि का एक तत्व है। यथार्थ का साक्ष्यों के आधार पर चित्रण, जो हमें निराला के साहित्य में प्राप्त होता है। सृजन स्तर पर रचनाकार अपने परिवे"ा से चीजों तथा पात्रों को उठाता है। और फिर इन चीजों–पात्रों के आधार पर अपनी समानांतर रचना प्रस्तुत करता है। निराला की 'वह तोड़ती पत्थर', 'गर्म पकौड़ी', 'कुल्ली भाट', 'बिल्लेसुर बकरिहा' तथा 'चतुरी चमार' आदि ऐसी रचनाएँ है जो किसी न किसी स्तर पर निराला के जीवन के अनुभव तथा साक्ष्य हैं। निराला की कविताओं में वैज्ञानिकता तथा यांत्रिक खोज केन्द्र में है। वह आज की सभ्यता को वैज्ञानिक सभ्यता के साथ जोड़ते है। जिस पर मानव की स्वार्थी प्रकृति का अद्भूत प्रभाव है। उन्होंने लिखा है –

> आज सभ्यता वैज्ञानिक जड़ विकास पर
> गर्वित वि"व नष्ट होने की ओर अग्रसर
> भिड़े राष्ट्र से राष्ट्र
> स्वार्थ से स्वार्थ विलक्षण।[23]

दूसरी ओर निराला के काव्य में यदा–कदा ज्ञान के उस विराट रूप के द"ान होते है। जिसमें वि"व विकास के बीज तथा ज्ञान विज्ञान आदि के प्रगति चिह्न मिलते है, ठीक उसी तरह जैसे वाहय घटनाओं एवं क्रियाओं में 'बहुरूप रेखाएँ' प्राप्त होती है। उसी तरह ज्ञान के विकास में अनेक ज्ञान क्षेत्रों का योग है जिसमें विज्ञान भी है द"ान तथा इतिहास भी है –

[22] युगवाणी – पंत, पृ0 39
[23] महात्मा बुद्ध के प्रति – अणिमा से

जैसे आका"ा में
सूर्य चन्द्र ताराग्रह
पृथ्वी और जड़ चेतन
बहु रूप रेखाएँ दिखती है, वैसे ही
ज्ञान में
देखोगे बीज वि"व के विकास के
ज्ञान–विज्ञान के
द"ानितिहास गत, भिन्न–भिन्न भावों के।[24]

विज्ञान में यह मान्यता है कि सृष्टि का उद्‌भव तप्त गोलाकार हाइड्रोजन पिण्ड से हुआ है जिसे निराला ने 'घूमायमान घूर्ण्य प्रसर' के द्वारा व्यक्त किया है। जो आरम्भ में घुसरित रजकण है और ब्रह्मांडीय अंडको"ा है जो मिथकीय अवधारणा में गोलक या वृत्त का रूप है। इस सृष्टि का न ओर है न छोर, जबकि विज्ञान–द"ान में यह माना गया है कि दिक–काल सीमित है पर अपरिमित तथा आबद्धहीन है जो परोक्षतः उसके छोरहीन होने की ओर संकेत है।

घूमायमान यह घूर्ण्य प्रसर
घूसर समुद्र, शि"ा तारा हर
सूझता नही क्या उद्धर्व अपर क्षर रेखा।[25]

निराला के काव्य में विलोम का द्वन्द्व और उनकी सापेक्षता अनेक स्तरों पर प्राप्त होती है। यदि गहराई से देखा जाय तो 'घूर्ण्य प्रसर' एक लघुपिंड है जिससे सृष्टि का विराट पिंड अर्विभूत होता है। इसी प्रकार की सापेक्षता निराला की कविता 'कण' में भी है। इसे रहस्यवादी रचना माना जाता है लेकिन इसमें वैज्ञानिक बोध के द्वारा भी व्यापक सन्दर्भ देख सकते है। निराला अपने काव्य संग्रह 'परिमल' में यह संकेत करते है कि –

तुम (कण) हो अखिल वि"व में
या अखिल वि"व है तुममें

24 अणिमा – निराला
25 तुलसीदास – निराला

अथवा अखिल वि"व तुम एक
यद्यपि देख रहा हूँ
तुममे भेद अनेक।[26]

यहाँ पर अणु में ब्रह्माण्ड, पिंड में ब्रह्माण्ड की दा"ानिक अवधारणा के साथ यदि वैज्ञानिक बोध को लिया जाता है तो मैं समझता हूँ कि कविता के व्यापक अर्थबोध का द्वार ही खुलेगा। यह एक से अनेक भेदो की बात हैं। यह अणुओं और परमाणुओं का ही भिन्न संयोग एवं संघात है। यदि हम इस अवधारणा को निराला के गीतों में देखे तो वहाँ पर भी कहीं–कहीं इस लघु या छोटे का वि"ाष महत्व है। क्योंकि व्यक्ति जितना ही लघु–"ाक्ति सम्पन्न होगा वह इतना ही विराट बोध का भागी होगा।

तु छोटा बन, बस छोटा बन
गागर में सागर आएगा
आँखों के तिल में दिखा गगन
बस कुल समा रहा है मन।[27]

ब्रह्माण्ड और संसार में यह विलोम व्योरित एक महत्वपूर्ण रूप ही 'गतिस्थिरता' है क्योंकि गति में कम्पन और क्रिया होती है जिसे निराला ने शक्ति तत्व में भी देखा है जिसकी ओर संकेत पहले ही वे कर चुके है। ब्रह्माण्ड की प्रक्रियाएँ एवं पदार्थ इसी गति के द्वारा चंचल है।

चल रवि शि"ा तारादल
चल ग्रह, उपग्रह चंचल
पृथ्वी जल अनिल अनल
अग–जग, जड़–जीव चपल।[28]

[26] सुर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' : परिमल से
[27] निराला – आराधना से
[28] आराधना से

वैज्ञानिक दृष्टि से 'सूर्य' स्थिर है पर निराला ने इसे भी चंचल गतियुक्त माना है। यहाँ तक कि जिसे हम जल प्रकृति कहते है वह भी वृद्धि और विकास द्वारा अपनी गति तथा चंचलता का परिचय देती है।

इस प्रकार निराला की सोच और सृजन में वैज्ञानिक आ"ायों, रूपाकारों तथा विचारों का जो संकेत प्राप्त होता है वह आरोपित न होकर उनके व्यक्तित्व और सृजन कर्म का एक प्रेरक अंग है। विज्ञान बोध नवजागरणकालीन चेतना का एक वि"ाष्ट तत्त्व है जो अपने तरीके से निराला में अभिव्यक्ति प्राप्त करता है।

बायरन ने लिखा है – ''मैं मनुष्य से कम प्यार नहीं करता, पर प्रकृति से अधिक प्यार करता हूँ। ठीक वही बात सुमित्रा नंदन पंत की कविता को पढ़कर कह सकते है। उनका प्रथम विषय है प्रकृति, गौण विषय है मानव। मानव में भी जो प्रकृति अविकृत है उधर ही उनकी संस्कृत आँखे जाती है। जो विकृत है उनकी ओर यह सौन्दर्यवादी आत्मलक्षी के जैसे नयन मूँद लेता है। लेकिन निराला को अर्पित युगवाणी में पंत ने प्रकृति को पीछे छोड़ दिया और मानव की रचना का केन्द्रीय बिन्दु प्रकृति न होकर बल्कि मानव हो गया। अपनी रचना 'युगांत' में वह इस ओर संकेत करते दिखाई देते है –

सुन्दर है विहग,
सुमन सुन्दर
मानव ! तुम सबसे सुन्दरतम्।[29]

पंत ने मानव को केन्द्र में रखना। इसलिए आरम्भ कर दिया क्योंकि प्रकृति पर लगातार विज्ञान और औद्योगिक क्रांति का प्रभाव पड़ना आरम्भ हो गया था। जिसका जिम्मेदार सिर्फ मानव था। क्योंकि प्रकृति के प्रति जीवन और जगत की मान्यताएँ भी उसके दृष्टिगत वय विकास के साथ बदलती गयी। कवि की कल्पना लोक पर जैसे प्रकृति सीधा–भाव गत प्रभाव डालती है, वैसे ही प्रकृति और मानव के सम्बन्धी के विषय में कवि की धारणाओं का बौद्धिक प्रभाव भी उस कल्पना

[29] युगान्त – पंत

जगत में पड़ता है। कवि स्वयं मानसिक रूप से प्रगति करता है। त्यो–त्यो द्वन्द्वात्मक रूप से प्रकृति के रंगों का और स्वरों का आ"ाय भी उसके लिए परिवर्तित होता जाता है। इसलिए समय का प्रभाव उनकी रचनाओं तथा विचारों दोनों पर पड़ा है। जब उनका मन प्रकृति से मोहभंग होकर मानव की ओर होता है तो वे कहते है –

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया,
तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले, तेरे बाल जाल में कैसे उलझा हूँ लोचन
भूल अभी से इस जग को।[30]

कवि का प्रकृति से यह मोहभंग 'युगवाणी' की रचनाओं में भी दिखलाई देता है। प्रकृति पर समय के दबाव का दुष्परिणाम दिखाई देता है। कवि का प्रकृति के प्रति यह बदलता हुआ दृष्टिकोण दिखाई देता है। वे कहते है –

हार गई तुम
प्रकृति
रच निरूपम
मानव कृति।
निखिल रूप, रेखा स्वर
हुए निछावर
मानव के तन, मन पर!
धातु, वर्ण, रस, सार
बने अस्थि, त्वच, रक्त–धार,
कुसुमित अंग उभार।[31]

जिस प्रकृति ने मानव को निर्मित किया है आज उसी मानव ने प्रकृति का इतना दोहन किया है कि प्रकृति उसके आगे हार गई है। वह मानव की मात्र एक कृतिक रूप में रह गई है। महेन्द्र भटनागर ने वायुमण्डल में व्याप्त तापीय ऊष्मा से

---

[30] वाणी – पंत
[31] युगवाणी – पंत

उत्पन्न पर्यावरण असंतुलन की ओर संकेत किया है। वातावरण में व्याप्त सभी प्रकार के पेड़–पौधे तथा जीव–जन्तु किस प्रकार से धरती पर बढ़ रहे ताप से परे"ाान है कवि ने उसी ओर संकेत करते है।

पेड़ जलते पथ रहे कराह
सिसकते वन भू धरती आह
चीखती चील ताप से त्रस्त
सकल कण–कण तृण ऊष्मा ग्रस्त।[32]

पृथ्वी का तापमान बढ़ने का मुख्य कारण है वर्षा का न होना। दिनों–दिन पर्यावरण असंतुलन के कारण वर्षा कम हो रही है जिससे धरती पर सभी जीव बेचैन से दिखते है। बालमुकुन्द गुप्त ने इसी ओर इ"ाारा किया है।

सूखे डाबर, सूखे नाले तड़ाग
बिखरी चहुँ दिसि ग्रीसम, हूँ सौ बढ़ि मैं आगि
पय विहीन सिसु मात पिता सब अन्न विहीन
तृन विहीन पसु डकरावत ह्वे ह्वे अति दीन।[33]

अकाल का मुख्य कारण है पर्यावरण असंतुलन। जब पर्यावरण में लगातार उसके शोषण हो रहे है। तो कही न कहीं उसका सामना पड़ेगा ही। जब सूखा या अकाल पड़ेगा तो उसका असर दे"ा के खेती पर पड़ेगा जिससे वहाँ का किसान परे"ाान होगा। जब वहाँ का किसान परे"ाान होगा तो उसका दुष्परिणाम पूरे समाज को झेलना पड़ेगा।

दे"ा में हुआ असान
दे"ा में अकाल पड़ा
देख रहा खड़ा–खड़ा व्याकुल किसान
कब आसमान में खिंचती
इन्द्र की कमान।[34]

---

[32] संतरण – महेन्द्र भटनागर : कैला"ा पुस्तक सदन भोपाल प्र0सं0–1963
[33] 'स्फुट कविता' बालमुकुन्द गुप्त – श्री भारत मिश्र प्रेस द्वितीय संस्करण, प्र0सं0 1976

जल ही जीवन है। यदि जल ही धरती पर नहीं होता तो यह जीवन असंभव होता है। जब धरती पर पड़ता है तो धरती का हृदय हरा–भरा हो जाता है। जिससे पूरा मानव समुदाय खु"ा होता है लेकिन आज मानवीय शोषण से उत्पन्न दुष्परिणाम ऐसा हो गया है कि जल की एक–एक बूँद के लिए इंसान क्या सभी जीव जन्तु तरस रहे है।

कृषक घरों का अन्न खेतों में चुके हैं डाल
अंकुरित हो के वह है हरा
नव परिधानावृता शोभित वसुन्धरा।
× × × × ×
आ"ातंतु टूट सब जायेगें
दो ही दिन बाद जब खेत सूख जायेगें।[35]

आधुनिक हिन्दी कविता में पर्यावरण के प्रदूषित होने का असर दिखाई देता है। पर्यावरण के मुख्य घटक के रूप में पृथ्वी को माना जाता है। पृथ्वी को इसलिए वसुन्धरा का दर्जा दिया जाता है। जिसमें तमाम प्रकार की निधियाँ भरी पड़ी है। पृथ्वी के गर्भ में छिपे तमाम खनिज पदार्थ तो मानव प्राप्त ही करता है उसके साथ ही मानव को पेट भरने के लिए वह अन्न भी देती है। जिससे समस्त मानव जाति तथा जीव–जन्तुओं की क्षुधा शांत होती है। जिसकी और आधुनिक कवि गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही' ने इ"ारा किया है।

पृथ्वी पर है वास हमारा, देती है यह सदा सहारा
सब इसके पोसे पाले है, जग जंगम जो जग वाले है
खाना हरदम यही खिलाती, पानी भी है यही पिलाती
उठे बैठे कही भी होवे, जागे या हम पड़कर सोवे
पृथ्वी हमें गोंद में रखती, मातृसमान मोद में रखती।[36]

---

[34] 'स्वदे"ा संगीत' बालमुकुन्द गुप्त – साहित्य सदन चिरगाँव, झाँसी
[35] स्वर्ण धूलि – पंत – राजकमल प्रका"ान द्वितीय सं0 1959 ई0
[36] पृथ्वी, कुसुमांजलि, गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही', पृ0 5

वह हमारा पेट भरने वाली माँ के समान है। जिस प्रकार से हमें जन्म देने वाली में अपने गोद में रखकर हमे दुलारती है उसी प्रकार पृथ्वी माँ भी हमे अपने गोद में रखकर पालती–पोसती है। यह कार्य वह निस्वार्थ भाव से करती है। उसमें उसका कोई स्वार्थ नहीं होता है। मैथिली"ारण गुप्त ने इसी सम्बन्ध में कहा है।

हमें जीवनाधार अन्न तू देती है
बदले में कुछ नहीं किसी से तू लेती है
श्रेष्ठ एक से एक विविध द्रव्यों के द्वारा
पोषण करती प्रेम भाव से सदा हमारा।[37]

धरती माँ समस्त जीव–जन्तु तथा मानव का पोषण प्रेम भाव से करती है। किन्तु मनुष्य आज उस प्रेम भाव को नकार कर उसका दोहन और शोषण कर रहा है। तथा उसके प्रत्येक अंगों को बेच रहा है। कवि गोपाल दास 'नीरज' ने लिखा है।

यह कैसा व्यापार अरे यह कैसा उपहास
दो पैसों में बेच रहे तुम मिट्टी का इतिहास।[38]

आधुनिक कविता का दौर औद्योगिक क्रांति के आरम्भिक दौर था। साम्राज्य वादियों का दे"ीय बाजारों पर कब्जा हो रहा था। हर चीज बिकने के लिए मजबूर थी और बाजारवाद सब पर हावी था इससे पृथ्वी भी अछुती नहीं थी। मानव पृथ्वी का लगातार दोहन तथा शोषण कर रहा था। पृथ्वी इस शोषण से कराह रही थी। कवि गोपाल दास 'नीरज' बहुत सही मूल्यांकन किया है –

पेड़ जलते पथ रहे कराह
सिसकते वन, भू भरती आह
चींखती चील ताप से त्रस्त
सकल कण–कण तृण उष्माग्रस्त।[39]

[37] मातृभूमि : मंगल घट, मैथिली"ारण गुप्त, पृ0 15
[38] मिट्टी वाला प्राणगीत – नीरज, पृ0 17
[39] 'अमर वह व्यक्ति' प्राणगीत – गोपाल दास 'नीरज', पृ0 9

इस प्रकार आधुनिक कवियों ने भी पर्यावरण को अपनी कविताओं में लाने का प्रयास किया है। पर्यावरण असंतुलित होने की चिंता उनकी कविताओं का एक वि"ोष विम"ा रहा है।

हिन्दी साहित्य में छायावाद जो केवल आत्माभिव्यंजन और कल्पना लोक की उड़ान भरता था और समाज की वास्तविक समस्याओं से नही बल्कि स्वयं की अनुभूति को अभिव्यक्ति प्रदान करता है। छायावाद के प"चात् हिन्दी कविता में यथार्थ चेतना की ऐसी लहर चली कि नई कविता तक आते–आते यह कवियों की आदत सी बन गई है। वे जीवन की वास्तविक सच्चाई तथा सामाजिक यथास्थिति को अपनी रचनाओं में लाते थे। समसामयिक समस्याएँ इतनी प्रभाव"ााली हो गई कि प्रेम सौन्दर्य प्रकृति, जैसे अन्य विषय गौण हो गए तथा उनके प्रति दृष्टिकोण भी परिवर्तित हो गया। वीरेन्द्र जैन इस परिवर्तित काव्य वस्तु की ओर संकेत किया है।

> ''तुम्हारे वात्सल्य और प्यार में भी
> तुम्हारे चुंबन आलिंगन और दुलार में भी
> हाइड्रोजन बम के महाना"ा की गंध आती है
> भभकते बारूद की एक लपट सी आती है।''[40]

प्राकृतिक सौन्दर्य जो हमे लगातार आकर्षित करता था, अपनी ओर खींचता था, जल की कल–कल ध्वनि पक्षियों का कलरव, बादल की पहली वर्षा होने पर मिट्टी की सोंधी खु"ाबू, चाँदनी रात, कोयल की कूक आदि अब आकर्षण की जगह चिंता या हमें चिंतित करती है। इसके मूल कारण की ओर बुद्धसेन 'नीहार' हमारा ध्यान इस ओर आकर्षित करते है।

> ''मत बारूदी सुरंगे
> बिछाओं समन्दरों में
> असंतुलित मत करो ब्राह्माड को।''[41]

---

[40] वीरेन्द्र जैन : यातना का सूर्य पुरूष पुन"च, डा0 हरिचरण शर्मा, पृ0 240
[41] बुद्धसेन 'नीहार' : नदी की मौत पर, अमृत संगीत, पृ0 38–39

सन् साठ के बाद विज्ञान का प्रभाव और दबाव इस सीमा तक बढ़ गया कि व्यक्ति म"ीन का पूँजी बन गया है, मानव जीवन यांत्रिक और विज्ञान द्वारा संचालित हो गया है। ऐसे वातावरण में कवि की संवेदन"ीलता, प्रभावित न हो यह असंभव है। साठ के बाद के कवियों का दृष्टिकोण कविता का तथ्य और अभिव्यक्ति का माध्यम सभी कुछ वैज्ञानिक हो गया है। वह अब प्रकृति के सौन्दर्य न देखकर प्रकृति के रहस्यों को वैज्ञानिक ढंग से समझाने और समझने की चेष्टा करने लगा। उसे मस्तिष्क में संवेदना के स्थान पर विद्युत प्रवाह का अनुभव होने लगा है। इसी परिप्रेक्ष्य में सुन्दर लाल कथूरिया का कथन है कि –

> ''मेरा यह झनझनाता हुआ दिमाग
> स्नायुतंत्र जिसमें प्रभावित है विद्युत वेग।''[42]

लगातार तकनीकी उपकरणों कम्प्यूटर रोबोट उपग्रहों, की प्रस्थापना तथा परमाणु शक्ति के बढ़ते प्रयोग ने कवि की सोच को वैज्ञानिक बना दिया है। कवियों ने इन आविष्कारों का वि"लेषण अपनी कविताओं में करके लोगों तक पहुँचाना अपना कर्त्तव्य समझने लगा। अतः इस समय के कवियों का कथ्य वैज्ञानिक हो गया है। वैज्ञानिक शब्दावली में पदार्थ को सूक्ष्मतम इकाई परमाणु है जिसे न्युक्लियस कहते है। जिसमें प्रोटान और न्यूट्रान चक्कर लगाते है। इसी तथ्य को मुक्तिबोध ने अपनी कविता में इस प्रकार से व्यक्त किया है।

> ''परमाणु केन्द्र के आस–पास
> अपने गोल पथ पर
> घूमते है अंगारे
> घूमते है इलेक्ट्रान
> निज र"म पथ पर।''[43]

'न्यूटन' जिनकी विज्ञान के क्षेत्र में अपने विचार है, अपना सिद्धान्त है, इनके सिद्धान्त का कवियों ने अपने तरीके से व्यक्त करने का प्रयास किया है। श्याम पटल पाण्डेय ने लिखा है –

[42] सुन्दर लाल कथूरिया : एक अपूर्व वैज्ञानिक सिद्धान्त की खोज, पृ0 85
[43] मुक्तिबोध : चाँद का मुह टेढ़ा है, पृ0 85

''न्यूटन ने बताया कि
हर क्रिया के बराबर ही
प्रतिक्रिया भी होती है।''[44]

इसी बात को श्री"ा कुमार गुप्त ने अलग तरह से कहने का प्रयास किया है।

''और क्रिया जब भी कोई होती है
उसकी प्रतिक्रिया होती ही है
बराबर मात्रा में
उस क्रिया के ठीक विपरीत दि"ाा में।''[45]

वर्तमान समय को समझने की इच्छा, लोगों को जागरूक करने की प्रवृत्ति तथा जड़ताओं से दूर रहने की सलाह दी है। वे कहते है कि दुनियाँ कितनी तेजी से आगे जा रही है, भाग रही है, अणु, परमाणु, न्यूक्लियर ही नहीं मानव बमों का उपयोग किया जा रहा है। इंसान धरती से लेकर आका"ा तक एक कर दे रहा है। चाँद पर पानी की तला"ा कर दे रहा है। मोटरकार, रेलगाड़ी, हवाई जहाज, छोड़ वह राकेटों को लांच कर रहा है।

''अणु बम का निर्माण
प्रक्षेपात्रो का विविध प्रकार
चाँद पर मानव के चरण चिन्ह अंकित।''[46]

तारसप्तक के प्रमुख कवि भारत भूषण अग्रवाल ने भी इसी क्रम में अपना विचार व्यक्त किया है।

''इंसान उड़ा चन्द्रमा तलक
तू बैठा
उपनिषद् लिए।''[47]

---

[44] श्याम पटल पाण्डेय : अंधेरे से अंधेरा काटता हूँ, पृ0 4
[45] डा0 श्री"ा कुमार गुप्त : श्रीमाला, पृ0 2
[46] श्रीमती : सुषमा सिंह, प्रतीक्षा, पृ0 102
[47] भारत भूषण अग्रवाल : धर्मयुद्ध, अक्टूबर 1993, पृ0 33

वैज्ञानिक विकास पर्यावरण को किस प्रकार प्रभावित कर रहा है। यह कवि की केन्द्रीय चिंता हो गई है। लीलाधर जगूड़ी ने अंतरिक्ष में छोड़े गये भारतीय उपग्रह इन्सेन्ट–1बी0 की जानकारी कविता के माध्यम से की है –

''जबकि इनसेंट एक–बी का आज ही
खुला है सौर पाल।''[48]

पृथ्वी ही नहीं ब्रह्माण्ड और उसमें घूमते ग्रह–उपग्रहों की स्थिति को कवि प्रका"ा दीक्षित ने अपनी कविता में चित्रित का प्रयास किया है।

''बारह खानों में बटा हुआ ब्रह्माण्ड
घूमते ग्रह पुच्छल तारे उपग्रह।''[49]

अणु के विखण्डन और उससे मुक्त ऊर्जा का प्रयोग उपयोगी तथा विना"ाकारी दोनों रूपों में किया जा सकता है। इस बात की जानकारी साठ के द"ाक के कवियों की अच्छी तरह से थी।

''अणु तोड़ते ऊर्जा को इच्छा से संचालित करते
प्रका"ा वर्षों पर दौड़ते हुए अंक।''[50]

साठोत्तरी कविता ने भौतिकी के अतिरिक्त रसायन, खगोल, जीव विज्ञान, वनस्पति विज्ञान चिकित्सा विज्ञान आदि विषयों को समुचित उल्लेख अपनी कविता में किया है।

''पृथ्वी दूर है सूर्य से
औसतन नौ सौ तीस लाख मील
और चक्कर लगाती है इसका
अपने मण्डल के एक वर्ष में
वैक्टीरिया, रिक्टोरिया, स्पायरोकीट्स
वायरस इत्यादि

---

[48] लीलाधर जगूड़ी : भय भी शक्ति देता है, ट्रेफिकजाम, पृ0 100
[49] प्रका"ा दीक्षित : अक्षितिज सूरजमुखी का दे"ा, पृ0 38
[50] वही

ये सूक्ष्म से / मानव शरीर में प्रवे"ा कर सकते
और एक से दो–दो से चार।''[51]

पर्यावरण की इसी प्रक्रियात्मक स्थिति को कवि सुधीर सक्सेना ने अपने तरीके से व्यक्त करने का प्रयास किया है। उन्होंने कहा है –

''जब तक शेष है
पत्ती में चुटकी भर क्लोरोफिल
और क्लोरोफिल की चक्की में
मुठ्ठी भर धूप के दाने।''[52]

कवि धर्मवीर भारती परमाणु तत्वों को ब्रह्मास्त्र मानते है और इसके चलने पर इसके दुष्परिणामों की ओर भी इंगित किया है। उनका गीतिनाट्य 'अंधायुग' में द्वितीय वि"वयुद्ध का भवायह प्रभाव दिखाई देता है।

''ये दोनों ब्रह्मास्त्र अभी नभ में टकरायेगे
सूरज बुझ जायेगा
धरा बंजर हो जायेगी।''[53]

परमाणु शक्ति के विना"ाकारी रूप की कल्पना करके कवि मरूधर मृदुल ऐसे लोगों को फटकारते है, जो ज्ञान का दुरूपयोग कर रहे है।

''इसी ज्ञान के जाये अणु से निलय जलाओगे
सहज धरा के प्रांगण में तुम प्रलय रचोगे
प्यास तुम्हारी बुझे जमाना चाहे सब बह जाये।''[54]

सन् साठ के बाद वैज्ञानिक प्रगति इतनी तेजी से हुई कि वैज्ञानिक आविष्कारों ने सम्पूर्ण वि"व में हलचल मचा दी। जिस प्रकार विज्ञान का प्रभाव मानव जीवन पर पड़ा इसी प्रकार विज्ञान तत्कालीन साहित्य साठोत्तरी कविताओं की प्रमुख प्रवृत्ति बन गई है। छोटे बड़े सभी कवि और साहित्यकार अपने–अपने

[51] श्री"ा कुमार गुप्त : श्रीमाल, पृ0 85–87
[52] सुधीर सक्सेना : सुहागन है अभी धरती वर्तमान, अप्रैल–मई, 1992, कविता वि"ोषांक, पृ0 202
[53] धर्मवीर भारती : अंधायुग, पृ 92
[54] मरूधर मृदुल : युद्ध खोरों से – मधुमती जनवरी 85, पृ0 12

ढंग से विज्ञान के विकास के दुष्प्रभाव को व्यक्त किया है। इसी समय की कविता के कथ्य में वैज्ञानिक विषयों का द”ान इसी का परिणाम है।

सृष्टि के आरम्भ से लेकर आज तक मनुष्य ने सभी क्षेत्रों में समुचित प्रगति की है। और लगातार विकास कर रहा है। आदि मानव के जीवन की कल्पना और वर्तमान मनुष्य के रहन–सहन, आचार–व्यवहार, खान–पान, सामाजिक, आर्थिक, बौद्धिक तथा शैक्षणिक विकास में जमीन आसमान का अंतर है। वैज्ञानिक प्रगति–प्रगातियों से सर्वोपरि है। धरती से लेकर आका”ा तक अंतरिक्ष से पाताल तक विज्ञान का ही प्रभाव रहा है।

रामायण में वर्णित ‘पुष्पक विमान’ तथा महाभारत में प्रयुक्त ‘दिव्य दृष्टि’ जो की मिथ्या और कवि कल्पना प्रतीत होते थे आज के संदर्भ में वैज्ञानिक आविष्कारों के फलस्वरूप सहज और स्वाभाविक है। सुपर–सोनिक जेट और दूरद”ान उस पुष्पक विमान और दिव्य दृष्टि से कहीं आगे है। महाभारत और रामायण में प्रयुक्त अग्निबाण आधुनिक प्रक्षेपात्रों के ही संक्षिप्त संस्करण लगते है।

मानव जीवन के दैनिक उपयोग में आने वाले शत–प्रति”ात सामान वैज्ञानिक आविष्कार है। विज्ञान किसी न किसी रूप में मानव जीवन की सुख समृद्धि प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। कम्प्यूटर आधुनिकतम टेक्नोलाजी की अनुपम वैज्ञानिक उपलब्धि है। उसके विषय में कवियों ने अपना विचार स्पष्ट किया है।

‘‘कम्प्यूटर कम्प्यूटर
हैलो–हैलो कम्प्यूटर
शक्तिपूंज हो सुन्दर
कम्प्यूटर कम्प्यूटर
तुमसे ही उड़ने है यान
तुमसे ही चलती है ट्रेन
तुम भविष्य के ज्ञाता
सही बता सकते है
कहाँ पड़ेगा सूखा

कब होगी रेन
के"ा शास्त्र, ज्ञान भरे
प्लापी के अन्दर/कम्प्यूटर, कम्प्यूटर।''[55]

कवि गोपाल चतुर्वेदी ने मानव जीवन में कम्प्यूटर की उपयोगिता को बताया, उसके महत्व तथा जीवन में उसकी आव"यकता पर बल दिया। लेकिन कवि सती"ा भाटिया ने कम्प्यूटर के ऊपर व्यंग्य करते हुए लिखा है –

''तुम्हारी महिमा/एकोउंट बहुस्याम से भी गुरूतर
तुम धन्य हो/कम्प्यूटर तुम धन्य हो
तुम ऐ मानव के सरताज
बस इतना हमको बतलाओं
क्या होता है प्यार, आज हमे समझाओं
कम्प्यूटर झुझलाया
रांग एन्टी है। डाटा फिर से डालो
कह उसने धमकाया।''[56]

अर्थात इसमे यह द"ार्ने का प्रयास किया गया है कि कम्प्यूटर श्रेष्ठ है। लेकिन वह मानव का स्थान नही ले सकता। यह तो केवल उन्ही तथ्यों को बतला सकता है जो की उसकी फ्लापी में भरे हुए है।

मानव ने अपने सुख–दुःख ऐ"ाो–आराम उपभोग तथा भौतिक आव"यकताओं के लिए वैज्ञानिक आविष्कार किये लेकिन आज वह इस के लिए सिरदर्द, जीवन के लिए संकट बन गया है। म"ाीनों को संचालित करते–करते मनुष्य आज स्वयं म"ाीन बन गया है। उसके अन्दर की मानवता, संवेदन"ाीलता सब शून्य हो जा रही है। वह पूरी तरह से यांत्रिक होता जा रहा है। जिसका दुष्परिणाम लगातार समाज झेल रहा है।

''मैंने पानी में एक टरबाईन लगाई थी
वह एक दिन मेरी ही त्वचा में ही

[55] गोपाल चतुर्वेदी : एक और रस बुद्धि रस, आजकल जून, पृ0 28
[56] कम्प्यूटर : सती"ा भाटिया, अमेरिका के हिन्दी कवि, पृ0 34

घूस आयी
मेरे रामों की पूनी से
निकलते है मीलो
बिजली के तार
अब बिजली जहाँ जलती है
मैं तार बन जाता हूँ।''[57]

वैज्ञानिक आविष्कार मनुष्य को कितना भौतिक सुख दे रहा है लेकिन इससे कई गुना ज्यादा मनुष्य इसका दुष्परिणाम झेल रहा है। क्योंकि पर्यावरण इससे लगातार प्रभावित हो रहा है इस बात का ज्ञान भौतिकवादी मनुष्य को नहीं हो पा रहा है। तीसरे सप्तक के कवि मदन वात्स्यायन 'असुर पुरी' नामक कविता में इन्ही वैज्ञानिक आविष्कारों के दुष्परिणामों की और संकेत करती है। उनका विचार है कि आज म"ाीन सा व्यस्त मानव स्वनिर्मित म"ाीन का गुलाम बनकर उसके हिसाब से चलने के लिए व्यस्त है। चौथे सप्तक के कवि 'रामकुमार कुम्भज' मानव को ही प्रक्षेपात्र (मिसाइल) के रूप में देखते है। विज्ञान की उपलब्धि से उत्पन्न पर्यावरणीय दुष्परिणाम के प्रति साठोत्तरी कवि आ"ांकित है। साठोत्तरी कवि देवराज का विचार है –

''एक दिन ऐसा आयेगा
जब
कम्प्यूटर
हमारे
तुम्हारे
रक्त में
अपनी अपनी बस्तियाँ
खड़ी कर देगे।''[58]

वैज्ञानिक प्रगति तथा औद्योगिक विकास राष्ट्र के लिए आव"यक है किन्तु उसकी अति"ायता ने आज जीवन के लिए संकठ उत्पन्न कर दिए है। अनेक

[57] गिरिजा कुमार माथुर : 'भीतरी नदी की यात्रा' यंत्रत्रास, पृ0 47
[58] देवराज : 'आजकल' नवम्बर 86, पृ0 22

शारीरिक मानसिक रोग, तनाव, सिरदर्द, हृदय रोग उच्च रक्तचाप, कैंसर तथा श्वास सम्बन्धी अनेकानेक रोग पर्यावरण प्रदूषण का प्रभाव है। यातायात के विविध साधनों तथा औद्योगिकरण की देन है। पर्यावरण प्रदूषण। जल, वायु, ध्वनि तथा अन्य रासायनिक के प्रदूषणों तथा इन सबसे अधिक हानिकारक परमाणु ऊर्जा से उत्पन्न, रेडियोधर्मी तत्वों द्वारा वातावरण का प्रदूषण। इनके विषय में साठ के द"ाक के कवियों ने अपनी कविता द्वारा यह स्पष्ट करने प्रयास किया है कि इन प्रदूषणों का कारण अंधाधुंध वैज्ञानिक प्रगति है। जन साधारण को इस ओर ध्यान देना चाहिए अन्यथा यह पर्यावरण की असंतुलित कर सृष्टि के विना"ा का कारण बन सकता है –

> ''म"ीन–कल कारखाने उगलते हैं
> धुँआ छायी है जहरीला अंधकार।''[59]

कवि विभुक्तानन्द ने औद्योगिक विकास का दुष्परिणाम म"ीन, कल कारखाने से निकलने वाला कचरा तथा धुँआ से फैलने वाला पर्यावरण प्रदूषण आदि की ओर संकेत करते है। इसी ओर गिरिजा कुमार माथूर ने अपना प्रयास किया है। उन्होंने कहा है –

> ''तुमने बेहिसाब
> चर डाले सुगन्ध के जंगल
> डीफोलिएट झोंक नंग धडंग किया पेड़
> ढोक लिया नदियों का पानी
> बना दिया समुद्रों को तेल का कुप्पा
> झीलों को गटर ओर पोखर
> कारखाने के फुलजे का
> तेज भरी हवाओं में गंधक के बादल
> धूप पर इलेक्टो प्लेटिंग
> चाँदनी पर डियोडोरेण्ट वार्नि"ा
> सब्जियो का रस
> गैमक्सीन से गया बस।''[60]

---

[59] विभुक्तानंद : तमसा के पार, पृ0 27
[60] गिरिजा कुमार माथूर : अन्तः संवाद, नदी की मौत पर, पृ0 46

गिरिजा कुमार माथुर की पर्यावरण सम्बन्धी यह चिंता पर्यावरण की मूल या केन्द्रीय समस्या है। पेड़ों की लगातार कटाई हो रही है। पृथ्वी पर रहने वाले सभी जीवो का अस्तित्व खतरे में नजर आ रहा है। वायु मण्डल में कार्बन डाई आक्साइड तथा क्लोरो फ्लोरो कार्बन आदि गैसों का जमावड़ा हो रहा है। जिसके कारण वायु मण्डल मे स्थिल ओजोन पर क्षतिग्रस्त हो रही है। इसी ओर डा0 बुद्ध सेन, 'नीहार' यह संकेत करते है –

''खंडित होकर फिर धरती
ब्रह्माण्ड में खो जायेगी
फट जायेगे सारे ग्रह
सब ओजोन पर्त फटेगी
सब वायु मण्डल प्रदूषित होगा।''[61]

वैज्ञानिक प्रगति के कारण उत्पन्न दुष्परिणाम से सम्पूर्ण वि"व आहत है। सभी कवि बुद्धिजीवी, भावूक और संवेदन"ील होने के कारण अत्यधिक प्रभावित हुए और अपनी कविताओं के माध्यम से अपनी चिंता की अभिव्यक्ति करने लगे है।

''सभ्यता कहां आ गई? कहां खड़ा है वि"व
जा रहा किधर गति रथ विज्ञान कलाओं का?
यह ध्वस्त धरा यह धुँए से घायल नभ
विज्ञान इसी को कहता है क्या मानव विकास।''[62]

कवि लगातार वि"व को हिरो"िमा और नागासाकी की घटना को याद करके वैज्ञानिक प्रगति पर अंकु"ा लगाने का आह्वान करते हैं। यदि वह वैज्ञानिक प्रगति पर अंकु"ा नहीं लगाते है तो उसका दुष्परिणाम पर्यावरण को प्रभावित करता है। यदि पर्यावरण प्रभावित होगा तो मनुष्य का जीवन भी प्रभावित हो। कवि 'कुमार चन्द्रहास' भोपाल गैस त्रासदी की दुःखद घटना को याद करते हुए कहते है –

''जलते कराहते हीरो"िमा, नागासाकी हो
या भोपाल का जलता आसमान हो।

[61] डा0 बुद्ध सेन 'नीहार' : अन्तः संवाद, 'नदी की मौत पर', पृ0 46
[62] गोपाल दास नीरज : प्राणमीत, सभ्यता कहाँ गई, पृ0 197–198

युनियन कार्बाइट कारखाने की
विषाक्त गैस से
मीलो तक फैला
अंतहीन महा"म"ाान।''[63]

वैज्ञानिक प्रगति वि"व मानवता और वि"व शांति के वही आसानी से कुचल रहा है। सबको अपने पैरो तले रौंद रहा है। इसकी रक्षा के लिए कवि लगातार यह कहने के लिए विव"ा है –

''रूक जाओ कुछ देर के लिए
जला दो सब पुस्तकें
सब ग्रन्थ
इससे पूर्व
कि तुम्हारा ज्ञान
सर्वना"ा ढाह दे।''[64]

हिन्दी के प्रसिद्ध कवि गिरिजा कुमार माथुर बींसवी शताब्दी की इलेक्ट्रान सभ्यता और वैज्ञानिक तकनीकि के विषय में लगातार अपनी चिंता व्यक्त करते है।

''देखा है बढ़ते
अंधाधुंध फूलते
एक तकनीकि जन्तु को
पंचकस प्लास लिए
सबसे काला बालदार एप्रन
कंधे पर एक तरफ ट्रांजिस्टर
एक तरफ स्टेटगन
चढ़ा हुआ आग फेंक टैंक पर
चकाचौध अंध लोक की पोल में गहराई
घन्नाती इलेक्ट्रान सभ्यता।''[65]

---

[63] कुमार चन्द्रहास – चेतावनी आका"ा, प्रथम अंक नव0, पृ0 21, दिसम्बर 1992; ग्लोब और कविता : बुद्ध सेन नीहार, पृ0 148

[64] डा0 रामदास नादार : यो ही चलते चलते 'अभि"ााप', पृ0 40–41

साठोत्तरी कवि वर्तमान वैज्ञानिक प्रगति और तदजन्य दुष्पपरिणामों के लिए विज्ञान को दोषी नही ठहराते है। क्योंकि वे जानते है कि विज्ञान और टेक्नोलाजी युग की माँग है। समय की माँग है, व्यक्ति की उन्नति है, समय का उत्थान, राष्ट्र की समृद्धि तथा वि"व के कल्याण के लिए अति आव"यक है। लेकिन हमको कुत्सित रूप देने वाले कुछ युद्धाकांक्षी व्यक्ति तथा राष्ट्र है। अतः हमे साहित्य और कविता के द्वारा उनकी सोती हुई मानवता को जागृत करना है।

''चन्द्र बनाओ, सूर्य बनाओ
पृथ्वी नई बनाओ
ग्रह, उपग्रह, नक्षत्र बनाओ
नभ में यान उड़ाओ
हे विज्ञान "ाखर आरोही
चकित रहो संसार
पर जब तक है नया नही
बनने पाता इन्सान
रण ज्वाला में आहुति ही
देगा नूतन विज्ञान।''[66]

वैज्ञानिक प्रगति के परिणाम स्वरूप परमाणु शस्त्रों की होड़ की एक अभि"ााप के रूप में सम्पूर्ण वि"व का भयभीत कर रही है। वैज्ञानिक अनुसंधानों, ऊर्जा तथा शक्ति के नये–नये स्रोतो, परमाणु शस्त्रों के नव निर्माण ने वि"व शांति, मानवता का ही नहीं सृष्टि के सम्पूर्ण विना"ा का ही नि"चय कर लिया है। आज प्रत्येक राष्ट्र में हो रहे परमाणु आयुधो के निर्माण और संग्रह दोनों ही चिंता का विषय है। सम्पन्न राष्ट्र वि"व विजयी बनने की कल्पना से परमाणु हथियारों का निर्माण कर रहे है। विकसित दे"ा अपनी रक्षा तथा अस्तित्व के लिए इन शस्त्रों का आयात कर संग्रह कर रहे है। यह दोनो ही स्थिति खतरनाक है। क्योंकि परमाणु शस्त्रों का प्रयोग चाहे दूसरे राष्ट्र को अपने अधीन करने के लिए किया जाय अथवा अपनी रक्षा के

[65] गिरिजा कुमार माथुर – भीतरी नदी की यात्रा, पृ0 63
[66] जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द : नई किरण, पृ0 37

लिए परिणाम तो समान ही होगा अथवा भीषण नर संहार और सृष्टि का विना"ा। जब सम्पूर्ण सृष्टि के विना"ा के मुहाने पर खड़ी हो, जब पृथ्वी पर से जीवन समाप्त करने की पूर्ण तैयारी हो तो ऐसे में कवि की वाणी कैसे मौन रह सकती है। वि"व में व्याप्त अनेकानेक संकठों समस्याओं में वह समस्या आज सर्वोपरि है। क्योंकि यदि इस समस्या का उचित समाधान नही किया गया तो सम्पूर्ण सृष्टि ही विनष्ट हो जायेगी और दूसरी समस्याओं पर व्यय किया हुआ श्रम व्यर्थ हो जायेगा। अतः इस संकठ की स्थिति में यह आव"यक है कि इस समस्या के समाधान की प्राथमिकता दी जाय। यही कारण है कि सभी साठोत्तरी कवियों ने विज्ञान के विना"ाकारी भयावह पक्ष पर अपना विचार प्रस्तुत किया है।

> ''यंत्र दैत्य चिघाड़ रहे हैं
> नभ की छाती फाड़ रहे हैं
> अणु का वै"वानर जलता है
> धुँआ नागफन बन उठता है
> नभ में तनी शक्ति की भुज है
> और दूसरी ओर मनुज है।''[67]

हथियारों के बढ़ते संग्रह के प्रति प्रभाकर माचवे ने अपनी चिंता व्यक्त की है। उन्होंने अपने सूक्ष्म दृष्टि से सूक्ष्म निरीक्षण किया है।

> ''राक्षसी, बुभुक्षित महाकृतान्त, दुतिका
> आ रही असंख्य चीन सी विमान वाहिनी
> छा रही अनंत सब मैरीन सिंधु ग्राहिनी
> योजनांत टैंक और विना"ाकास स्वनस्तिका।''[68]

साठोत्तरी कवि डा0 बुद्धसेन 'नीहार' भी प"िचम की शस्त्र निर्माण योजनाओं को जानते है। इनसे वि"व को अवगत कराने के लिए लिखा है।

[67] कल्पांतर : भूमिका – गिरिजा कुमार माथुर, पृ0 33
[68] तारसप्तक : प्रभाकर माचवे, पृ0 206

''वे तुम्हारी मासूम िाराओं में
अणु धुलि का जहर घोल रहे
मासूम आसमानों को जलाने की
दूरगामी योजनाएँ बना रहे है।''[69]

अणु बम के निर्माण में यूरेनियम धातु का प्रयोग किया जाता है। यह धातु मिट्टी तथा बालू से प्राप्त होती है। वैज्ञानिक प्रक्रिया द्वारा इसका प्रयोग शक्ति के रूप में होता है। कवि गिरिजा कुमार माथुर इसी शक्ति को मिट्टी की सूक्ष्म शक्ति कहते है। वे जानते है कि सम्पन्न राष्ट्र इस सूक्ष्म शक्ति का प्रयोग वि"व संहार के लिए कर रहे है। उन्होंने लिखा है –

''मिट्टी की सूक्ष्म शक्ति का
लेकर अग्निबीज
वह पृथ्वी को अणु धूम
बनाना चाह रहा है।''[70]

आज वैज्ञानिक विना"ाक हथियारों का निर्माण व निर्माण करके समस्त मानवता को, मानव अस्तित्व को, लोक को, हिला दिया है। खतरनाक परमाणु बम किस प्रकार एक दिन पूरी दुनिया को नष्ट कर देंगे। इसका अंदाजा लगाना मुि"कल है। साठोत्तरी कवियों ने इस विना"ाक निर्माण के कारणों पर भी प्रका"ा डाला है। नागार्जुन की 'एटम बम' नामक कविता आसुरी वृत्ति वाले स्वार्थी दे"ाों और उनके शासकों के प्रति व्यंग्यात्मक दृष्टि प्रस्तुत करती है।

''कहाँ गिरेंगे एटम या हाइड्रोजन बम?
बम बरसेगे जनकीर्ण आबादी पर ही
निरपराध निर्दोष निष्कलुष
बाल–वृद्ध–वनिताओं की ही जान जायेगी
ताजा–ताजा खून बहेगा।
उस पवित्र शोणित धाराओं से नहा–नहाकर

[69] बुद्धसेन 'नीहार' – ब्राह्मण्ड का संगीत, पृ0 66
[70] गिरिजा कुमार माथुर – िालापंख चमकीले, पृ0 11

खाज मिटा लेना चाहेंगे।
युद्धाकांक्षी मानवाभास पागल पि”ााच।''[71]

यह पि”चमी दे”ा रासायनिक और जैवकीय दोनों मुद्दों के शस्त्रों का अविष्कार ही नही व्यापार भी कर रहे है। एक जगह डा0 बुद्ध सेन 'नीहार' सम्पन्न राष्ट्रो को समझाने का प्रयास करते है।

''हथियार न बेचो व्यापारी।
हिंसा और प्रदूषण के तुम
बने हुए क्यों व्यापारी।
क्यों युद्धों की फसल उगाते
हिंसा के बीज न बोओ
अपने मानसिक प्रदूषण से।''[72]

साठोत्तरी कविता में कोई कवि हथियारों के निर्माण पर चिंतित है तो कोई उसके क्रय–विक्रय की सूचना से प्रभावित है तो किसी कवि को परमाणु शस्त्रों के अभ्यास पर चिंता है।

''इसी विस्फोट के लिए
प्राणपन से
अमरीका
निरंतर अहर्नि”ा
घोर अभ्यास करता है।''[73]

परमाणु हथियारों का आविष्कार हो या निर्माण, क्रय–विक्रय हो अथवा अभ्यास परिणाम तो एक ही सृष्टि से जीवन का अंत। खाड़ी युद्ध हो या लीबिया इजरायल पर हमला, किसी भी भूमि पर युद्ध छिड़ते ही यह आ”ांका आज जन–जन के मन में उभरने लगती है कि यह युद्ध कही परमाणु युद्ध अथवा महायुद्ध का रूप न ले ले। अतः वि”व को इस त्रासदी से मुक्त कराने की अत्यधिक आव”यकता है।

---

[71] नागार्जुन : युगधारा – एटमबम, पृ0 101
[72] बुद्धसेन 'नीहार' – नदी की मौत पर, पृ0 68
[73] शम”ोर बहादुर सिंह : बात बोलेगी, पृ0 113

हिन्दी के कवियों ने अपनी रचनाओं में युद्ध की विभिषिका, आ"ांका सीमा पार के दे"ाों मे युद्ध की तैयारियाँ के विषय में चिंता व्यक्त करके जनमानस में युद्ध के प्रति घृणा मानवता वि"व प्रेम और वि"व शांति की भावना विकसित करने का उल्लेखनीय प्रयास है।

अन्तर्राष्ट्रीय सीमाओं पर मंडराते युद्ध के बादल कवियों की दृष्टि से कैसे बच सकते है। साठोत्तरी कविता के अधिकां"ा कवि इसी कारण तृतीय वि"व युद्ध की आ"ांका से ग्रसित दृष्टिगत होते है। कवि की संवेदन"ाीलता वर्तमान परिवे"ा में यह सोचने के लिए विव"ा है कि यदि सभी राष्ट्र वैज्ञानिक प्रगति तथा सुरक्षा के नाम विना"ाकारी परमाणु शस्त्रों तथा युद्धों की सामग्री का निर्माण और संचय करेंगे तो तृतीय वि"व युद्ध अव"य ही होगा –

''मै सोच रहा हूँ इस गति से चलकर जमीन
किस ओर आदमी की किस्मत ले जायेगी।
ऐसे ही गर विज्ञान चाटता रहा लहूँ
दुनियाँ सारी कितने दिन खैर मनायेगी।''[74]

प"िचमी दे"ाों का यह धर्मोन्माद प्रत्येक राष्ट्र के लिए घातक है। साठ के द"ाक के कवियों ने सजगता के महामंत्र को अपनी कविता में फूँक कर सुप्त वीरत्व को जगाने और मानवता की रक्षा के लिए क्रांति का आह्वान करने की प्रेरणा दी है। कवि उस विना"ाकारी को न केवल स्वय सुनता है अपितु समस्त दे"ावासियों को भी सुनाने की शोर सफल चेष्ट करता है।

''देखो अन्तर्राष्ट्र क्षितिज पर
सूर्य–ग्रहण पड़ रहा मनुष्य पर
अर्थ असुर मुख खोल रहे है
युद्ध राक्षस डोल रहे है।''[75]

---

[74] गोपाल दास नीरज – प्राण गीत, पृ0 87–88
[75] गिरिजा कुमार माथुर : कल्पांतर, पृ0 31

वैज्ञानिक विकास का बढ़ता प्रभाव और उसके अनैतिक उपयोग से बढ़ता दुष्प्रभाव पि"चमी दे"ाों के आका"ा पर अपना कुप्रभाव दिखा रहा है। धीरे–धीरे विषदन्त सर्पिणी की भाँति आकार ग्रहण कर रही है। वे कही भी किसी नगर पर युद्धक्षेत्र पर शोध केन्द्र पर कारखानों पर कभी भी अचानक आक्रमण कर सकती है। नरे"ा मेहता ने इसी चिंता को अपनी कविताओं में व्यक्त करने का प्रयास किया है।

''एटम और उदजन बम है
नमगामी महलों के कर में
चाह रहे जो सृष्टि धरा को
केवल हिरो"ामा कर देना
जिनकी अंधकार की लम्बी परछाई से
अटलांटिक और महा पैसफिक काँप रहे है।''[76]

इतना ही नही साठोत्तरी कविता के मूर्धन्य कवि गिरिजा कुमार माथुर ने भी अपनी रचनाओं में तृतीय वि"व युद्ध की ही आ"ांका व्यक्त की है।

''जब जगत को चाहिए फुलवारियाँ
हो रही तब युद्ध की तैयारियाँ
फिर धरा सीता सताई जा रही
फिर असुर संस्कृति जमाई जा रही
मिट रही रंगीन जीवन की छटा
छा रही हिंसक म"ाीनों घन घटा।''[77]

किसी भी राष्ट्र के नागरिक युद्धाकांक्षी नही होते। वे अपना जीवन सुखमय और शांतिमय रूप में जीना चाहते है। विगत दो महायुद्धों के चलते रहने वाली छोटी–बड़ी झड़पों से यह तो स्पष्ट है कि युद्ध में आमने–सामने खड़े होकर लड़ने वाले सैनिक में व्यक्तिगत स्तर पर कोई रागद्वेष नही होता है। पर वे अपने दे"ा की ओर से अपने दे"ा के प्रतिनिधियों प्र"ाासकों द्वारा लिए गये त्रुटिपूर्ण निर्णयों पर ही बंदूक, म"ाीनगन उठाते है। और बम बरसाते है। इतना ही नहीं कभी–कभी तो यह

[76] नरे"ा मेहता : मेरा समर्पित एकांत, पृ0 58
[77] गिरिजा कुमार माथुर : धूप के धान, पृ0 92–93

भी आव"यक नहीं होता है कि लड़ने वाला सिपाही उसी दे"ा का हो। वह भाड़े का भी हो सकता है क्योंकि सम्पन्न राष्ट्र अर्थ"ाक्ति के द्वारा कमजोर राष्ट्रों के कन्धों पर रखकर युद्ध की बन्दुकें चलवाते है।

''अपनी–अपनी बंदुके म"ीनगन लिए हुए
नदियों पहाड़ों वियावानों सुनसानों में
फटे हाल भूखे प्यास
टकराते फिरते हैं
दूसरों की आज्ञा पर
चन्द पैसों के वास्ते।''[78]

साठोत्तरी कविता के प्रमुख कवि गिरिजा कुमार माथुर का कल्पांतर काव्य संग्रह का हिन्दी का प्रथम विज्ञान काव्य कहा जा सकता है। जिसमें सत्ता और प्रभूता की अन्तर्राष्ट्रीय क्रूर प्रतिस्पर्धा सर्वग्रासी युद्ध तदजन्य पर्यावरण के प्रदूषण और आणविक संहार की आसन्न भयावयता के सन्दर्भ में शांति की परम अनिवार्यता का चित्रण किया गया है। कवि को यह स्पष्ट है कि प"चमी दे"ा तृतीय महायुद्ध के लिए पूरी तैयारी से है। और वे अपनी शक्ति सम्पन्नता के समक्ष कमजोर छोटे तथा विकास"ील राष्ट्रों की दयनीयता को देखकर कितने खु"ा हो रहे है।

''कितना विराट सन्नाटा मैंने फैलाया
सबकी घिघ्घी है बंधी हुई
सबकी आँख है फटी हुई
बस एक बटन से संचालित
जो दब अंगूठे के नीचे
रेडियो, तार, उपग्रह एटम, हाइड्रोजन बम
है दूर मार राकेट मेरे
सब खड़े लगाये दृष्टि
लक्ष्य साध नापे अक्षां"ा दि"ाा
हर स्वर्ण दे"ा के नगरों की।''[79]

[78] सर्वे"वर दयाल सक्सेना : काठ की घंटियाँ, पृ0 371–372

दे”ा की सीमाओं का अतिक्रमण करके पड़ोसी मूल्क युद्ध की चिंगारी को गृह युद्धों के रूप में सुलगाकर महायुद्ध का रूप देना चाहते है। आतंकवाद की त्रासदी इसी महायुद्ध का संक्षिप्त संस्करण है जिससे सम्पूर्ण वि”व त्रस्त है। कवि की तीक्ष्ण दृष्टि इसे देखती है। साथ ही विकराल रूप धारण करने से पहले रोकना भी चाहती है। इसीलिए साठोत्तरी कविता के प्रसिद्ध कवि चन्द्र”ोखर दे”ावासियों को सावधान करते हुए कहते है –

''दे”ा की सीमाओं को लांघकर
राक्षसों के कटक के कटक
अपने निवे”ा बना रहे है
आतंकित है जन–जन आक्रांत जन जीवन है।''[80]

कवि वीरेन्द्र ने भी सुरक्षा के लिए होने वाले समस्त वैज्ञानिक अनुसंधानों के पीछे सुरक्षा की भावना न होकर ध्वंसात्मक प्रवृत्ति तथा सर्वश्रेष्ठता की भावना रूपी विचार की ओर अपना ध्यान दिया है।

''कंधो पर धरे हुए
खूनी यूरेनियम
हंसता है तम
युद्धों के मलबे से
उठते है प्र”न और
गिरते है हम
जीवन के लिए नहीं
मृत्यु के लिए होता है
ये सारा श्रम।''[81]

'चौथा सप्तक' के कवि राजेन्द्र कि”ाोर विज्ञान के भयंकर प्रकोप को तृतीय वि”व युद्ध से विचलित होकर कहते है –

[79] गिरिजा कुमार माथुर : कल्पांतर, पृ0 86–87
[80] चन्द्र”ोखर : f”ावधनुष, पृ0 51
[81] कवि वीरेन्द्र मिश्र : झुलसा है छायानट धूप में, पृ0 41–42

''ये तमाम बस्तियाँ उजड़ जायेगी
इन शहरों की जगह होगी खँदके।''[82]

महान गीतकार, हिन्दी गजलकार गोपाल दास 'नीरज' भी तृतीय महायुद्ध की विभीषिका से आ"ांकित है। वे जानते है कि यदि तृतीय महायुद्ध छिड़ गया तो वह प्रथम तथा द्वितीय महायुद्ध से अधिक भयावह होगा क्योंकि प्रथम और द्वितीय वि"व युद्ध के समय तो केवल अमेरिका ही परमाणु शक्ति सम्पन्न था जबकि आज प्रत्येक राष्ट्र परमाणु शक्ति से परिपूर्ण है। आगे वह कहते है।

''मैं सोच रहा हूँ अगर तीसरा युद्ध छिड़ा
इस नई सुबह की नई फसल का क्या होगा?
मैं सोच रहा हूँ गर जमीन पर उगा खून
मासूम हलों की चहल–पहल का क्या होगा।''[83]

इसी चिंता को अभिव्यक्ति प्रदान करते हुए डा0 देवराज का विचार है कि ''वि"व शांति और निरस्त्रीकरण कवि को बड़े राष्ट्रों का सफेद झूठ दिखाई देता है। वस्तुतः उसे प"िचमी राष्ट्रों की मलिन हृदयता क्षुब्ध करती है। उसे तो तीसरे युद्ध की पृष्ठभूमि ही इन खोखली वार्ताओं में मात्र परिलक्षित होती है।''[84]

यदि तृतीय महायुद्ध रासायनिक रूप में हुआ तो इसमें काफी संख्या में एटमबम, हाइड्रोजन बम तथा न्यूक्लियर बम फेके जायेगे। इसके लिए कम, मध्यम तथा लम्बी दूरी के मिसाइलें प्रयोग में लायी जायेगी। बर्टन्ड रसल के अनुसार ''यह परमाणु बम तापमय बादल पैदा कर देंगे। जो वायु में घुलकर समस्त भूमण्डल को मनुष्यों, जानवरों तथा वनस्पतियों से विहिन कर देंगे।''

यदि इस महायुद्ध को जैविकीय युद्ध का स्वरूप दिया जाय तो सम्पन्न दे"ा दूसरे दे"ाों में विषैले जीवाणुओं से युक्त बम गिरायेगें जो भयंकर महामारियाँ फैलायेगे तथा पृथ्वी और उसपर उगे वृक्षों में फसलों के विष भर देगे। फलतः

[82] राजेन्द्र कि"ाोर : चौथा सप्तक – परिणाम, पृ0 79
[83] गोपाल दास नीरज – प्राणगीत
[84] डा0 देवराज : नई कविता की राष्ट्रीय चेतना, पृ0 265

विषपूर्ण अनाज फल तरकारियाँ खाकर मानव महामारी से ग्रस्त होकर नष्ट हो जायेगे। यह बम नर को नपुंसक तथा मादा को बाँझ बना देगे। फलतः सृष्टि का क्रम रूक जायेगा और समस्त जीवधारी समाप्त हो जायेगे।

तृतीय महायुद्ध की आ"ांका सभी साठोत्तरी कवियों में विद्यमान है। लेकिन गिरिजा कुमार माथुर जैसे विज्ञान काव्य के रचयिता उससे और भी अधिक त्रस्त और भयभीत होगे। उन्होंने कविताओं में युद्ध को अव"यम्भावी बतलाया है। साथ ही 'कल्पांतर' संग्रह की भूमिका में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है – ''युद्ध और शांति प्रसार के लिए प्रयुक्त नवीनतम् टेक्नोलाजी द्वारा रासायनिक उत्पादनों और उनसे निकले खतरनाक कूड़े–कचरे ने वन, पर्वत, सागर, नदियों, वायु मण्डल और पृथ्वी का निकट अंतरिक्ष क्रम"ाः विषाक्त होता जा रहा है। यदि सैन्यवादी दबावो के कारण अणु युद्ध छिड़ गया तो पृथ्वी का जीवन क्रम ही समाप्त हो जायेगा।''[85]

fu"d"k

इसमें औद्योगीकरण, औद्योगिक क्रांति, भारत में औद्योगिक क्रांति, औद्योगिक क्रांति का प्रभाव, औद्योगिक विकास का पर्यावरण पर प्रभाव, मनुष्य का मशीनीकरण तथा साहित्य पर विज्ञानवाद का प्रभाव दिखाया गया है। साहित्य पर विज्ञान और औद्योगिक विकास का प्रभाव किस प्रकार पड़ा है यह दिखाने का प्रयास किया है। पर्यावरण असंतुलन का प्रभाव न केवल विज्ञान या अन्य विषय ही अभिव्यक्त करते है बल्कि साहित्य भी इससे अछूता नही है। इसलिए आधुनिक हिन्दी कवियों ने पर्यावरण चिंतन को भी अपना विषय बनाया जो समकालीन कवियों के लिए आधार भूमि का कार्य करती है।

[85] गिरिजा कुमार माथुर : कल्पांतर (भूमिका), पृ0 6

v/;k;&ikp

समकालीन हिन्दी कविता में पर्यावरण चिंतन

i;kZoj.k ds ?kVd vkSj dfork esa mudh vfHk0;fDr

1- i`Foh
2- iRFkj
3- taxy
4- ikuh
5- ufn;k¡
6- leqnz
7- o`{k

fu"d"kZ

i;kZoj.k d ?kVd vkj dfork e mudh vfHkO;fDr

आका”ा, वायु, जल, भूमि और अग्नि पर्यावरण के प्रमुख घटक है। पर्यावरण के घटकों के पारस्परिक व्यवहार द्वारा प्रकृति का निरंतर संतुलन बना रहता है। यदि कोई भी घटक सीमा से बाहर निरंतर उपयोग में आता है तो पर्यावरण में असंतुलन होने लगता है। इसी प्राकृतिक असंतुलन का नाम प्रदूषण है।

जगत उत्पत्ति काल से ही पर्यावरण संरक्षण का प्रादुर्भाव हुआ। मानव द्वारा सर्वप्रथम साँस लेकर छोड़ते तथा मलमूत्र एवं पसीने का त्याग करते ही प्रदूषण आरम्भ हुआ। प्रदूषण की अवधारणा आज की ही हो सकती है। किन्तु इसकी स्थिति प्रकृति के आदि गर्भ से है।

सभ्यता के अनुसार प्रदूषणों के रूप परिवर्तित होते रहे है। आदि मानव द्वारा भोजन तथा आवास आदि की व्यवस्था के साथ अन्न, जल, लकड़ी आदि का उपयोग करने से प्रकृति में असंतुलन एवं दोष बढ़ना शुरू हुआ, प्रदूषण के दुष्प्रभाव से बचने के लिए ऋषियों ने मनुष्यों को अवगत कराया है। वेदों के अनुसार हम ज्ञान–विज्ञान की उन्नति में लगे रहे, उसमें बाधक न बने। प्रकृति की प्र”ांसा के विषय में कहा गया है कि प्रकृति देवी के सौन्दर्य को देखो, उससे प्रसन्नता को प्राप्त करो, जो मूर्त रूप में भगवान का काव्य है। प्रकृति नियमों के अनुसार अपना जीवन व्यतीत करों।

आदि मानव द्वारा भोजन तथा आवास आदि की व्यवस्था के लिए अन्न, जल, लकड़ी आदि का उपयोग करने से इस प्रकृति में असंतुलन व दोष बढ़ना शुरू हुआ। परन्तु ऐसा नही था कि प्रदूषण के दुष्प्रभाव से मनुष्य अवगत न रहा हो। इसलिए ऋषियों ने मनुष्यों को मनन”ील होकर दिव्य समाज तथा स्वर्गीय वातावरण बनाने का आदे”ा दिया। हमारी भारतीय संस्कृति में आरण्यक जीवन जीने के लिए प्रेरणा दी जाती रही है। प्राचीन काल में गुरूकुलों एवं आश्रमों की स्थापना नदियों के संगमों पर और पहाड़ों की तलहटियों में की जाती थी। प्रकृति के सीधे सम्पर्क में रहने से जीवन सरल एवं कृत्रिमता से रक्षित रहता है। मनुष्य का मन, बुद्धि और शरीर शुद्ध एवं स्वस्थ रहता है। जीवन और पर्यावरण का अन्योऽन्य

सम्बन्ध है। इसलिए वैदिक काल से मानव दीर्घायु, सुस्वारथ जीवन शक्ति, प"ा–कीर्ति, धन एवं विज्ञान के प्रति जागरूक रहा।

केवल हिन्दू धर्म ही नही वरन् इस्लाम धर्म में भी प्रकृति को पूजनीय माना गया है। इस्लाम के अनुसार 'प्रकृति विरासत में प्राप्त हुई है। जिसे सजोना व सँवारना प्रत्येक मुस्लिम का कर्त्तव्य बताया गया है।' इस प्रकार धर्म ने भी प्रकृति को देवी बताया है। प्रकृति सौन्दर्य की प्र"ांसा करते हुए अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि जॉन कीट्स ने कहा है – ''प्राकृतिक सौन्दर्य ही वास्तविक सौन्दर्य है। इस सौन्दर्य को प्राप्त करने के प"चात् कुछ भी अवि"ाष्ट नही रहता।''[1]

बौद्ध काल में नगर योजना बद्ध बनाये जाते थे। भिक्षु खुले वातावरण एवं वनों में एकत्र होते थे। प्राचीन भारत में मानव का मुख्य ध्येय प्राकृतिक व्यवस्था के साथ तारतम्यता रखना था। धर्म"ाास्त्र, उपनिषदों एवं मनु आदि ने सदैव तारतम्यता पर जोर दिया है। क्योंकि वन एवं प्रकृति जीवन को एक नि"चत दि"ाा प्रदान करते है। प्राचीन काल में मानव अपनी चेतना का विकास आस–पास की भूमि से करता था।

पृथ्वी, जल, वायु, आका"ा, चन्द्र और सूर्य आदि से समस्त पृथ्वी मण्डल का पर्यावरण बनाता है। इन पर्यावरण तत्वों के संरक्षण के लिए वैदिक चिंतन में इन्हें देवता माना गया है। प्रकृति के जिन पदार्थों से हमारे शरीर का निर्माण और पालन हो रहा है। उनका संरक्षण तन, मन, धन से करने का आदे"ा दिया है। शुद्धता एवं पवित्रता सृष्टि के पदार्थों का स्वभाव है। उसके निवारण के विषय में भी वैदिक वाङमय में भी वर्णन उपलब्ध होता है। प्रदूषण निवारण के लिए यज्ञ हवन अत्यन्त सुगम तथा श्रेष्ठ साधन बताया गया है। जिससे वायु, जल और अन्नादि की शुद्धि होती है। वनों की रक्षा प"ा–पालन, शौच एवं अहिंसा के बिना यज्ञ संभव नही है। प्राचीन काल में वृक्ष को काटना, नदी का पानी दुषित करना, वायु शुद्धि एवं भूमि शुद्धि निमित्त यज्ञ करना और जीव–जन्तु संरक्षण की धारणा उपलब्ध होती है।

[1] मानव एवं पर्यावरण, पृ0 – 25।

वर्तमान कालीन मानव निर्दयता से पेड़ों को काट रहा है। कारखानों से निकलने वाले जहरीले रसायनों को पानी में छोड़ रहा है। जिसके फलस्वरूप वर्षा का अभाव सूखा पड़ना, धरती के अंदर पानी भी समाप्ति एवं वायु प्रदूषण बढ़ता ही जा रहा है। प्राचीन काल से मध्यकाल तक पर्यावरण पर अत्यधिक ध्यान दिया जाता रहा है। वर्तमान पर्यावरण प्रदूषण की समस्या का सामना कर रहा है। अतः सबसे महती आव"यकता इस बात की है कि वर्तमान एवं भावी पर्यावरण को शुद्ध रखने की दृष्टि से जनसंख्या पर नियंत्रण किया जाना अनिवार्य है। कम जनसंख्या, कम गति"ाीलता व तकनीकि संसाधनों का कम दोहन प्रकृति के संतुलन को बनाए रखने में सहायक सिद्ध होते है।

आधुनिक युग में वृक्षों के महत्व को समझकर सारे वि"व में पर्यावरण शुद्धि के उपायों का प्रयास किया जा रहा है। हर प्रकार के लोगों के मन मस्तिष्क में पर्यावरण संरक्षण की धारणा को बैठाने का प्रयास हो रहा है। स्थान–स्थान पर वृक्ष वाटिका एवं वनों को लगाया जा रहा है। प्रत्येक निर्मित स्थान पर संरक्षित सूचित चित्र एवं पट्ट लगाए जा रहे है। विद्वान लोग पत्रिकाओं, आका"ा वाणी केन्द्रों एवं दूरद"ार्न केन्द्रों से पर्यावरण संरक्षण सम्बन्धी विचारों को प्रकट करते है। पर्यावरण संरक्षण विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में जाकर पर्यावरण संरक्षण के प्रति छात्र–छात्राओं को जागरूक बनाए रखने, भाषण एवं गोष्ठियों का आयोजन करते है।

पौराणिक युग में ऋषि, महाकवि, नाटककार एवं ग्रन्थकार ने लोगों से पर्यावरण संरक्षण सम्बन्धी मानसिक चिंतन बनाए रखने के लिए अपने ग्रन्थों में प्रकृति के तत्वों को देवता का रूप देकर उसे शुद्ध रखने के लिए स्तुतियाँ की है। गंगा जैसी नदियों को मोक्षकारिणी बताकर एक धारणा बना ली गई। वृक्षों को काटने से पाप और लगाने से पून्य मिलता है। भूमि माता के समान और आका"ा को पिता के समान बताया गया है। प"ाु–पक्षियों को देवी–देवताओं के वाहन का प्रतीक बताया गया है।

पर्यावरण मंत्रालय ने कहा है – पर्यावरण बिगड़ने के चार कारण है। – जनसंख्या वृद्धि, प्रदूषण फैलाने वाली तकनीके, भोगवाद और गरीबी। गरीबी भोगवाद के कारण पैदा होती है। गाँव में दूध का उत्पादन होता है। लेकिन यह गाँव के बच्चे को नहीं मिलता है। माँ–बाप टेलीविजन खरीदना चाहते है। इसलिए दूध बेचते है। हमारे राजा महाराजा, बगीचे लगाते थे और ि"ाकार खेलते थे, लिहाजा गरीब को खेती के लिए, अच्छी जमीन नही मिलती थी। आज हमारे शहरवासी चाहते है कि वे कार से घूमे और कार्बन डाई आक्साईड को सोखने के लिए गाँव में जंगल लगाएँ जाए, इसलिए गाँव के लोगों को खेती के लिए अच्छी जमीन नही मिलती है। यदि शहरवासी कार को छोड़ दे तो कार्बन डाई आक्साईड सोखने की जरूरत नही रहेगी। गाँव के लोग समृद्ध हो जायेगें। क्योंकि पर्यावरण की एक मात्र समस्या भोगवाद है। गलत उत्पादन एवं उपभोग ही पर्यावरण की समस्या का कारण है। सुख मनुष्य का अंतिम लक्ष्य ही है। पर्यावरण नीति के सिद्धान्तों में कहा गया है कि 'विकास के अधिकार' की पूर्ति होनी चाहिए। यह नही कहा गया कि 'सुख के अधिकार' की पूर्ति होनी चाहिए।

हमने पर्यावरण को सुख की एक वि"ोष तकनीक से जोड़ा है। लक्ष्मी जी का वाहन उल्लू बताया गया है। गणे"ा जी का वाहन चूहा और दुर्गा का वाहन शेर। गाय को माता कहा गया है। इससे एक तरफ व्यक्ति के मन में इन जीवों के प्रति आदर एवं करूणा बैठाई गई है। तो दूसरी ओर मनुष्य का ध्यान भौतिक संसार से परे यानि भोगवाद से हटकर पर्यावरण एवं आत्मीय सुख से जोड़ा। इसी क्रम में अनेक परम्पराएँ भी बनाई गई है। जिनसे वनस्पतियों का संरक्षण होता है। आँवला नवमी के दिन आँवले के वृक्ष की पूजा करना, उसके नीचे बैठकर भोजन करना, वि"ोष दिनों पर तुलसी या नीम का विवाह कराना वृहस्पति गृह की शांति के लिए केले की पूजा करना, शनि की शांति के लिए पीपल की पूजा करना।

प्रकृति अपनी सजीवता और ताजगी से अपने सौन्दर्य और रंगीन साक्षात से तथा अपनी मानव सम्बन्धों से जूड़ी तात्कालिकता से कवि को इतना कच्चा माल देती है कि उससे न जाने कितनी, स"ाक्त प्राणवान, और चेतनामयी रचनाएँ तैयार

हो जाती है। लेकिन मानव प्रकृति का उपभोग करता है और उसे लगातार नुकसान पहुँचानें का प्रयास करता है। मनुष्य प्रकृति को आये दिन नष्ट कर रहा है जिससे प्रकृति और मानव के बीच जो संतुलन बना था, वह बिगड़ रहा है।

पर्यावरण चिंतन को विभिन्न घटकों के माध्यम से व्यक्त किया गया है। जो निम्नलिखित है –

1- i`Foh

पृथ्वी सम्पूर्ण ब्राह्मण्ड में अपनी स्थिति, निर्मित तथा वातावरण के कारण विशिष्ट मानी गई है। जीवन निर्माण तथा जीवन धारणा के अनुकूल परिस्थितियाँ केवल इसी ग्रह पर विद्यमान है। यही पर पंचतत्त्वों का ऐसा सुनिश्चित समतोल है जिसके कारण जीवन की उत्पत्ति तथा संचालन हो सकता है। जल और वायु दोनों तत्त्वों जो जीवन के लिए आवश्यक है इन्हीं तत्त्वों से जीवन संचालित होता है। पृथ्वी हम सभी प्राणियों की माता है। यह रसवती गंधवती है। इसके अन्तर्गत षडरस प्राप्त है जो अन्न, फल, फूलों में व्याप्त हो जाते हैं। पृथ्वी ही अवनी है– 'इति अवनी' अर्थात् – जो सबका आधार बनकर रक्षा करती है, उसी कारण पृथ्वी विष्णु रूपा है, वैष्णवी है, परिपोषक है पालक है। वसुन्धरा है पृथ्वी–'वसूनी धारयति इति वसुधा' अर्थात् जो बहुमूल्य वस्तुएँ सुवर्ण–रजत–रत्नादि धारण करती है वह वसुन्धरा है। पृथ्वी गो–अर्थात् गतिशील भी है। पृथ्वी अपनी धूरी पर घुमती हुई सूर्य के चारो ओर चक्कर लगाती है। गतिशीलता ही पृथ्वी का प्राणतत्त्व है। अथर्ववेद में सर्वत्र पृथ्वी माता की अभ्यर्थना की गई है। जिस पर वृक्ष सम्पदा विराजित होती है उस धरती की हम प्रार्थना करते हैं। जो पृथ्वी अनेक औषधियों को धारण करती है वह हमारे लिए शुभ हो। वेद कालीन ऋषि मुनि जल चक्र, पृथ्वी पर उपस्थित वृक्ष–पादप–जीव जन्तुओं के गहन सूक्ष्म अन्तः सम्बन्धों से परिचित थे। अतः अवनि माता को नमन करते हुए कहते हैं– अन्न उत्पन्न करने वाली पंचभूतों से व्याप्त वर्षा के जल से सिंचित पवित्र–हमारा पालन करें। पृथ्वी माता केवल जीवनदात्री व

पालन–पोषण करने वाली ही नहीं प्रत्युत जीवन में माधुर्य का संचार करने वाली भी है। सम्पूर्ण जीवन आनन्द की अभिव्यक्ति है। माधुर्य ही जीवन का सार है।

पृथ्वी जल को धारण करती है। जल के सारे संसाधन नदी, तालाब, सरोवर, बावड़ी, झरने आदि पृथ्वी में ही अवस्थित हैं। अतः मनुष्य जाति का यह कर्तव्य है कि वह पृथ्वी को माता समझे। उसे गंदा न करे। जल संसाधनों को शुद्ध रखे। वृक्ष संपदा को नष्ट न करे। प्राणियों को अकारण न मारे। प्रकृति कार्य–कलापों में अपनी ओर से हस्तक्षेप कर उसका संतुलन न बिगाड़े।

भारतीय संस्कृति में माता का मान सर्वोपरि है। माँ ही प्रथम गुरु है, माता ही साक्षात् ईश्वर है अतः पूज्या है, आराध्या है। पृथ्वी भी माता है। माताओं की माता आद्य माता है। पर्यावरण संरक्षण के लिए यह भावनात्मक सम्मान दृष्टि अत्यन्त आवश्यक है। अपने पर्यावरण और परिसर को शुद्ध रखकर ही मनुष्य सुख, शांति व समृद्धि प्राप्त कर सकता है। हमारी संस्कृति में यज्ञ का विधान शुद्धि के लिए किया गया है। यज्ञ जहाँ बाहरी वातावरण को शुद्ध व सुगंध युक्त बनाता है वहीं ध्यान तथा योग द्वारा अन्तः प्रकृति को संतुलित रखा जा सकता है।

पर्यावरण संरक्षण का प्रश्न विश्वजनीन है। एक व्यक्ति, एक उद्योग या एक राष्ट्र के क्रिया –कलापों से सारा विश्व प्रभावित होता है। हवाओं की तथा जल की विकिरणों की तथा प्रदूषित तत्त्वों की कोई सीमा रेखा नहीं। मानव जाति का भविष्य धरती से जुड़ा है। धरती के जैव, अजैव पदार्थों से आबद्ध है अतः वह जितने उत्तरदायित्वपूर्ण ढंग से व्यवहार करेगा, उसका भावी उतना ही सुरक्षित व सुख शांति व समृद्धि से परिपूर्ण होगा। किन्तु मानव क्रिया–कलापों के दुष्परिणामों के रूप में प्रतिवर्ष पेड़–पौधों व पशु पक्षियों की अनेक प्रजातियाँ सदा के लिए समाप्त होती जा रही है। ग्लोबल वार्मिंग के कारण धरती का तापमान प्रतिवर्ष बढ़ता जा रहा है। वर्षा कम और अनियमित होती जा रही है। सूखे की चपेट में विशाल भू–भाग आते जा रहे हैं। जलस्रोत सूख रहे हैं। घास चारा–तक मिलना दुभर होता जा रहा है। पशु पक्षी भूख–प्यास से मर रहे हैं। रेगिस्तानों का विस्तार हो रहा है।

प्राणियों के प्राकृतिक आवास लुप्त होते जा रहे हैं। नमी के अभाव में मृत धरती का विस्तार चिंता का विषय बनता जा रहा है। पृथ्वी के सारे जीव–जन्तु लुप्त हो जा रहे हैं। मानवीय गतिविधियों से पृथ्वी के पर्यावरण को काफी तेजी से नुकसान हो रहा है। जिससे प्रकृति पर गंभीर खतरा मंडरा रहा है। मनुष्य धरती को इस कदर बर्बाद करने पर तुला है और खतरों की ऐसी फसलें रोप रहा है कि बिमारियों की बाढ जैव विविधता के विनाश और समुद्र में मौत की लहरों से प्रकृति एक झटके में तबाह हो जाय।

प्रगतिशील कविता के सबसे प्रगतिशील और जन से सम्पर्क स्थापित करने वाले, महत्वपूर्ण कवि बाबा नागार्जुन का सम्बन्ध भी इस धरती माँ से है, इस जमीन से हो, इस पृथ्वी से जो हमारा भरण पोषण करती है। अपनी माँ तो केवल जन्म देती है लेकिन धरती माँ तो उसे पाल–पोश कर बड़ा करती है। किन्तु आज का मानव अपने अंधाधुंध भौतिक विकास के आगे धरती माँ अनेक तरह से कष्ट, पहुंचा रहा है। वह अनेक विषैली खादों का प्रयोग करके धरती माँ के हृदय में जहर घोल रहा है। वह चाहता है कि धरती माँ अपना कलेजा निकाल कर उसके सामने रख दे, बाबा नागार्जुन धरती माँ की इस दुर्दशा को देखकर दुखी होते है और आज के मानवीय कुकृत्य पर उसे धिक्कारते है। वह कहते हैं धरती केवल धरती है कोई पेन्हाई गाय नहीं है कि जब चाहे उसे दूह ले, उससे दूध निकाल ले। वह चावल या गेहूँ की ढेर नहीं है कि उसका कुश बनाकर उसे उठाले तथा उसको मण्डियों में बेंच दी। वह आटोमोबाइल भी नहीं है कि स्विच दबाकर ड्राइव करोगे। वह सचल–अचल वस्तुओं की जननी सर्वे सहनशीलता अन्नपूर्णा वसुन्धरा केवल स्तुति नहीं कठोर परिश्रम माँगती है–

> ''चाहती आई है सदा से धरती
> कर्षण–विकर्षण–सिंचन–परिसिंचन
> वपन–तपन–सेवा–सुश्रुषा
> कर–चरण–तन का संचेतन संस्पर्श
> सुदुर्लभ स्वेदकण

प्रतीक्षातुर नयनों के स्निग्ध–तरल प्रेक्षण
शिष्योचित श्रद्धाभक्ति
पुत्रोचित परिचर्या
पति सुलभ प्रीति
मातृ सुलभ ममता
पितृ सुलभ परिपोषण
चाहती आई है सदा से धरती।''[2]

इतना ही नहीं धरती हमेशा मनुष्य से अविरल, अविराम, अनाविल स्नेह चाहती है। वह सरस, सुस्वादु, रसभरित फल–फूल–अन्न उपजाती है। वह मृत्यु नहीं जीवनदायिनी हैं। उसके शरीर पर उगे झूमते लहराते धान, पौधे, नाश नहीं, निर्माण के प्रतीक के रूप में है। कंद की जड़ में कभी –कभी कोई विस्फोटक पदार्थ नहीं निकला, घास चरकर गाय ने विष नहीं दूध दिया है। धरती का रस सोखकर कभी भी बादल जहर नहीं बरसाता। नागार्जुन कहते हैं मैं इस धरती पर न्यौछावर अपने को कर देना चाहता हूँ। लेकिन आज का मनुष्य हर संभव कोशिशों के द्वारा धरती को नुकसान पहुँचा रहा है। आये दिन, नये उपक्रमों के द्वारा वह एक तरह से धरती का शोषण कर रहा है और उसे पंगु बना रहा है–नागार्जुन इसी ओर इशारा करते हैं –

''बना रहे तन्मय हो नित नए औजार
उपज और निर्माण के साधन
ज्ञान, विज्ञान, मनोरंजन की सामग्री
प्रकृति पराजय के उपादान
मनुज कुल–केतु
श्रम और शांति के सेतु
वैसे ही लक्ष–लक्ष अनागत विधाताओं के हेतु
सुरक्षित है स्वर्ण पुष्पा धरती का कौमार्य
तुम तो ठहरे नाश महानाश के मसीहा

2 धरती–नागार्जुन, पृथ्वी के पक्ष में–पृष्ठ–65

प्रलय का पर्याय है शांति तुम्हारी
कैसे तुम्हें वरेगी अहल्या कुमारी
धरती धरती है।''[3]

इसी क्रम में कवि शलभ श्रीराम सिंह ने भी पृथ्वी की दैनीय दशा और मनुष्य के कुकृत्य से उत्पन्न यह भयानक परिणाम जो आज का सबसे चिंतनीय विषय है की ओर संकेत किया है। मनुष्य द्वारा प्रकृति पर हो अत्याचार और शोषण से एक भयानक दुष्परिणाम सामने आ रहा है। कवि ने इसी चिंता को व्यक्त किया है –

''भूरी चमकदार प्यारी पृथ्वी
नीली पड़ जायेगी एक दिन
फिर काली।
फिर खाली हो जायेगी एक दिन
भूरी चमकदार प्यारी पृथ्वी।
हमारी पृथ्वी
हमारे हाथों मारी जाएगी
एक दिन।''[4]

कवि की यह चिंता है कि पृथ्वी का जो भी क्षय हो रहा है। जिस भी तरह से वह नष्ट हो रही है, उसका जिम्मेदार स्वयं मानव है। कवि भविष्य द्रष्टा है इसलिए वह दूर की सोचता है, जो अतीत और भविष्य को मिलाकर वर्तमान में खड़े होकर लिखता हैं। इसलिए उसे सारी चीजें साफ तौर पर दिखाई देती है। तभी वह कहता है कि यह भूरे रंग की जो चमकदार पृथ्वी हरी–भरी दिखाई दे रही है जिस पर यह जीवन निवास करता है हमारे अर्थात् मनुष्य के कर्मो से ही वह एक दिन नष्ट हो जायेगी। कवि नरेश सक्सेना पृथ्वी के भौगोलिक परिदृश्य के माध्यम से उसका मानवीकरण करता है। पृथ्वी घुमती है तो घूमती चली जाती है। वह अपने केन्द्र पर घूमने के साथ ही मानो एक और केन्द्र की ओर लगातार चक्कर लगा

3 धरती–नागार्जुन,पृथ्वी के पक्ष में–पृष्ठ–66
4 शलभ श्रीराम सिंह : पृथ्वी के पक्ष में, पृष्ठ–66

रही है। इस दौरान वह आधे हिस्से में अंधेरा और आधे में उजाला करती है। कहीं रात को दिन तो कहीं दिन को रात करती है। इसी क्रिया के दौरान ऐसा महसूस होता है कि कभी–कभी वह कॉपती है ऐसा होने पर लगता है कि पृथ्वी अपनी गृहस्थी के पेड़, पर्वत, शहर, नदी,गाँव, टीले सभी को नष्ट कर देगी। कवि कहता है –

> ''तुम्हारी सतह पर कितना जल है
> तुम्हारी सतह के नीचे भी जल ही है
> लेकिन तुम्हारे गर्भ में
> गर्भ केन्द्र में तो अग्नि है
> सिर्फ अग्नि
> कितने ताप कितने दबाव और कितनी आर्द्रता से
> अपने कोयलों को हीरो में बदल देती हो
> किन प्रक्रियाओं से गुजर कर
> कितने चुपचाप
> रत्नों से ज्यादा रत्नों के रहस्यों से
> भरा है तुम्हारा ह्रदय।''[5]

पृथ्वी के इस प्राकृतिक सौगात जो समस्त जीवों के लिए आवश्यक है, सभी उसका लाभ उठाते हैं। पृथ्वी के सतह और उसके सतह के नीचे भी जल है। पृथ्वी अपने गर्भ में तमाम खनिज पदार्थों और बहुमूल्य खजानों को छिपाई है। जिसको मनुष्य प्रयासरत होकर बाहर निकाल रहा है और उसे खोखला बना रहा है। धरती कितना मनुष्य को देती है इसका तनिक भी ख्याल उसको नहीं है। धरती ने इस मायावी संसार को रंग–गंध, स्वाद, कला–विज्ञान संस्कृति की प्यास, इतराता यौवन, तमाम अठखेलियाँ आठों सिद्धियाँ आदि चीजें सम्पन्न करती है। लेकिन इसके बदले में उसे क्या देता है? क्या सौंपता है? कवि इसी ओर संकेत करता है –

5 पृथ्वी–नरेश सक्सेना,पृथ्वी के पक्ष में–पृष्ठ–207

''बदले में मनुष्य /क्या सौपता है सौगात।
तरह–तरह के जहर/किस्म किस्म के तनाव
एक कपूत की
माँ की तरह वसुधा
इन सौगातों को
अपने आँचल में सहेज लेती है
फिर से बाँटने लगती है
सुख–समृद्धि और सुधा
सचमुच कितना देती है धरती
कितना सहती है वसुधा।''[6]

वास्तव में धरती माँ का कितना एहसान है हम पर, इस मानव जीवन पर, इस सामाजिक और प्राकृतिक परिवेश पर। वह हमारे दुख दर्द को अपने आँचल में समेटती हुई खुद अपने को कष्ट में रखकर हमें सुख देती, हमें समृद्ध करती हुई, हमारे लिए सुधा जैसा योगदान प्रदान करती है। तुम्हारा हृदय कितना अथाह है जो मानव की अनंत इच्छाओं की पूर्ति करती हो। इसी क्रम कवि हेमंत शेष से कहना चाहते हैं कि इतना होने के बावजूद मानव अपनी आदतों से बाज नहीं आता है। वह अपने कुकृत्यों से धरती माँ को लगातार छल रहा है। कवि सोचता है–

''रूको कि तुम्हें दिखलायी दे
हमारी भाषा
जिसमें हम कपड़ा पहन रहे हो
वे दीप्तियाँ
जो इसके अर्थ में उपजें और
शब्दों के वेश में तुम्हारे निःस्सीम तक पहुँच सकें
× × × × × × ×
वाष्प से बने बादलों की शक्ल में नदियाँ
मिलेगा।

6 वसुधा–वेद प्रकाश अमिताभ, पृथ्वी के पक्ष में–पृष्ठ–232

खार का नमक और किताबें
लोग सागर–तटों पर शीर्षासन करते मिलेंगे
हत्यारे भी मिलेंगे, संत और कसाई भी
इतना कुछ मिलेगा
कि सब कुछ गड्‌ड–मड्‌ड होता जान पड़ेगा।''[7]

समकालीन कवि राजेन्द्र मिश्र पृथ्वी के अंदर उत्पन्न उन हलचलों को सुनते हैं जिसमें उसकी कराह, उसकी पीड़ा, उसकी वेदना, उसकी तकलीफें उसका दर्द विद्यमान है। वह बताते हैं किस प्रकार से धरती माँ अपने सीने में असीमित दर्द को छिपाए हैं। असंख्य जिंदगियों के लाशों को अपने हृदय में रखी है। जिसका न कोई आदि है और न कोई अंत है और न ही उसका कोई उचित पैमाना है। आज के इस समाज में मनुष्य का व्यवहार प्रकृति से बिगड़ रहा है। वह प्रकृति को लगातार नुकसान पहुँचा रहा है। इन सारी चीजों के दौरान कवि के मन में लगातार सवाल खड़ा हो रहा है–

''पहचानती हो
अगर एक मिनिट एक साथ
सारी दुनिया में ऐसा आये
जब धरती कांपे
और सब कुछ तबाह हो जाये
सब हो जाये विराम
और सब जगह एक अमंगल हो
बिना पेड़ पौधों का
एक पहाड़ हो
जिस पर पानी न हो
एक समुद्र हो जो सूख जाये।''[8]

[7] पृथ्वी को संबोधित–हेमंत शेष, पृथ्वी के पक्ष में–पृष्ठ–297
[8] तुम अपने–राजेन्द्र मिश्र, साहित्य भारती, के–71 कृष्ण नगर, दिल्ली–110051, पृ0सं0–2002

अब ऐसा लग रहा है कि धरती माँ के सब्र का बाँध टूट रहा है। वह आदमी के बोझ तले दब रही है। वह मनुष्य के भार को ढोने में असमर्थ हो रही है। भूकंप उसकी अंतः आत्मा को कम्पित कर रहा है जिससे सब कुछ खत्म होने की आशंका उत्पन्न हो रही है। मनुष्यों का कुकृत्य और प्राकृतिक आपदाएँ धरती माँ के सारे सपनों को चूर–चूर कर दिया है।

''यह दूर–दूर तक फैला
गिरे हुए मकानों का
सजी हुई दुकानों का
ऊँची अट्टालिकाओं का
विस्तार से फैले सामानों का मलबा
जिसके नीचे करोड़ों लोग
दफन हो गये हैं।''[9]

और अंत में कवि अपने आपको, अपनी धरती माँ को, यह विश्वास दिलाने का प्रयास करता है। कि सब कुछ खत्म होने के बाद भी फिर से एक नई दुनिया का निर्माण होगा। जिससे धरती माँ के सब बच्चे पहले की तरह ही रहेंगे, बसेंगे। यही कवि की आशावादी दृष्टि है–

''धरती माँ को दो यह विश्वास
एक नई दुनिया रचेंगे
जिससे धरती माँ के सब बच्चे
पहले की तरह बसेंगे/जो कुछ खत्म हुआ
वह हो जायेगा इतिहास /समय के खिलाफ/यह जंग
जारी रहेगी/सब कुछ खत्म होने के बाद भी/
यह दुनिया हमारी रहेगी।''[10]

मानव संस्कृति का उसके जीवन परिवेश से खास संबंध है। मनुष्य के सामजिक संबंधों के आधार पर ही उसकी संस्कृति का विकास या ह्रास होता है।

[9] तुम अपने–राजेन्द्र मिश्र, साहित्य भारती,के–71 कृष्ण नगर, दिल्ली–110051, पृ0सं0–2002
10 तुम अपने–राजेन्द्र मिश्र,साहित्य भारती,के–71 कृष्ण नगर, दिल्ली–110051, पृ0सं0–2002

जब मानवता से युक्त संस्कृति का विनाश हो जाता है तो मनुष्य प्रकृति पर आक्रमण करने लगता है। इसके परिणाम स्वरूप प्रकृति के विनाश के साथ–साथ समाज का और अंततः मनुष्य का नाश हो जाता है। प्राकृतिक आपदाएँ पहले भी आती थी, किन्तु आज कितनी भी प्राकृतिक आपदाएँ आ रही है। उनका मूल कारण मनुष्य का प्रकृति पर करने वाला अत्याचार और शोषण है। 'सावित्री डागा' तीखे शब्दों में उस पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करती है–

> ''धरती का हरा–भरा चीर हरण करके
> मुद्राराक्षस का क्रूर अट्टहास
> जैसे प्रकृति माता से/खुला बलात्कार/इससे भी कहीं
> बाद अकाल भूकम्प के प्रहार
> विनाश के नित नये रूप दिखते बारम्बार।''[11]

अपने समय और समाज से सजग रचनाकार अपनी रचनाओं के द्वारा यह चेतावनी देते रहते हैं कि पारिस्थितिकी के महत्व को अनदेखा करके प्राकृतिक सम्पदाओं का जो अंधाधुंध दोहन हो रहा है उसका परिणाम भयानक होगा। 'मैं तू' नामक कविता में त्रिलोचन पृथ्वी के सर्वनाश की भविष्यवाणी कर रहे हैं।

> ''इस पृथ्वी की रक्षा मानव का अपना कर्त्तव्य है
> इसकी वनस्पतियाँ, चिड़ियाँ और जीव–जन्तु
> उसके सहयोगी हैं इसी तरह जलवायु और सारा आकाश
> अपनी–अपनी रक्षा मानव से चाहते हैं
> उनकी इस रक्षा में मानवता की भी तो रक्षा है
> नहीं, सर्वनाश अधिक दूर नहीं।''[12]

इस प्रकार पर्यावरण के घटक पृथ्वी की महत्ता को समकालीन कवियों ने अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है।

---

11 शताब्दी के सरहद पर–सावित्री डागा पृ0 34–35, पंचशील शोध समीक्षा:स0हेतु भारद्वाज,वर्ष–2 अंक–8, अप्रैल –जून 2010, पृ0सं0–08

[12] प्रतिनिधि कविताएँ–त्रिलोचन, पृ0 34

2- iRFkj

पर्वत प्रकृति की एक बहुमूल्य सम्पदा है। जिस प्रकार से नदी, समुद्र, पृथ्वी, आदि के महत्व को रूपायित किया गया है, उसी प्रकार से पर्वतों का भी मानव जीवन में बहुत महत्व है। वह उसी प्रकार मानव जीवन की रक्षा करते है और जीवनदायी होते है। वह शांत मनुष्य की तरह खड़ा रहता है। जो तमाम धूप, वर्षा, हवा, सभी के थपेड़ों को सहता है। वह रात के अंधेरे में कभी सोता नहीं है वे उस वक्त अपनी वनस्पति को दुलारता है। पहाड़ों पर उगने वाले घास, उनके कण, पेड, पत्तियां और पत्थर को कौन गिन सकती है। किन्तु इस सबका हिसाब उसके पास रहता है। किन्तु आज पहाड़ों की अपनी स्वाभाविकता खत्म हो गयी है। जिसका जिम्मेदार सिर्फ मनुष्य है। मनुष्य अपने स्वार्थ के लिए उसे नष्ट कर रहा है। उनके रहन–सहन को अपना निवास स्थान बना रहा है। समकालीन कवि प्रयाग शुक्ल की चिंता है– वह कहते है–

''पहाड़ियों पर बन गये
ईट, सीमेंट के मकान!
बिछ गये बहुत से अजनबी तार!
चमकती है कही–कही
पहाड़ियां रात में!
हम सराहते है यह दृ"य भी।
पर ठीक उसी वक्त
कहां से आती है एक कराह भी?''[13]

यह मात्र प्रयाग शुक्ल की ही चिंता नहीं है बल्कि प्रत्येक समकालीन कवियों की है। पहाड़ों को तोड़कर उसको समतल बनाया जा रहा है। बड़ी–2 मल्टीमिडिया कम्पनियों को स्थापित किया जा रहा है। जहाँ पर वातानुकूलित वातावरण तैयार किया जा रहा है। जो मनुष्य की स्वार्थी प्रवृत्ति का परिचायक है। किन्तु उस पहाड़ की रुदन, पीड़ा, वेदना, को कोई नहीं सुनता। ज्ञानेन्द्रपति की बहुत सारी कविताओं

---

[13] अधुरी चीजें तमाम : प्रयाग शुक्ल, राजकमल प्रकाशन, प्रा0लि0, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली–110002, प्र0सं0–1987, पृ0 76

में इस वेदना को, रुदन को सुना जा सकता है। वे धरती पर क्रूर आक्रमण कर उसे तोड़ने–मरोड़ने के चित्र को उभारते है।

''नये दिन के लिए तैयार कर रहे है खुद को।
अब आयेगे पर्वतों के पंख काटने वाले बज्रधर
इन्द्र के वं"ाज / अपनी फटफटिया में भड़भड़िया में।
चौड़े पंजरों वाले ट्रकों के पेट
टायरों तक हवा तक भरते जाएंगे जल्दी–जल्दी।
और धीरे–धीरे चमक बढ़ती जाएगी।
उन चेहरों पर
जिनकी जेब में उन्हें तोड़ने का पट्टा है।''[14]

पूँजीवादी संस्कृति ने व्यापारी वर्ग को जन्म दिया है। यह व्यापारी वर्ग स्वार्थों की खातिर तमाम प्राकृतिक वस्तुओं का शोषण कर रहा है। उसे पता नहीं है कि प्रकृति ने किस प्रकार के एक–2 वस्तु को रच कर बनाई है। इसी ओर ज्ञानेन्द्रपति संकेत करते है–

''जिनकी आग्नेय चट्टानें
धरती की प्राचीनतम रचनाएँ हैं
हिमालय के पर्वत–बलय जिनके –बुतरु
धुँधली आँखे उठाए नेह से निहारते है वे
भूकम्प –तरंगे छोड़ती एड़िया उचका नभ में उठते
हिमालय के बर्फीले–गर्वीले ि"ाखरों के युवमार्थ।''[15]

ज्ञानेन्द्रपति इस तरह हो रही प्राकृतिक क्षति को द"ार्ाते है। आगे कवि इस क्षति से होने वाले दुष्परिणामों की ओर संकेत करता है–

''कि जैसे वह छोटानागपुर के छीजते जंगलों,
मिटटी वनस्पतियों खँखुरते खनिजों की आँख हो
कि क्या धरा है भू में

[14] संशयात्मा – ज्ञानेन्द्रपति, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा0लि0 जी0–7–17, जगतपुरी दिल्ली, पृ0 23
[15] संशयात्मा–ज्ञानेद्रपति, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रा0लि0, जी–7, जगतपुरी दिल्ली, पृ0 24

इन भूधरों की छाँह के गुजर जाने के बाद
वस आतप और विपत।''[16]

इस प्रकार समकालीन कवियों के द्वारा इसकी अभिव्यक्ति हुई है।

3- tixy

भारतीय संस्कृति मूलतः अरण्यों की संस्कृति है। हमारे पूर्वजों ने अरण्यों में रहकर प्रकृति के साथ अर्न्तवाह्य तादात्म्य स्थापित किया। पेड़ों, प"ाु–पक्षियों के साथ गहन आत्मीयता की अनुभूति की। परम विराट सत्ता को, प्रकृति, को कण–कण में अनुस्यूत देखा। वि"व कवि रवीन्द्र नाथ ठाकुर के अनुसार भारत की संस्कृति मूलतः अरण्य संस्कृति है। हमारे द"ीन, साहित्य और संस्कृति का निर्माण अरण्यों में हुआ। ऋषि–मुनिगण अरण्यों में रहकर सत्य संधान करते थे। हमारी सारी ि"ाक्षा संस्थाएं भी शहरों से दूर आश्रमों में अवस्थित थी।

प्रकृति मातृ स्वरूपा भारतीय संस्कृति में प्रकृति को माता माना गया है। ठीक इसके विपरीत पा"चात्य संस्कृति में प्रकृति को भोग्या माना गया है। प"िचम की दृष्टि उपभोग दृष्टि है। उसी कारण धरती का पुरा–2 दोहन करना ही उनका उद्दे"य है। प"ाु–पक्षी, पेड़–पौधे, आदि का निर्माण मनुष्य के लिए ही हुआ है तथा आदमी ही प्रकृति के केन्द्र में है ऐसा उनका वि"वास है। इसी कारण जंगलों का सफाया करना, प"ाुओं को मारकर खा जाना, समुद्रों, नदियों से बड़ी मात्रा में मछलियाँ पकड़ना, धरती की छाती को छलनी करके खदानों से धातुएँ आदि निकलना इन सभी प्रकार के कार्यक्रमों द्वारा वे प्रकृति से अधिक से अधिक पाना चाहते है। प्रकृति को जीतना ही उनका उददे"य है।

किसी भी दे"ा की कम से कम 33 प्रति"ात भूमि वनाच्छादित होनी चाहिए। इसी से पर्यावरण संतुलन संचालित होता है। वन प्रदे"ा वर्षा जलसंचयन के कोष है। प्राण वायु के आगार है। बादलों के कारखाने है और प"ाु–पक्षियों कीटकों के क्रीड़ा स्थल है। सारे वि"व में पेट्रोलियम पदार्थो के अंधाधुंध उपयोग, कोयला, आदि

[16] वहीं, पृ0 24

जलाने, चिमनियों से निकलने वाले धुंए तथा युद्धों के कारण जिस बड़ी मात्रा में कार्बन डाई आक्साइड उत्पन्न हो रही है। उसके दुष्परिणाम ग्लोबल वार्मिंग, ग्रीन हाउस इफेक्ट, आदि को सभी जानते है। इस कार्बन डाई आक्साइड को 'नीलकंठ' महादेव की तरह वृक्ष ही अव"ाोषित कर सकते है। पर दुर्भाग्यव"ा वनों को बढ़ाने की अपेक्षा उसका अंधाधुध विना"ा हो रहा है। दोनों नकारात्मक प्रक्रियाओं के दायरों के बीच मानव तथा प्राणियों का जीवन निरुपाय होकर रह गया है। एक मृत व्यक्ति के दाह संस्कार के लिए कम से कम एक पेंड़ की लकड़ी चाहिए। इतने करोड़ों हिन्दुओं की दाह क्रिया में तो सारा दे"ा वृक्ष रहित रेगिस्तान ही बन जायेगा।

वनों के विना"ा से पर्यावरण पर जो प्रभाव पड़ता है। वह अब क्रम"ाः सामने आ रहा है। हिमाचल की वादियों में वर्षांत बहने वाले झरने, वहाँ की महिलाओं के लिए वरदान थें घर से बाहर निकल कर स्त्रियों, स्वस्थ शीतल जल भर लेती थी पर आज सारे झरने लुप्त हो गये क्योंकि वन समाप्त हो गए। पत्तियों और मृदा में जब जल बिंदु संरक्षित रखने वाले वि"ाालकाय वृक्ष कट गए। पहाड़ नंगे–बचे हो गए। बरसात होती है तो बाढ़ आ जाती है, फिर दो घंटों में सारा जल बह जाता है।

हिमालय की हिम "िालाएं भी पिघल रही है। यह सब मानव के कुकृत्यों का दुष्परिणाम है। वनों में पेड़ पौधों, प"ाु–पक्षियों का बड़ा वैविध्य होता है। वन विना"ा के इन दुष्परिणामों को नजरदांज नहीं किया जा सकता। प्राकृतिक वनों को संरक्षित घोषित कर अत्यन्त कड़ाई से उनकों संरक्षित किया जाना चाहिए।

भारत वन संपदा से सम्पन्न दे"ा था। जहाँ पर अनेको प्रकार के जीव जन्तुओं के साथ–साथ विभिन्न प्रकार के वृक्ष भी भारी मात्रा में पाये जाते है। किन्तु आज उनका इस प्रकार विना"ा किया जा रहा है कि उनका अस्तित्व ही खत्म होने के कगार पर है। इतना ही नही उनमें रहने वाले विभिन्न जीव–जन्तु भी लगभग समाप्त हो रहे है। भवानी प्रसाद मिश्र की सबसे बड़ी चिंता यही है। वह कहना

चाहते है। कि जंगल आज कितनी मानवीय दुि"चंताओं से घिर रह गया है। जिसके कारण इसके भीतर एक प्रकार की कराह सुनाई देती है।

''झांड़ ऊँचे और नीचे,
चुप खड़े आंख मींचे
घास चुप है कास चुप है
मूक शाल, पला"ा चुप है।
बन सकों तो धँसो इनमें
धँस न पाती हवा जिनमें
सतपुड़ा के घने जंगल
ऊँघते अनमने जंगल।''[17]

इन जंगलों में अजगर, पहाड़ियों से सम्पन्न जंगल, शेर, बाघ, मुर्गे, तीतर गीदड, भेडियाँ, हाथी, इत्यादि प्रकार के जानवरों की भरमार लगी है। परन्तु आज ऐसी हालत हो गयी है कि जंगल केवल किताबों के पन्नों में, टेलीविजनों में कैद हो गया है। इसलिए वह आदमी को, कभी–2 स्वप्न के रूप में सामने आता है–

''रात मैंने विचित्र स्वप्न देखा,
मैने देखा कि मेरे सामने का सूना मैदान
एक जंगल में परिवर्तित हो गया है–
जमीन से आका"ा तक फैले एक जंगल में
लम्बी शाखें, लतरें, आका"ा बेलें–
एक–दूसरे के ताने–बाने की तरह बुनी–
जिनसे छनकर धूप नीचे आते–आते
छाया में हो जाती है–''[18]

आदमी की यह स्वप्निक प्रक्रिया लगातार चल रही है। उसका स्वप्न चल रहा है। वह स्वप्न में देखता है– जंगल स्थिर नहीं है वह अगरू के धुंए सा जागर है। वह उसकी खिड़कियाँ लताओं से आच्छादित हो गयी है। सारा का सारा जंगल

[17] सतपुड़ा के जंगल : भवानी प्रसाद मिश्र, पृथ्वी के पक्ष में – पृ0 58
[18] वसंती हवाओं का जंगल – ठाकुर प्रसाद सिंह, पृथ्वी के पक्ष में, पृ0 97

पानी पर गिरे तेल की तरह हिलता है, डालों पर घोंसले उभरते है उसमें उनके बच्चे बेचैन होकर चहचहाते है। वही कही गौरेया है, कही पुस्तकों के पीछे पिड़कुले, कही हवादानों में कबूतर। कोने–कोने में फूल खिलते है, लताएं बढ़ना बंद करके फूलना शुरू कर दिया है और रोम–रोम को इसकी गंध से भर देता है तभी स्वप्न टूट जाता है और आखों के सामने का जंगल अदृ"य हो जाता है। कवि इस स्वप्न दृ"य को देखकर भयभीत हो जाता है। क्योंकि एक समय में पुराने पेड़ों के सानिध्य में चिड़ियों के घोसले थे पुराने पानी में नये पानी के घुसने का शोर था। आसमान थोड़े से बादलों के पीछे पुरा छिपा हुआ था। हमारे चारों ओर हजारों वर्ष पुराना जंगल था जिसे देखकर बसंतागमन महसूस होता था। किन्तु

''आज बौने पौधों के बीच बैठा हूँ मैं महान
फोटुओं, पोस्टरों में बने जंगल और रहे सहे गमलों के बीच
बीज भरा हजार तरह का हरा एकांत भूले हुए
एक समय की जंगली जिसने आरण्यक लिखे थे
सभ्य बना बैठा है फैलते जाते रेगिस्तान में
जितना कम हिमालय उतना कम समुद्र देखते हुए।''[19]

आज जंगल फोटुओं, पोस्टरों के बीच स्थिर कर लिया गया है। कल जो हजारों प्रकार के जीवन से हरा–भरा लाखों करोड़ो घरों जैसा था जहाँ मनुष्य कम थे लेकिन मनुष्यता उनमें अधिक थी। किन्तु आज जैसे–जैसे मनुष्यों की संख्या पृथ्वी पर बढ़ रही है। मनुष्यता का लोप होता गया। मनुष्यता का लोप होने से मनुष्य जीव–जन्तुओं से सहानुभूति छोड़कर उसको नष्ट करने लगा साथ ही उनके रहने वाले निवास को खत्म करने का प्रयास किया। इससे जो हमारी प्राकृतिक धरोहर है उसका ना"ा हो रहा है। मनुष्य सोच रहा है कि ये इन धरोहरों को नष्ट होने पर अगली पीढ़ी को वह क्या देगा? इसीलिए–

'उन्होंने अपने पीपल, अपने चीड़, अपने देवदार
कमरे में एक पटरे पर रख दिए हैं

[19] जंगल के बिना जंगल–लीलाधर जगूड़ी, पृथ्वी के पक्ष में, पृ0 129

कुछ पलंग के नीचे सरका दिए हैं
पहाड़ जाने की खु"ाी में
सारे खिड़की दरवाजे बंद कर दिये हैं।
भूगोल में जिस जंगल ने इतिहास बदला था
उसे कहीं–कहीं भूदृ"य बदलने के काम में लाया जा रहा है।''[20]

जंगल लगातार उजड़ रहे है। ई"वर की सबसे खुबसूरत चीज प्रकृति थी। जिसमें देवताओं का निवास माना जाता था। लेकिन मनुष्य उसको लगातार नष्ट कर रहा है अपनी सुख–सुविधाओं के लिए वह उसका लगातार भोग कर रहा है। जिसके कारण उस जंगल में रहने वाले जीव–जन्तु लगातार नष्ट और विलूप्त हो रहे है। इसके साथ ही क्रुर मानव न केवल जंगलों को काट रहा है बल्कि उनमें रहने वाले जीवों को मारकर उसका उपभोग कर रहा है। आज जरूरत इन्हे बचाने की है। जंगल में हाँका पड़ चुका है। जानवरों का समूह भाग रहा है। सिंह और स्यार भी एक झुण्ड में दुबके एक–दूसरे को ढ़केलते लॉघते भागे जा रहे है। कोई किसी की ओर नही देख रहा है जो जहॉ है वही से भाग पड़ा है। बच्चों को माँद में छोड़कर, पीछे मौत का ढोल बज रहा है, सभी भयभीत और त्रस्त प्राण रक्षा के लिए एक दूसरे से आगे निकल जाना चाहते हैं। मृत्यु की गोद में जहाँ चारों ओर बन्दुकधारी ि"ाकारियों की पाँत खड़ी है और कुल्हाडियां चल रही है पेड़ धड़ाके से गिर रहे है। वह अंधा ि"ाकारी मचान पर छिपा बंदूक की आंख से झोंक रहा है। चारों ओर हथियार बन्द आकृतियां पीछा कर रही है। जंगल के हिरन वे हवा में तैरते चौकड़ी भरते गुजर रहे थे तभी ि"ाकारी ने गोली मारी–

'एक गोली दगी
उसकी कोख में धॉय! वह रूका
जैसे समय की गति रूक गई हो
उसने अपने भागते हुए साथियों की ओर देखा
जैसे तड़पता वर्तमान

[20] जंगल के बिना : लीलाधर जगूड़ी – पृथ्वी के पक्ष में, पृ0 130

भविष्य की ओर देखता हो। वह सिकुड़ा
धीरे–धीरे सिकुड़ता गया
और फिर धरती की गोद में
फैलकर सहन हो गया निस्पन्द।
उसकी बड़ी–बड़ी आँखे!
भय, पीड़ा, मोह, जिजीबिषा
में डबडबाई हुई आँखे!
वे अपने हत्यारे से पूछना चाहती थी कि क्यों?''[21]

एक समय था जब आदिम दृ"य इतिहास की तारीखों के बीच महा–अभयारण रहा होगा। उसमें तमाम जंगली जीव, बेखौफ, बिना भय, के घुमते रहे होगें। जंगली जीवों और मनुष्यों के बीच आपस में सहयोगात्मक प्रवृत्ति भी। तभी तो गाँव की बूढ़ी, औरते भी जंगली जीव की कथाएं सुनाती थी। उस समय कितना घना और फैला हुआ जंगल था। सियार, खिड़कियों पर बोलते थे तथा सुन्दर पक्षी पंख फड़फड़ाते हुए छतों–आंगनों में उतरते थे। टोलियों में शरारती बंदर घूमते थे। किन्तु आज वहाँ से सब कुछ खत्म हो गया है। जंगलों के स्थान पर बड़ी–2 इमारतें बन गई है। वहाँ जंगली सभ्यता की जगह मानवीय सभ्यता विकसित हो गई है। जंगल बिल्कुल नष्ट कर दिये गए है। इसलिए समकालीन कवि सुधीर चन्द्र ठाकुर लगातार इस ओर संकेत कर रहे है। इनकी कविताओं का मुख्य विषय ही प्रकृति और पर्यावरण है। वे स्वाभाविक तौर पर प्रेम, अच्छाई, मनुष्यता और एक बेहतर संसार को तरह–तरह से प्रकट करती है। या उने कम होते जाने या न होने का शोक मनाती है। इसलिए वह कहते है–

''जंगल बचे है हमारी खण्डित स्मृतियों में
स्वप्न में भी नहीं दिखते जानवर
घुँघले से हो चुके हैं उनके आकार
भूल चुके है हम उनकी वि"ोषताएँ
चिड़ियाँ घर में उँघते दिखते है बूढ़े शेर

[21] हिरन : विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, पृथ्वी के पक्ष में, पृ0 251

नाना प्रकार की वाहनों से भरी शहर की संड़कों पर
किसी शोक में डूबे लचर–पचर चलते है।
टूटे दातों वाले प्रशिक्षित हाथी।''[22]

जंगल अब लोगों के स्वप्नों में कभी–2 दिखाई देता है। वह भी जानवर विहीन दिखता है। क्योंकि सभी चीजें लूप्त होने की कगार पर है। तभी तो दुर्लभ होती जीवों की प्रजातियां दिखाई नहीं देता, नीलगायों का समूह, लंगड़ाता हुआ लकड़बग्घा, जेबरे या जिराफ, खूँखते तालाब के किनारों की गीली मिट्टी पर बाघ के पंजों के निशान, आदि कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा है। वहाँ एक प्रकार का उदासीपन छाया रहता है। नष्ट होते जंगल से जंगली जीवों के अंदर एक तरह की निराशा व्याप्त हो जाती है–

''एक घना जंगल
जरा सी चोंच खोल
एक कोयल गाती है विरह गीत
उदासी में डूबता है जंगल
उसके सन्नाटे को चीरती है
अदृश्य हवा की चित्कार।''[23]

समय किसी का इन्तजार नही करता। वह अनवतर बीतता रहता है। एक तरफ यदि प्राकृतिक सभ्यता नष्ट हो रही है तो दूसरी तरफ कृत्रिम सभ्यता लगातार अपना विस्तार कर रही है। दुनियाँ में किसी चीज का अभाव नहीं रहता है। एक के न होने पर वृद्धि रुक नहीं पाती है उसकी भरपाई किसी न किसी तरह होती ही रहती है। इसी ओर समकालीन कवि संजय चतुर्वेदी संकेत कर रहे है–

''जंगल जल जायें
पहाड़ समतल हो जायें
नदियां उड़ जाये हवा में

---

[22] किसी रंग की छाया–सुंदर चंद्र ठाकुर, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा0लि0, जी–17 जगतपुरी, दिल्ली–110051, प्र0सं0–2001, पृ0 30
[23] वही, पृ0 30

लोग नहीं नष्ट होने वाले
चाहे नष्ट हो जाये उनके प्राणाधार
उनके श्रीमान भाग जाये दूसरी दुनियां में।''[24]

इन जंगलों को जलाने वाला, नष्ट करने वाला आखिर है कौन? वह मानव है जो अपने स्वार्थो के खातिर उसे लगातार नष्ट कर रहा है। अपनी सारी सुविधाओं को सम्पन्न करने के लिए जंगलों को काट रहा हे। उनमें रहने वाले जीवों को मारकर उसका –व्यापार विदे"ाों में कर रहा । जंगली जीव अपनी जान बचाने के लिए भाग रहा है।

''जंगल में हॉका पड़ चुका है।/जानवरों का समूह भाग रहा है।
सिंह और स्यार सभी एक झुण्ड में दुबके/एक दूसरे को ढकेलते
लॉघते/भागे जा रहे है/कोई किसी की ओर नहीं देखता/
जो जहॉ है, वही से भाग पड़ा है/ बच्चों को मांद में छोड़कर/
पीछे मौत का ढोल बज रहा है।''[25]

4- ikUkh

धरती पर जल का महत्व अतुलनीय है। उसका संम्बन्ध आत्मिक है। जल ही जीवन का आधार है। और जीवन को चलाने वाली औषधि भी। केदार नाथ सिंह की कविता 'पानी या मै'' इस बात की ओर संकेत करती है कि किस प्रकार आज जल संकुचित होता जा रहा है, किस प्रकार से आने वाले दिनों में जल के लिए जद्दोजहद हो सकती है। क्योंकि मनुष्य ने इसे अपने साधन–सुविधाओं में सीमित कर दिया है। आने–वाले दिनों में यह किसी मंजन की डिब्बी में, किसी ब्र"ा के रे"ाों में, किसी गिलास में केवल देखने योग्य मात्र रह सकता है। मनुष्य इतने पर भी अपने आप को चेत नहीं पा रहा है। उसी प्रकार का संकेत कुॅवर नारायण की कविता पानी का स्वाद में किया गया है। इस कविता में पानी स्वयं अपने महत्व को अभिव्यक्त कर रहा है–

[24] प्रकाश वर्ष, संजय चतुर्वेदी, आधार प्रकाशन, 372/2 सेक्टर–17, पंचकुला–13109, (हरियाणा) प्र0स0–1993
[25] चीजों को देखकर–विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी प्र0सं0–1970

'' पानी कहता–मैं हूँ जीवन
हर स्वाद के लिए जगह है मुझमें,
माध्यमिक है मेरी क्षमताएँ,
समास हूँ विभिन्नताओं के बीच,
रूप में अरुप में अपरूप में
बहती है मेरी समावे"ाी संस्कृति की धाराएँ।''[26]

पानी की, इस आत्मिक अभिव्यक्ति कि 'मैं जीवन हूँ' सार्वभौमिक सत्य है। उसकी यही सार्वभौमिकता उसकी मौजूदगी को व्यक्त कर रहा है। धरती पर विद्यमान सभी जीव जंतुओं और पेड़–पौधों सहित समस्त मानव समुदाय के लिए वास्तविक जीवन को चलाने वाला जल ही है। लीलाधर जगूड़ी की कविता 'चुल्लू की आत्मकथा' में जल के महत्व और उनकी क्षमताओं की ओर इ"ाारा किया गया है–

'' मुझमें भी झलकता है। आसमान
चमकते है सूर्य, सितारे, चाँद,
दिखते है चील, कौवे, और तीतर
मुझे भी हिला देती है हवा
मुझमें भी पड़कर सड़ सकती है
फूल पत्तों सहित हरियाली की आत्मा
रोज कम होता मेरी गन्दगी आत्मा का पानी
बदल रहा है शरीर में
चुपचाप भाप बनकर निकल रहा हूँ, मैं।''[27]

जल, अपनी क्षमताओं के साथ–2 अपने अस्तित्व के प्रति भी चिंता व्यक्त कर रहा है। क्योंकि वह लगातार खत्म या समाप्त हो रहा है। इसके अलावा जो बच भी रहा है वह मानव के कुकृत्यों द्वारा प्रदूषित किया जा रहा है। इस प्रदूषण के कारण पानी गंदला होता जा रहा है। स्वच्छ और निरमल पानी कहीं नजर नहीं

[26] पानी का स्वाद – कुँवर नारायण, नया ज्ञानोदय – सं0 प्रभाकर श्रेत्रिय, अंक 13, मार्च 2004, पृ0 17
[27] नया ज्ञानोदय सं0 – प्रभाकर श्रोत्रिय, अंक–13, मार्च–2004, पृ0 21

आ रहा है। ओंस की बूँद भी प्रदूषित हो रही है। इसका बदन भी काला पड़ रहा है। मनुष्य की आँखों को, पानी की तला"ा रहती है। कवि विजेन्द्र अपनी कविता 'तला"ा' में पानी के इन्तजार में दोआब में आदमी को कराहते देखते है, पानी के अभाव में, प"ाुओं के इन्तजार में दोआब में आदमी को कराहते देखते है, पानी के अभाव में प"ाुओं के खुर मिलते है, झरनों के बिना चट्टानों को चीखे सुनते है। इस प्रकार जल के अभाव में जो स्थितियां सामने आ रही है कवि का संकेत उसी ओर है–

''सूखते तालाबों में गूँजता सन्नाटा सुना
जल के बिना
धान के खेत में फटी भयावह दरारे देखीं।
यह दौर बड़ा कठिन है
इतनी सारी सदाबहार नदियों के होते
मैं पानी को तरसता हूँ
मैंने पहली बार
दो आब के प्यासे आदमी को
उठते देखा।
यहाँ आम के बगीचों को काटकर
खेत बना लिए है
टीलों पर उगी झाड़ियों को
सूखते देखा।''[28]

सूखते तालाब, धान के खेत में फटी भयावह दरारें, दोआब के खड़े आदमी का प्यासा होना, झाड़ियों को सूखते देखना, ऐसी भयानक तस्वीर की ओर इ"ाारा करती है कि आने वाला समय कितना पीड़ा युक्त, अभावों से युक्त हो सकता है । एक जमाने में जहाँ यह भूमि गंगा–यमुना के जल से ओत–प्रोत थी। इनकी लहरों में चन्द्रमा ही पृथ्वी भी प्रतिबिम्बित होता था। संसार के विटप की डाले जीवन–जल को गहरे छूती थी कभी–2 जल मृदंग की आवाज आती थी। समकालीन कवि

[28] नया ज्ञानोदय –सं0 – प्रभाकर श्रोत्रिय, अंक–13, मार्च–2004, पृ0 23

दिने"ा कुमार शुक्ल की 'जंगल–जल' कविता जल के अतीत दृ"य को हमारे सामने रखने का प्रयास कर रही है–

''यह ऐसा था लोक जहाँ तालाबों तक ही
सीमित नहीं रहा करती थी जल की आभा
आत्मा में भी पद्म सरोवर लहराते थे
नीचे तपती धरती, ऊपर आग बरसती
तीन ताप तपते जीवन में/ खु"ायों की हल्की फुहार भी
मन के मान सरोवर को निर्मल पानी से भर देती थी
पकते हुए आम के भीतर/जामुन की नीली जमुना में
आँखों के सोये सपनों में/यौवन की अनजान छुवन में
दूर दे"ा से आने वाली/चिड़ियों से गूँजते गगन में
आ"ाा– स्वप्न और स्मृति के/जगह–जगह तालाब भरे थे।''[29]

इतना ही नहीं गाँव का पानी तालाब तक सीमित न था, मनुष्य के आँखों का भी पानी मेरा नहीं था, यानी मनुष्य के भीतर मानवता बाकी थी। उनकी मन की गहराई के भीतर मानवता विद्यमान थी। उस समय जंगल की आत्मा निर्भय होकर पानी पीती थी। उस जल को मनुष्य द्वारा फैलाया गया प्रदूषण छू भी नहीं पाता था। उस जल में पत्ती का रस, जड़ों को अंर्क, भीगें हुए काठ की अनुपम बल्कल गंध भरी थी। लाल और पीले सिवार के घनें के"ा वाली जल परियाँ पानी को धीरे–2 सुरक्षित करती थी। किन्तु कवि आज की दुर्द"ाा की ओर संकेत करता है–

''इन तालाबों के तल में/संचित है सारी बरसातें
मुसलाधार काली रातें/
होठों में ही जो डूब गयी अनकही रह गई जो बातें,
इनके तल में ही रहते हैं
अनजान अजन्में जीवन जो आने के पहले चले गए,
धरती छूना भी जिन्हें मयस्यर नहीं हुआ
जो सिर्फ गर्भ के जल में ही तैरते रहें। उनकी भी कथा अभी कहनी है।''[30]

[29] नया ज्ञानोदय : प्र0 प्रभाकर श्रोत्रिय, अंक–13, मार्च–2004, पृ0 163

कवि आने वाली पीढ़ी की ओर इ"ाारा कर रहा है। कवि सोचता है कि जल में बढ़ती लगातार गंदगी से वह प्रदूषित हो रहा है। शुद्ध जल का पैमाना और उसकी आव"यकता लगभग समाप्त हो रही है। क्योंकि प्रत्येक मानव और जीव–जन्तु उसी प्रदूषित जल में जीने के आदती हो रहे हैं। किन्तु उस आगामी पीढ़ी का क्या होगा, जो धरती पर कदम रखने वाले है। उन्हें कैसे पता चलेगा कि किस प्रकार से, शुद्ध जल हमें मिल पायेगा। यह संकेत एक भयानक और दुःस्वप्नात्मक स्थिति की ओर है। ऐसा ही कुछ संकेत फ्रेंच भाषा की कविता ''लियोंपोल्द सेंदार से 'घोर' जिसका अनुवाद रमे"ा दवे ने 'जल रा"ाियों' का शोक गीत' नाम से किया है, में, मिलता है–

'' कीचड़ भरा मटमैला पानी
डबरो का गंदा पानी
महानगरों का बदबूदार पानी
जिनमें तिलमिलाते हजारों दुःख, हजारों खु"ाियां,
हजारों आ"ाांए और हजारों गर्भपात की तरह गिरे स्वप्न।''[31]

पानी को गंदा और मटमैला बनाने में दोष किसका है? कौन जिम्मेदार है? यह प्र"न बहुत बड़ा है। इन सब प्र"नों के पीछे मनुष्य है जो अपने लाभ और लोभ व"ा जल का शोषण कर रहा है और खुद शोषित हो रहा है। क्योंकि उसके ऊपर बाजार का दबाव है जहाँ हर वस्तु की कीमत लगाई जाती है। हर चीज बाजार में बिक जाती है। उसी प्रकार पानी भी बंद बोतलों में बाजार में बिक रहा है। इसलिए कवि देवव्रत जो"ाी ने अपनी कविता 'जेठ की नदी' में कुछ ऐसा ही संकेत किया है–

''यह निदाघ वीतराग
इसमें यों–
दहो नहीं।
जीवन है आग का सरोवर

---

[30] वहीं, पृ0 163
[31] वहीं, पृ0 78

छन्द और लय को
जो लील रहा
दैत्य बढ़ा आ रहा
बाजार का
आग्नेय मंत्रों से/आत्माएँ कील रहा मौन/एक अपर्णा तपस्या है/ निर्मिमेष देखों
कुछ कहो नहीं''[32]

बाजार का बढ़ता प्रभाव मनुष्य को उसके फायदे से इतना आंतकित करता है कि मनुष्य बाजार में हर चीज बेचने को विव"ा हो जाता है। यहाँ तक की जो उनके शरीर में प्राण के रूप बहता है। उसको भी बेच रहे है। केदार नाथ सिंह द्वारा लिखित 'पानी की प्रार्थना' कविता में इस ओर इ"ाारा किया गया है– कि पानी किस प्रकार से पृथ्वी का प्राचीन नागरिक, किस प्रकार से वह तमाम प"ाु–पक्षियों, जीव–जन्तुओं की प्यास बुझाता रहा है, किस प्रकार चील, कौवे, हकासा–पियासा जानवर, चिरई–चुरूंग मानुष–अमानुष, यहाँ तक की सूरज के सात घोड़े भी उसी जल से अपनी प्यास बुझाते है। किन्तु अब उस नदी के पानी में और किसी चेहरे के पानी में कचरा विद्यमान हो गया है। वह पीने योग्य नहीं रह गया हे। उसका कारण सिर्फ मनुष्य है और कोई नहीं। पानी स्वयं अपनी बात कहता है।

अंत में प्रभु,
अंतिम लेकिन सबसे जरूरी बात
वहां होगे मेरे भाई–बन्धु
मंगल ग्रह या चाँद पर
पर यहाँ पृथ्वी पर मैं
यानी आपका मुहलगा यह पानी
अब दुर्लभ होने के कगार तक
पहुँच चुका है।[33]

---

[32] वहीं, पृ0 79
[33] वहीं, पृ0 80

इक्कीसवीं सदी की लड़ाइयाँ पानी के लिए ही हो सकती है। इसलिए ही बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ दुनियाँ भर के पेयजल को अपने कब्जे में रखना चाहती है। प्रकृति में मुफ्त मिलने वाले पानी को बोतल बन्द बनाकर उसे भी बिकाऊ माल बनाने का 'ाडयन्त्र चल रहा है। जीवनदायी पानी का महत्व उद्घाटित करने वाली लीलाधर मंडलोई की कविता है। कि 'जान पाते रहस्य हम'। कवि आने वाले दिनों में पानी के लिए लड़ाई होने की आ"ांका से ग्रस्त है। पृथ्वी में उपलब्ध पानी में एक प्रति"ात पानी ही मनुष्य का हिस्सा है। उसमें से ढेर सा–अ"ाुद्ध है। बाकी में अधिकां"ा स्वार्थी सेठों के कब्जे में है। डब्ल्यू0एच0ओ0 की रिर्पोट के अनुसार–

''मृत्यु की सबसे बड़ी आ"ांका
आने वाली सदी में
पानी के अ"ाुद्ध होने या न होने से है।''[34]

ऐसी संकठ की स्थिति में ही–

''दुनियां भरने लगी बोतल बन्द पानियों से
इसने इतना अधिक मुनाफा
और सब विकल्पहीन इतने।''[35]

पानी के लिए मार–काट की संभावना दिखाई दे रही है। बहुराष्ट्रीय कम्पनिया दे"ा की नदियों, तालाबों, झीलों, को कब्जे में करके जनता को प्यास में छोड़ रही है।जब साधारण मनुष्य पैसा देकर बोतल बंद पानी खरीद सकता है। तो–

''मैं काट के दूसरों का पेट
दौड़ता हूँ बोतल बंद पानी की तरफ और
किसी न किसी की मृत्यु का कारण बन जाता हूँ।''[36]

[34] काला बाँका तिरछा – लीलाधर मंडलोई, पृ0 87
[35] वहीं, पृ0 87
[36] वहीं, पृ0 87

मंडलोई का इ”ारा इस तरफ है कि एक ओर प्राकृतिक जल–सम्पदा मनुष्य के अवैज्ञानिक हस्तक्षेप से लुप्त होती जा रही है, तो दूसरी ओर पूँजीवादी शोषण से जल–स्रोत सामान्य मनुष्य की पहुँच से दूर होता जा रहा है। प्राचीन काल में पानी की आव”यकता केवल मनुष्य एवं जीव–जंतुओं तक ही सीमित थी। किन्तु मानव –सभ्यता के विकास ने खेत–बगीचों का ही विस्तार नहीं किया अपितु उद्योग धंधों का भी विकास किया, जिससे जल की आव”यकता तेजी से बढ़ रही है। उद्योग धंधों के विकास के कारण जल वितरण एक भंयकर आकार ले चुका है। जिस तरह धन के स्वामी, भूमि के स्वामी के रूप में मानव का प्रभुत्वमय रूप है उसी प्रकार उसने जल का स्वामी बनकर उसपर भी प्रभुत्व पा लिया है।

इस प्रकार समकालीन कवियों ने जल के महत्व को अभिव्यक्त करने का प्रयास करते है।

5- Ukfn;k

प्राचीन काल से हमारा दे”ा नदियों का दे”ा रहा है। सहस्रों छोटी–बड़ी नदियाँ हमारे वि”ाल दे”ा को सिंचित करती रही हैं। इसी कारण नदियों को हमारी संस्कृति में मातृ स्वरुपा माना गया है। वि”व की सारी सभ्यताओं और संस्कृतियों का विकास नदियों के निकट हुआ है। हमारे दे”ा की वि”व प्रसिद्ध गंगा, यमुना, सरस्वती, गोदावरी, कृष्णा, कावेरी, आदि सभी नदियां पूज्या रही है हमारी संस्कृति में। प्रातः स्नान करते समय प्रत्येक हिन्दू इन नदियों का नाम लेकर पूण्य स्मरण करता है।

प्राचीन भारतीय संस्कृति में नदियों में दीप–दान करने, पुष्पांजली चढ़ाने तथा अर्घ्य देने का विधान है जो इन पोषक माताओं के प्रति हमारी कृतज्ञता को व्यक्त करता है। हमारे प्रत्येक पावन कार्य में वरुण देव का आह्वान किया जाता है। गंगा के तट पर ही आर्य संस्कृति फूली–फली थी। ऋषिके”ा, हरिद्वार, प्रयाग, का”ाी, आदि पावन धाम गंगा के ही तट पर अवस्थित है। यमुना के किनारे मथुरा वृन्दावन बसें है। यही कृष्ण लीला हुई। गोदावरी, कृष्णा, कावेरी, नर्मदा आदि सभी नदियों

के तट पर सहस्रों पावन धाम बने है। नदी स्नान का विधान हमारी संस्कृति का प्रधान अंग है। नदी ही चिन्मय धारा है। लगातार बहती हुई प्राणियों के तन–मन व आत्मा का पोषण करती है। नदी मातृरुपा है। पूज्या है।

किन्तु आज दुर्भाग्यव"ा औद्योगीकरण तथा शहरीकरण के कारण यूरोप तथा अमेरिका की नदियों की तरह हमारी नदियाँ भी बुरी तरह प्रदूषित हो चुकी हैं। कागज, कपड़ा, रसायन, सीमेंट, तेल"ोधन, उर्वरक, चमड़ा आदि उद्योगों का विषपूरित गंदा पानी लगातार नदियों में छोड़ा जा रहा है। दूसरी ओर शहरों का मलमूत्र, कचरा, नालियाँ आदि बेरोकटोक नदियों में जा मिलता है। इससे नदियों का जल भयानक रूप से प्रदूषित हो चुका है। आज हमारे दे"ा की लगभग सारी नदियां प्रदूषण से ग्रस्त है। गंगा तो सर्वाधिक रूप से प्रदूषित है। गंगा तट पर कानपुर, प्रयाग, वाराणसी आदि शहरों के उद्योगों के अपि"ाष्ट पदार्थों, शहरों की नालियों तथा अधजले मुर्दों आदि के कारण गंगा नदी बुरी तरह से गंदी हो चुकी है। रोती विसूरती नदियां, आज रूग्ण दिखलाई पड़ती है। हमारी उत्तरदायित्व हीनता ने हमारी माताओं को दूषित कर डाला है। इस जन प्रदूषण का प्रभाव बड़ा दूरगामी होता है। इन सारी नदियों से हमारी आस्था जुड़ी हुई है। यहाँ तक कि कतिपय नदियों में अर्घ्य देने तथा पिण्डदान करने से पूर्वजों को सद्‌गति मिलती है। ऐसी हमारी आस्था बनी हुई है। आज के युग में नदियों पर वि"ाालकाय बहुद्दे"ाीय बॉध बने है जिन्हें जवाहर लाल नेहरू ने आज के युग के मंदिर कहा है। नदियों के भीतर जीवनदायी अमृत बहता है। यह अमृत जब मनुष्य के कंठ में पड़ता है तो उसमें जान आ जाता है। उसमें एक प्रकार से ऊर्जा का संचार होता है। जिससे वह अपने सभी कार्यो का संचालन व क्रियान्वयन करता है। नदी भी उसी प्रकार ह्रदय युक्त होती जैसे मनुष्य, वह भी मनुष्यों की तरह सोचती है, दुःखी होती है, उत्साहित होती है। अपनी कोख में न जाने कितने प्रकार के जीव–जन्तुओं, पेड़–पौधों और कीट–पंतगों को पालती है। कवि केदारनाथ सिंह नदियों के द्वारा उत्पन्न और प्रसारित प्रेम को अभिव्यक्त किया है –

''वे हमें जानती हैं
जैसे जानती हैं वह अपनी मछलियों की बेचैनी
अपने तटों का तापमान
जो कि हमीं है।
उनकी नसों में बहता है।
पहाड़ों का खून
जिसमें थोड़ा–सा खून
हमारा भी शामिल है।
और गरम–गरम दूध
टपकता हुआ भूरे दरख्तों की छाल से।''[37]

नदी और मानव का संबंध आत्मीय है। तभी तो जिस प्रकार मानव शरीर में खून का महत्व है उसी प्रकार नदियों में जल का महत्व है। नदी को आदमी की परछाई के रूप में माना गया है। जब आदमी नदी में स्नान करता है तो जैसे लगता है कि वह अपनी परछाई में स्नान कर रहा है। किंतु मानव की नियत में बेइमानी व्याप्त हो गयी है। वह नदियों के जल बाँटने का 'ाडयंत्र रच रहा है। उन्हें अलग–अलग दि"ााओं में बहने को मजबूर कर रहा है। नदी अपनी संवेदना के कारण इसे भी बर्दा"त करती है। इसके किनारे बहुत समृद्ध"ााली, सम्पन्न, शहरों को बसाया गया है। जो अपनी फितरतों के कारण नदी को लगातार नुकसान पहुंचा रहा है। केदारनाथ सिंह कहते हैं'–

''नदियाँ जो कि असल में
शहरों का आरंभ है
और शहर जो कि असल में
नदियों का अंत है''[38]

जीवन के उत्पत्ति के बाद उसके भीतर जीवंतता विद्यमान रहने के लिए दो तत्व परमाव"यक है हवा और पानी। हवा तो स्वच्छदं वातावरण में विचरण करती है

37 उत्तरकबीर और अन्य कविताएं :– केदार नाथ सिंह –(1995), राजकमल प्रकाशन प्रा0लि0 नई दिल्ली–110002

38 उत्तर कबीर और अन्य कविताएँ– केदारनाथ सिंह–1995, राजकमल प्रकाशन प्रा0लि0 नई दिल्ली–110002

परन्तु पानी नदियों में विद्यमान रहता है। एक तरह से पानी नदी की आत्मा के रूप में मौजूद है। उसमें भी एक आम व्यक्ति की तड़पन है, वेदना है, पीड़ा है। अपनी इन पीड़ाओं कष्टों के साथ ही वह दया भी दिखाती है। समकालीन कवियत्री चम्पा वैद की कविता में एक बेबाकी है, जो अपनी हदों के प्रति उतनी ही चौकन्नी है जितनी दूसरों की बेध्यता के प्रति। इनकी कविताएँ हमारे समय में असाधारण और अप्रत्याशित उद्रेक की रचनाएं हैं। 'नदी की आत्मा' नामक कविता में नदी को एक माँ के रूप में निरूपित किया है।–

''नदी एक माँ है
बूढ़ी दिखती है
पर बूढी नहीं होती
फूल पैसे से प्रसन्न होती
हिरनी सी कुलांचे भरती
भविष्य को जिंदा रखती
अतीत और वर्तमान की आहुति देकर।''[39]

जिस प्रकार अपनी माँ अपने गर्भ से हमें पैदा करती है। और हम धरती माँ की गोद में आते है जो अपने अन्नों से हमारा भरण–पोषण करती है। नदी भी किसी माँ से कम नहीं है। बचपन में हम अपनी माँ का दूध पीकर बड़े होते है तथा बचपन के बाद धरती माँ का अन्न और नदी माँ का जल को ग्रहण करके हम अपना जीवन–यापन करते है। नदी माँ अपने अतीत और वर्तमान की आहुति देकर हमारे भविष्य को जिंदा रखती है। वह हमेशा वहॉ पहुँचने और उपलब्ध होने के प्रयास में रहती है जहाँ लोग उसके पानी का इंतजार कर रहे थे, पक्षियों की कतार उसकी खोज में धूम रहे थे। एक जमाने में नदी अपने किनारे बसने वाले घरों, तटों तथा पत्थरों से प्यार करती थी किन्तु समय की मार ने आज ऐसा कर दिया है कि वह सूख गयी है, उसकी आत्मा सूख गयी है। समकालीन कवि मंगलेश डबराल ने 'यहाँ थी वह नदी' नामक कविता में कहते है–

39 अब सब कुछ–चम्पा बैढ, वैचारिकी संकलन, बी–65 मानस बिहार,,मयूर–बिहार–1 दिल्ली–110091 प्र0स0–1993)

''हमें याद है
यहां थी वह नदी इसी रेत में
जहाँ हमारे चेहरे हिलते थे
यहाँ थी वह नाव इंतजार करती हुई
अब वहाँ कुछ नहीं है
सिर्फ रात को जब लोग नींद में होते हैं
कभी–कभी एक आवाज सुनाई देती है रेत से ।''[40]

मंगले"ा डबराल की यह अंतः पीड़ा नदी सूख जाने की पीड़ा है। जन–जीवन नष्ट होने की पीड़ा है। वह दूरद"र्ी कवि की तरह आगे की सोचते है। वह नदी की इस हालत को देखकर बहुत दुःखी होते है। जो अब सिर्फ रेत के रूप में बची है। डबराल की ही तरह रमे"ा रंजक भी चिंताग्रस्त दिखाई देते है। वे 'नदी सूख गयी' नामक कविता में इसी ओर संकेत करते हैं–

''बालूका के संग सीपी, शंख
पेड़ है जैसे–
घरेलू चिड़ी– के–से –पंख
प्यास की क्या कहें सुने
भूख गयी
नदी सूख गयी
फटा नंगा घाट अधनंगे
पेड़ वे बूढ़े हुए
जो थे भले चंगे
एक क्षण को एक दिन ढोकर
आँख दूख गयी
नदी सूख गयी।''[41]

[40] पहाड़ पर लालटेन – मंगले"ा डबराल, राधाकृष्णन प्रका"ान प्रा0लि0, दिल्ली–110002, प्र0स0 1981
[41] हरापन नही टूटेगा – रमे"ा रंजक, अक्षरा प्रका"ान प्रा0लि0 2/36 अंसारी रोड दिल्ली–110006, प्र0स0–1994

कहने का अर्थ यह कि जब नदी सूखती है तो उससे सम्बद्ध सभी पेड़–पौधे, जीव–जन्तु नष्ट होने लगते है। नदी के सूखने से सीपी, शंख, चिडियाँ, तथा मनुष्य तक का भूख–प्यास समाप्त हो जाता है। मानव की ऑखें पानी देखने के लिए तरस जाती है। नदी की इस हालत के पीछे जिम्मेदार कौन है? उसकी यह हालत किसने की कि वह सूख गयी। इसका जिम्मेदार भी हमीं मानव समुदाय है। नरे"ा सक्सेना 'नदी' नामक कविता में कहते है।

''हमने घी और दूध से भरी नदियों का स्मरण किया
और उन्हें मल और मूत्र से भर दिया
नदी की सतह पर अब सिर्फ कालिख और तेल है
सूरज तक नहीं देख पाता उसमें अपना चेहरा
मछलियों का दम कब का घुट चुका
मर चुकी है नदी।''[42]

नदी मर क्यों रही है? वह समाप्त क्यों हो रही है? यह मानव के औद्योगिक विकास का ही कारण है। मानव ज्यों–ज्यों आधुनिक सभ्यता की ओर बढ़ता जा रहा है त्यों–त्यों प्राकृतिक वस्तुओं का ना"ा करता जा रहा है। नदी के जल को प्रदूषित कर रहा है। उसमें शहर का मलमूत्र तथा कम्पनियों का कचरा डाल रहा है। जिससे जल प्रदूषित हो रहा है। बनारस शहर गंगा नदी के किनारे बसा है। वहां गंगा नदी की प्रदूषित हालत को देखकर कवि ज्ञानेन्द्रपति कहते है–

''नदी!
तू इतनी दुबली क्यों है?
और–मैली–कुचैली
मरी हुई इच्छाओं की तरह मछलियॉ क्यों उतराई है?
तुम्हारे दुर्दिनों के दुर्जल में
किसने तुम्हारा नीर हरा
कलकल में कलुष भरा

[42] समुद्र पर हो रही है बारि"ा – नरे"ा सक्सेना, राजकमल प्रका"ान, 1–बी नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली–110002, प्र0स0–2001

बाघों के जुठारने से तो
कभी दूषित नहीं हुआ तुम्हारा जल
न कछुओं की दृढ पीठों से उलीचा चाकर भी कम हुआ
हाथियों की जल–क्रीड़ाओं को भी तुम सहती रही सांनद।''[43]

ज्ञानेन्द्रपति गंगा नदी की इस हालत को देखकर बहुत दुःखी है। वह सोचते है कि गंगा का इतना कृ"ाकाय रूप कैसे हो गया? यह इतनी मैली–कुचैली और प्रदूषित हो गयी है कि जल में रहने वाले जीव मरकर पानी के उपर तैर रहे हैं। ज्ञानेन्द्रपति आगे कहते है–

''ओह! उनके लिए
गंगा का जी काँपता है
अपने जल जीवों के लिए
और अपने उन थलजीवों के लिए भी
जिसकी कंठ की प्यास बुझाने से भी बढ़कर
भीतर की कोई गहरी प्यास तिरपती रही है गंगा
और कल की उसकी अमरित –बूँद आज
चंगे को बीमार करने वाली
और बीमार के लिए तो
सचमुच मोक्षदा साबित होने वाली अकाल ही।''[44]

गंगा नदी की स्थिति ऐसी हो गई है कि उसका जल विषयुक्त हो गया है। उसका जल एक समय अमृत के समान माना जाता था। जो सभी की कंठ की प्यास बुझाता था। उनके बीच मछलियाँ, कछुए, घोघें, तथा अन्य जीव विद्यमान थे किन्तु आज वह स्वार्थी कारखानों के तेजाबी पे"ााब को झेल रही है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के उत्पाद उसे प्रदूषित कर रहे हे। गंगा अपने जीवों के लिए दुखी दिख रही है। क्योंकि इसकी स्थिति नाले जैसी हो गयी है। जिसमें शहर का मल–मूत्र कचरा और गंदगी बह रही है।

43 गंगातट– ज्ञानेन्द्रपति, राधाकृष्ण प्रका"ान प्रा0लि0 2/38, अंसारी मार्ग, दरियागंज नई दिल्ली–110002, प्रा0सं0–(1999)

44 गंगातट – ज्ञानेन्द्रपति – उपरोक्त प्रका"ान

''तुम क्या जानो, क्योंकि तुम्हारे लिए नही बची है कोई पवित्र नदी
तुम्हारी सारी नदियॉ अपवित्र हो गई है–विषाक्त
× × × × × ×
वहां गंगा के उस सावले जल में नहाती हुई बूढ़ी मैया
की हर डुबकी में
छाती की कॅपकपी ही नही धुलती
सजल उर का जल भी मिलता है भास्वर
उन दुग्धहीन, पर दुग्ध गंधी छातियों से निकली हुई दुधियाभा
जो आँख खोलकर, तुम्हारे देखते–देखते
नगर के नालों की गंदली उगल में
निगल जाती है अचीन्ह।''[45]

ज्ञानेन्द्रपति कहना चाहते है कि गंगा को पहाड़ की बेटी माना जाता है। परन्तु आज वह दुखियारी माँ के रूप में दिखाई देती है। इसकी इस हालत का जिम्मेदार पूँजीवाद है। जब से पॅूजीवाद का आगमन हुआ है तब से प्रकृति का विना"ा शुरू हो गया है। पूँजीपति वर्ग अपने स्वार्थो की खातिर नदियों के जल का व्यापार कर रहे है। उसको बोतल में बंद कर उसका बाजार खड़ा किये है। कुछ समय बाद नदियों का अस्तित्व सिर्फ स्वप्न में, टेलीविजन पर और तस्वीरों में दिखाई देगा। राके"ा रंजन 'नदी ' कविता में कहते है–

''आस–पास उसके
कहीं नहीं दिखता था जीवन का
कोई पद चिन्ह
मुझे सपने में दिखी वह
बरसों से खोई सी
सोई–सी चिता पर, पराई–सी, कोई सी
उसके लबों पर न गिला, न फरियाद
उसे देखा यों मैंने
महान एक निद्रा के बाद!''[46]

[45] वहीं,

नदी अब हमारे सपने में दिखाई देती है। क्योंकि उसका सारा अस्तित्व खत्म हो रहा है। उसके स्थान पर केवल रेत ही रेत दिखाई दे रही है। आधुनिक सभ्यता और संस्कृति ने प्राचीन सभ्यता और संस्कृति का विना"ा किया है। आधुनिक सभ्यता भले ही प्रगति"ीलता का परिचायक हो किन्तु वह हमारे अस्तित्व, हमारी अस्मिता तथा हमारी विरासत को नष्ट करके ही अपने आपको कायम रखी हुई है। आज नदियों को सुखाया जा रहा है। पानी को कृत्रिम बांघों में इकट्ठा किया जा रहा है। नदियों को सुखाकर उनके स्थान पर सुविधाओं और साधनों का निर्माण किया जा रहा है– समकालीन कवि हरजेन्द्र चौधरी 'नदियों में रहता था जल समय' कविता में अभिव्यक्त किया है–

''पानी सूख गया
बात बात में
सरोवर सरस्वती सेतु सब लुप्त
अब सड़कें हैं
फ्लाई ओवर है
फ्लाई ओवरों पर और फ्लाई ओवर है
आसमान में तेज चौराहे बनाते हुए
दुनियां भर के महानगरों में
सड़के बहती है फ्लाई ओवरों के नीचे–ऊपर।''[47]

जब भी कोई चीज लुप्त होने वाली होती है या लूप्त हो गई होती है तो उसे म्यूजियम में रख दिया जाता है ताकि वह आने वाली अगली पीढ़ी को देखने को मिल जाय जो उससे अनभिज्ञ होती है। आज के इस महानगरीय विकास में सबसे पहले प्राकृतिक वस्तुओं पर खतरा बढ़ गया है। प्रकृति का ना"ा करके वह कृत्रिम प्रकृति का निर्माण कर रही है। हर तरफ फ्लाई ओवर फ्लाई ओवर पर ओवर अत्याधुनिक नई तकनीकी की सड़कें, और इन सड़कों की शोभा बढ़ाने के

[46] चॉद में अटकी पतंग – राके"ा रंजन, प्रका"ान संस्थान, 4715/21, दयानंद मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली–110002, प्र0स0–2009

[47] 'जैसे चाँद पर से दिखती धरती' हरजेन्द्र चौधरी, राधाकृष्ण प्रकाशन – नई दिल्ली–110005, प्र0सं0–2004

लिए कृत्रिम वृक्ष लगाए जा रहे है। पहले लोग प्रकृति प्रदत्त तालाबों, नदियों में स्नान किया करते थे। किन्तु आज उसकों सुखाकर एक कृत्रिम तालाब, जिसे पूँजीपति वर्ग स्वीमिंग पुल कहते है, उसमें स्नान करते है। तथा उन प्राकृतिक वस्तुओं को तस्वीरों में दीवारों पर टांग दिया गया है। एक मासिक पत्रिकाः 'वर्तमान साहित्य' में 'नदी के नाम पर निबंध' नामक कविता में इसी ओर संकेत किया गया है।

''रोओं मत बच्चे, रोओं मत
पूछकर आओ एक बार
फिर अपने माँ–बाप से
कहां है फोटो की नदी?
वह नदी आखिर कहा है?
और वे भी न बता पाये तो
लिखना शुरू करो एक निबंध
हुआ करती थी कभी एक नदी
नहीं, गुम होती भाषा में नहीं
अंग्रेजी में लिखना शुरू करो
देवर वाज अ रिवर................।''[48]

इस पर भी हम गर्व से कहते है कि हम उत्तर आधुनिकता के अतिप्रगति"ील समय में जी रहे है। इक्कीसवीं सदी का यह मानव भले ही अतिप्रगति"ीलता पर फूले न समा रहा हो, लेकिन उसका दुष्परिणाम भी उसके आखों के सामने देखने को मिलते है। इसलिए–

''हर नदी का घाट–"यम"ाान
हर बगीचा कब्रिस्तान बन रहा है।
और हम इक्कीसवीं शताब्दी की ओर जा रहे है।
पहली बार गर्भ धारती युवतियों के गर्भ गिर रहे हैं
माताएं मरे बच्चों को जन्म दे रही है।

[48] वर्तमान साहित्य : जुलाई–2009 वर्ष–26 सं0 – नमिता सिंह

और हिजड़े–चौराहों पर थपड़ी बजाते सोहर गा रहे है।
हम इक्कीसवी शताब्दी की ओर जा रहे है।''[49]

अबाध गति से बहकर पूरी धरती की प्यास मिटाने वाली नदी को बाँधकर मनुष्य उसका शोषण करता है। समकालीन कवि त्रिलोचन अपनी दृष्टि को इस ओर एकाग्र करते है। वह कहते है –

''बाँधकर नदी को
मनुष्य रहा है
अब वह कामधेनु है।''[50]

देवी प्रसाद मिश्र ने ''जाओं सरस्वती'' जैसी कविताओं में रेत में डूबती सरस्वती नदी तथा रेत ले जाती नावें से सूखती नदी का मर्मस्प"ी चित्र प्रस्तुत किया है।

''रेत से भरी हुई रेत में डूबी हुई नावें
रेत के नीचे डूबती हुई गतियाँ
सभी व्यग्र है रेत के नीचे डूबी नदी के लिए।''[51]

नदी की इस हालत के लिए मानव सभ्यता का विकास ही कारण है। मानव जितना सभ्य होने का प्रयास कर रहा है प्रकृति का उतना ही विना"ा हो रहा है। इसकी ओर संकेत करके ज्ञानेन्द्रपति लिखते है कि–

''नदी के किनारे नगर बसते हैं।
नगर के बसने के बाद
नगर के किनारे से
नदी बहती है–''[52]

---

[49] 'इक्कीसवीं शताब्दी की ओर' सबूत : अरूण कमल
[50] प्रतिनिधि कविताएँ : त्रिलोचन, पंच"ील शोध पत्रिका : सं0 हेतु भारद्वाज, वर्ष–2, अंक–8, अप्रैल–जून 2010, पृ0 80
[51] देवी प्रसाद मिश्र : 'प्रार्थना के "िाल्प में नहीं', पृ0 15
[52] भिनसार : ज्ञानेन्द्रपति, किताब पर प्रका"ान, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली–110002, प्र0सं0–2006, पृ0 49

नगरों के विकास का मूलाधार नदियॉ है। किन्तु नगरों के विकास के साथ ही नदी को दूषित कर उसे मौत की ओर ढकेल दिया जा रहा है। नगर और नागरिकता को जन्म देने वाली नदी मॉ को ही विकास के नाम पर वैज्ञानिक उपलब्धियों की सामग्रियों से ही नष्ट किया जा रहा है।– नदी और साबुन कविता की पंक्तियाँ है–

> ''आह! लेकिन/स्वार्थी कारखानों का तेजाबी पे"ााब झेलते/
> बैगनी हो गयी तुम्हारी शुभ्र त्वचा/हिमालय के होते भी तुम्हारे
> सिरहाने/हथेली–भर की एक साबुन की टिकिया से/
> हार गयी तुम युद्ध।''[53]

जब मनुष्य की ज्यादतियों से नदी हार जाती है, जल स्रोत सूख जाते है तो मानव समेत पूरी जीव रा"ाि का वं"ा ना"ा हो जायेगा। इसलिए समकालीन कवि पारिस्थिकी संतुलन बनाये रखने के लिए प्राकृतिक सम्पदा को सुरक्षित रखने के लिए, उसके प्रति स्नेह, आदर, मानवता, आदि प्रकट करने की बात करते है। 'यमुना' नामक कविता में देवी प्रसाद मिश्र लिखते है–

> ''यह नदी सभ्यताएॅ निर्मित करते हुए यहॉ आयी है
> जैसे मनुष्यों की रक्तवाहिनी का स्प"ार्
> इस हरी नदी का स्प"ार् करो।''[54]

इस प्रकार समकालीन कवियों ने नदियों के महत्व को उद्घाटित किया है।

6- Lkeqn

कहा जाता है कि पृथ्वी का तीन भाग जल से घिरा है और एक भाग में जीवन निवास करता है। इन जलीय भागों को समुद्र कहा जाता है। जिसमें तमाम प्रकार के जलीय जीव जन्तु निवास करते है। जल का महत्व तो अनुपनीय है। इतनी विस्तृत अवस्था में विद्यमान सागर अपने भीतर तमाम रत्न छिपायें है। वह भी

---

[53] गंगातट : ज्ञानेन्द्रपति – राधाकृष्ण प्रका"ान प्राइवेट लिमिटेड, प्र0सं0–1999, नई दिल्ली–110002
[54] 'प्रार्थना के ि"ाल्प में नहीं' देवी प्रसाद मिश्र, पृ0 20

मानवों की तरह साँस लेता है और उसी तरह तकलीफों को महसूस करता है। लहरों के माध्यम से वह क्रीड़ा करता है।

''पंक्तियों में टूटती–गिरती
चाँदनी में लोटती लहरें
बिजलियों –सी कौंधती लहरें
मछलियों–सी बिछल पड़ती तड़पती लहरें
बार–बार।''[55]

समुद्र का यह सौन्दर्यात्मक रूप लगातार मनुष्य को आकर्षित करती है। समुद्र की यह प्राकृतिक शोभा लोगों को अपनी ओर खिंचती है। किन्तु अब पूरा परिवे"ा ही बदल गया है। समुद्र लगातार मानव के कुकृत्यों द्वारा दुःखी हो रहा है। मनुष्य अपने शहरों का कूरा–कचरा, मल–मूत्र, समुद्रों में फेंक रहा है। ऐसा लग रहा है कि जैसे समुद्रों से मानव की प्रतियोगिता शुरू हो गई है। समकालीन कवि अजीत कुमार समुद्र की इस दुर्द"ाा की ओर संकेत करते है।

''एक होड़ सी लगी थी
हिंद महासागर
और
भारतीय जन–समुद्र के बीच
वह अपने आह्लाद यानी झाग से
बलुका–तट को ढँक ले?
कि
यह अपने परित्याग
यानी थूक, नाक, मल–मूत्र, कचरे–छिलके– से अतल का तल भर दे?''[56]

जन समुद्र और हिंद महासागर की यह होड़ कहीं न कहीं प्रकृति का मानव समुदाय से होड़ है। मनुष्य अपने उपयोग की वस्तुओं से निकाले गये कूड़े–कचरे, गंदगी, मल, को समुद्र में फेंक रहा है। इतना ही नहीं बड़ी–बड़ी फैक्टरियों,

55 सागर–तट–"ाम"ोर बहादुर सिंह, पृ0–71, पृथ्वी के पक्ष में
56 कन्या कुमारी के तट पर– अजित कुमार पृथ्वी के पक्ष में– सं0 राधे"याम तिवारी पृ0–123

कम्पनियों, तथा उद्योगों द्वारा निकले–कचरे को भी उसी समुद्र में गिराया जा रहा है। जिससे समुद्र का जल अधिक मात्रा में प्रदूषित हो रहा है। जिससे उसमें रहने वाले जीव–जन्तुओं के भीतर एक बेचैनी सी उत्पन्न होती है। उनमें घबराहट तथा उनका दम घुटता है– समकालीन कवि ललित शुक्ल का कहना है–

"सागर–जीव
बड़े–बड़े रुपाकारों में
उद्वेलन की आंधी झेलते हो
वाडव ज्वाल के ताप को
सह नही पाते हो क्या!!
और इसलिए प्रलय राग गाते हो
सामर्थ्य भी सिर धुनकर
असहाय क्यों होता है
हिमालय–सा व्यक्तित्व
बेजार होकर क्यों रोता है।"[57]

समुद्र के अन्दर विभिन्न प्रकार के जीवों की छट्पटाहट तथा बेचैनी उनके जीवन के प्रति हो रहे संघर्ष को व्यक्त करता है। समुद्र के भीतर अनेक प्रकार के जीव विद्यमान रहते है। उसमें नमक, हरीकाई, गहरी खाई, उथली उंचाई, फिसलनदार वनस्पतियाँ, सार्क, ‍ਕੇल, स्टारफि"ा, कछुआ, तेज तुफान, गरीब मछुए, आग, तैल, आइसवर्ग, पहाड़, खोजी पनडुबिब्याँ, प्राचीन दुर्घटनाएं, डूबे हुए हजारों शव, बड़ी मछलियाँ, सभी कुछ विद्यमान है। जब मनुष्य अपनी सुविधाओं के लिए समुद्र को प्रदूषित करता है। तो उसमें विद्यमान इन जीवों के अंदर एक बेचैनी सी होती है। इसी व्याकुलता तथा बेचैनी की ओर समकालीन कवि हरजेन्द्र चौधरी संकेत करते है।

"धरती पर पड़ा तड़फड़ाता
विराट मछली–सा

57 सागर व्यथा : ललित शुक्ल, पृथ्वी के पक्ष में पृष्ठ–145

तब वह समुद्र है
आसमान में उड़ता है पंख लगाकर
गरजता हुआ तब बादल
गहरे दुःख में अकेला डूब
रोता है लगातार हिमालय पर बैठा
हम कहते है– नदी उतर रही है पहाड़ से
× × × × × ×
आदमी कहीं भी नहीं टिकने देता
जब समुद्र को
तब सो जाता है समुद्र
हमारी ही पुतलियों के भीतर.........।''[58]

इस प्रकार समकालीन कवियों ने समुद्र के महत्व तथा पर्यावरण प्रदूषण को उद्घाटित किया है।

7- o{k

भारतीय वेदांत ने प्रकृति के सारे प्राणियों में उस परम सत्ता के द"र्ान किये अतः छोटे से छोटे पेड़ पौधो, प"ाु पक्षियों आदि को अकारण मारना या उसका अहित करना वर्ज्य माना गया है। केवल चेतन पदार्थो में ही नहीं अचेतन पदार्थो यथा पर्वतों, नदियों, जला"ायों, सरोवरों आदि को भी ई"वरीय विभूति का अं"ा मानकर, उनकी रक्षा का प्रयत्न किया गया है। वृक्षों को संबोधित करते हुए श्रीकृष्ण ने कही कहा है– सूर्य के प्रंचड ताप को हरते हुए ये छाया प्रदान करते है। वर्षा, हिम, गर्मी आदि प्राकृतिक वैपरीत्वों से हमारी रक्षा करते हैं। सभी प्राणियों के लिए उपयोगी है। परोपकार ही इनका धर्म है। जिस प्रकार आर्तजन सज्जनों से लाभान्वित होते हैं। उसी प्रकार ये हमारे लिए लाभ प्रदायक है। ये अपने सभी अंगों से तरह–तरह की भेंट, प्रदान कर मानव की कामनाओं की पूर्ति करते हैं।

58 जैसे चाँद पर से दिखती धरती–हरजेन्द्र चौधरी राधाकृष्ण प्रका"ान प्रा0लि0, जी0–17, जगतपुरी, दिल्ली–110051, पृ0सं0–2002

प्रकृति के कण–कण के साथ एकात्मकता का अनुभव करना तथा उसे यथा संभव कम से कम हानि पहुँचाना भारतीय जीवन का आद"ा रहा। इसी कारण प्राचीन भारत के लोग अल्प संतोषी थे। जहाँ अधिक पाने की, जमा करने की उपभोग की इच्छा बलवती हुई वही प्रकृति के संसाधनों का दोहन शुरु हुआ। प्रकृति से हम उतना ही ग्रहण करे जिससे कि उसका स्वरुप विकृत न हो। जंगल में से आव"यकतानुरूप दस–बीस पेड़ काट लिये जायें, तो प्रकृति उन्हें उगा लेती है। पर यदि पुरा जंगल ही काट लिये जाये तो वह महाविना"ा के अतिरिक्त क्या बचा रह सकता है। रेगिस्तानों का विस्तार, विना"ाकारी प्रलयकारी बाते, भंयकर सूखा व अकाल, ऋतु चक्रों का व्यतिक्रम, वातावरण में गर्मी का बढ़ना, समय पर वर्षा न होना, विचित्र बीमारियों का फैलना आदि मनुष्य की उन्ही हृदयहीन बुद्धिरहित क्रियाओं का परिणाम है। वृक्षों व प"ाु–पक्षियों का संबंध हमारी धार्मिक आस्थाओं वि"वासों, हमारे व्रत, त्यौहारों, तथा हमारे रीति–रिवाजों से गहराई से जुडी है। इतना ही नहीं प्राचीन पुराणों की कथाएॅ देवताओं–मनुष्यों व प"ाु–पक्षियों के अतः संबंधों से भरी पड़ी है। विष्णु के अवतारो में मत्स्य, कूर्म, वराह, आदि प"ाु ही है। श्रीराम के वि"वास सहायक व भक्त वानरराज हनुमान आज भी हिन्दू आस्था के केन्द्र बिन्दु है। अपने उच्च गुणों के कारण, हिन्दू आस्था के अनुसार प"ाु भी देवत्व का भागी बनकर पूज्य बन सकता है। ऐसा उदाहरण वि"व की अन्य संस्कृतियों में नहीं मिलता है।

हमारे बहुत से त्यौहार ऐसे है जिनमें वृक्षों की पूजा आराधना का विधान है। 'वट सावित्री' में वट वृक्ष की पूजा की जाती है। तुलसी पूजन तो आज भी हिन्दू दैनिक जीवन का अंग है। विवाह के बाद शमी द"ान व पूजन एक अनिवार्य विधान है। गर्भवती नारी को आम तथा वट आदि वृक्षों के पत्ता से युक्त कल"ाों के जल से नहलाने का प्रचलन है। वट वृक्ष भारतीय नारियों के लिए दीर्घ जीवन व सुहाग का प्रतीक है। सत्यवान के मृत शरीर को सावित्री वट–वृक्ष के नीचे रखकर यमराज के पीछे–पीछे गयी थी तथा अपने पति के प्राणों को पुनः प्राप्त करने में सफल हुई थी।

गौतम बुद्ध के प्राणों की रक्षा, सुजाता ने वट वृक्ष के नीचे ही पायस खिलाकर की थी। सिद्धार्थ से बुद्ध बनने वाले गौतम को तत्त्व ज्ञान की प्राप्ति वट वृक्ष (बोधिवृक्ष) के नीचे ही हुई थी। कुछ विद्वानों की तो यहाँ तक मान्यता है कि पीपल, वट, उदुम्बर आदि कुछ वृक्षों चारों ओर आध्यात्मिक चेतना का एक वलय विद्यमान होता है। जो उसके नीचे बैठकर साधना करने वाले को सहज ही परमतत्त्व की प्राप्ति कराने में सहायक होता हैं उसी कारण भारती जीवन में वानप्रस्थ व संन्यास में वन–गमन का विधान है। वन केवल वस्तुओं के संग्राहक व प्रदाता ही नहीं, आध्यात्मिक मूल्यों व जीवन सत्यों के भी संरक्षक है। महाभारत में भीम को युधिष्ठिर ईधन की लकड़ी के लिए सजीव वृक्षों को काटने के बदले, सूखे, वृक्षों को काष्ठ–संचयन करने का आदे"ा देते हे। कालिदास शंकुतला तो वनवाला ही है। वह भीषण गर्मी में भी अपने प्रिय पौधों व लताओं को कुॅए से जल सींचकर खिचकर पिलाने से नही थकती। उसे फूलों से वैणी सजाना बहुत पसंद हैं, फिर भी यह सोचकर कि फूलों के तोड़ने से पेड़ों को कष्ट होगा, वह पुष्प नही तोड़ती। इतनी कोमल संवेदना वि"व के किसी भी साहित्य व संस्कृति में उपलब्ध नही है।

आज यूरोप की जातियों ने आस्ट्रेलियां, अमेरिका, आदि दे"ाों में जाकर प"ाु–पक्षियों का जो संहार किया, जंगलों का जो विना"ा किया, वहॉ कि आदिम जातियों को जिस अमानवीयता से समाप्त किया, यह सब जानकर रौंगटे खड़े हो जाते है। आज वि"व में पर्यावरण की समस्याएं अधिकां"ातः इन्ही उन्नत दे"ाों द्वारा पैदा की हुई है। सारी पृथ्वी मानों विषाक्त गैसों, प्रदूषित जल भंडारों, अवांछित वैकिरणों व रसायनों से त्राही–त्राही कर उठी है।

हमारा दे"ा भी इसी प्रवृत्ति का "िाकार हो रहा है। हम भी धीरे–धीरे पेड़–पौधों, प"ाु–पक्षियों, की अस्मिता भूल गए है। हम पेड़ को सिर्फ़ मांस भक्षण की दृष्टि से देखते है। हमारी यह उपभोक्ता दृष्टि, हमारे लिए विना"ाकारी सिद्ध होगी, क्योंकि इस पृथ्वी पर हमारी ही तरह अन्य प"ाु–पक्षियों को भी रहने का, जीने का व स्वच्छन्दता का अधिकार है। प"ाु–पक्षियों व पेड़ों को ना"ाकर हम प्रकृति चक्र को तोड़ रहे है। प्रकृति में अन्तनिर्हित गहन व सूक्ष्म अन्तः संबंधों को समाप्त कर रहे है। इसका दुष्परिणाम हमें ही नहीं हमारी आने वाली पीढ़ी को भी भुगतना होगा।

समकालीन हिन्दी कविता अपने समय और समाज से सजग दिखाई देती है। समकालीन कवि यह पहचान रखते है कि मनुष्य की प्रगति में प्रकृति का अपना योगदान है। प्रकृति से अलग होकर या कटकर प्रगति की दि"ाा में प्रयाण अनर्थ की ओर प्रयाण है। इसलिए समकालीन कवि मनुष्य और प्रकृति के बीच के अटूट रि"ते को रुपायित कर वर्तमान पारिस्थिक संकट के प्रति अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। लीलाधर मंडलोई की बहुत सी कविताओं में प्रकृति और मनुष्य के बीच आत्मीय संबंधों का उल्लेख है– 'गूलर का नया अनुवाद, याद आये पिता, जैसी कविताओं को उदाहरण के रुप में देखा जा सकता है। पेड़ों के फल–फूल पक्षियों को कितना आनंद प्रदान करते है। पक्षियों के मादक संगीत की मिठास शायद फलों से उन्हें मिल जाती है। मनुष्य उस माधुर्य में तल्लीन हो जाता है। सभी को आनन्द प्रदान करने वाले उसी पेड़ का छाल ही घाव पर मरहम का काम करता है। ऐसा पेड़ कवि का पिता हो जाता है। ऐसे स्नेहिल सम्बन्ध रखने वाली प्रकृति के विना"ा पर कवि लीलाधर मण्डलोई अत्यन्त दुःखी दिखाई देते है। क्योंकि प्राकृतिक संपदा के नष्ट होने से प्राणि जगत की जो हानि होती है। वह मानव संसार से भी जुड़ी हुई हानि है। ''उनका होना न होना,'' कि वहाँ पेड़, नामक, जन्म कथा, धरती की सुगंध आदि कविताओं में प्राकृतिक विपदाओं से नष्ट होती प्रकृति संपदा के सामने भूखे रहने को मजबूर प"ाु–पक्षियों के वं"ा ना"ा की इंगित कर पृथ्वी के नष्ट होने की आ"ांका जताई गई हैं दूसरी ओर मनुष्य के कुकर्मों से विना"ा के कगार पर खड़ी पृथ्वी को बचा सकने की आस्था भी व्यक्त की गयी है। सूखती–कराहती नदी, विलीन होती जा रही चिड़ियों की आवाज झरनों की सिसक, नग बचा–बचा पहाड़, उनके बीच भूखा भटका प"ाु, यह सोचकर खड़ा है कि कुछ वनस्पतियाँ है कि

''चिलकती दीखती / दूर बहुत कि बची शायद /
इतनी जरुर कि वह जान सके उनका होना न होना।''[59]

59 लीलाधर मडलोई : काल बाँका तिरछा–पृ0 301,पंच"ाील शोध समीक्षा वर्ष–2 अंक 8ए,,स0 हेतु अप्रैल जून–2010 सं0 हेतु भारद्वाज

मानव और प्रकृति के बीच का संबंध अटूट है। ये दोनों परस्पराश्रित है। किन्तु मनुष्य ने अक्सर स्वार्थता ही दिखाई है। रोजमर्रा के जीवन में पेड़ ने मनुष्य को इतना कुछ दिया है कि उसमें वापस पेड़ को क्या मिला? 'पेड़ शीर्षक कविता में अ"ोक सिंह ने यह प्र"न प्रस्तुत किया है।–

''पेड़ों ने सबकों सब कुछ दिया
चिड़ियों को घोंसला
प"ाुओं को चारा
मुसाफिर को छाया
भूखों को फल
पुजारी को फूल/वैद्य को दवा
बच्चों को बाहों का झूला/चूल्हों को लकड़ी/घर को दरवाजे,
छत, खिडकियाँ/नेता अफसरों को कुर्सियॉ/बदले में इन सबने
पेड़ों को/अब तक क्या दिया?।''[60]

लीलाधर मंडलोई की 'अनुपस्थिति' शीर्षक कविता, एक प्रकार से इस सवाल का जवाब प्रस्तुत करती है। मनुष्य के क्रूर अतिक्रमण से खो जाने वाली प्रकृति सम्पत्ति की अनुपस्थिति से उत्पन्न होने वाले भयानक स्थिति की ओर प्रस्तुत कविता हमारा ध्यान आकर्षित करती है। झरने का संगीत, जल फुहार, मछलियां, पेड़, सब नष्ट होते जा रहे है। कुल्हाड़ी के घाव से पेड़ की मृत्यु हो जाती है। प्रतीकात्मक ढंग से कवि व्यक्त करते है। कि दोस्त या रि"तेदार जैसे एक साथ चलने वालों में से एक मनुष्य व दूसरे पर पत्थर फेंकने और कुल्हाड़िया बरसाने लगता है–

''अनुपस्थित– हुआ इस तरह वह और
उपस्थित हुई असंख्य कुल्हाडियाँ।''[61]

[60] इन्द्रप्रस्थ भारती, अक्टूबर–दिसम्बर, 2005, पृ0 110
61 इन्द्रप्रस्थ भारती, अक्टूबर–दिसंबर–2005, पृ0सं0 –70

मानवता की समाप्ति और पा"ाविकता की उपस्थिति को भी कवि इंगित करते है। इक्कीसवीं सदी के आली"ाान जीवन के स्वप्न देखने वाला मनुष्य ही पेड़ों एवं जगलों का सफाया करके मकान बनवाता है। कंक्रीट के जंगल को ही विकास एवं सुविधा मानने वाला मनुष्य यह समझने की कोि"ा नहीं करता कि –

''इमारत खड़ी हो सकती है/एक दिन में
मगर एक पेड़ के खड़े होने में/
बरसो–बरसो लगते है''[62]

इस पृथ्वी के संतुलन को बनाये रखने में पेड़ और जंगलों की जो महत्ता है उससे परिचित होने की जरूरत है। धरती को अपनी बाहों में समेटकर पेड़ और जंगलों की जो महत्ता है उससे परिचित होने की जरूरत है। धरती को अपनी बाहों में समेट कर पेड़ उसे प्राकृतिक प्रकोपों से बचाता है। एक प्रकार का अटूट रि"ता पेड़ और धरती के साथ रह जाता है।– ''बीज मन्त्र'' नामक कविता में राधे"याम तिवारी ने इस आत्मीयता को स्वर दिया है–

''एक विराट वृक्ष की
क्षमता लिए/समय पाकर/दबा हुआ बीज/
धरती से जूझकर/अंततः निकल ही आया बाहर/
वह जितना बाहर निकल रहा है/
उतना ही भीतर तक जाता है/बाहर निकलकर/
धरती से उसका जुड़ाव/कम नहीं होता/
वह धरती को पकड़ता है/जैसे प्रेमी पकड़ते है/
प्रेमिका का हाथ /जब तक है /धरती के साथ/
फैलता ही चला जा रहा है/जुड़कर लड़ता/और जुड़कर जुड़ता/
यही है इसका/बीज मंत्र।''[63]

[62] राजेन्द्र उपाध्याय, लोग जानते है, पृ0 37
63 समकालीन भारतीय साहित्य जुलाई–अगस्त, 2000 पृ0–89)

मनुष्य और पारिस्थितिकी के बीच भी यही सुदृढ़ आत्मीय संबंध बना रहता था। लेकिन जब नफे–नुकसान के आधार पर सब कुछ को देखना शुरु हो गया तो काया पलट हो गया। उसके विषय में त्रिलोचन का मानना है कि–

''हानि–लाभ वैसे दो शब्द है
जिनका हाट–बाट और घर–घर में चलन है।''[64]

हमारे दे"ा में ऐसी मान्यता रही है। कि पेड़ गुरु के समान है। पेड़ को काटकर गिराना गुरू हत्या के समान माना जाता है। 'अर्न्तसम्बन्ध' कविता इस सच्चाई को मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करती है–

''सूखी लकड़ियाँ बीनने काटने की
दौड़ धूप से बचने के लिए
अबाहु हरे पेड़ की
डालें काट लाया
आश्रम पहुँचा तो गुरु/धरती पर पड़े थे/
छात्र घेरे थे/आश्रम में सन्नाटा था/ गुरु की बाह पर किसी ने
कुल्हाड़ियाँ चलाई थी/ रक्त धरती में सीझ रहा था।''[65]

इसी प्रकार पृथ्वी के पेड़ जीवनदायी है। हरी"चन्द्र पाण्डेय इसलिए 'मंच' कविता द्वारा आह्वान करते है कि–

''न काटों पेड़
पेड़ मंच है पक्षियों के

पक्षी यहां से अपनी बात पूरी आजादी से उठाते हैं।''[66]

हिंसा के जरिए विरोधी स्वरों को समाप्त करने का दौर उदारीकरण का दौर है। फिर भी मनुष्यता पर वि"वास रखने वाले प्रगति"ील रचनाकार निरा"ा होने के

64 त्रिलोचन प्रतिनिधि कविताएँ पृ0 31

65 देवी प्रसाद मिश्र : प्रार्थना के ि"ाल्प में नहीं, पृ0 26, ए, पंच"ील शोध समीक्षा – वर्ष–2, अंक–8, अप्रैल–जून 2010 स0 हेतु भारद्वाज, पृ0 82

66 हरी"चन्द्र पाण्डे–भूमिकाएं खत्म नहीं होती, पृ0–62 पंच"ील शोध समीक्षा– सं0 हेतु भारद्वाज,वर्ष–2, अंक–8,2010,पृ0–82

लिए तैयार नहीं होते। वे आ"ाा रखते है कि अब भी सब कुछ खो गये नहीं हैं संरक्षण करने लायक बहुत कुछ शेष रह गये है– 'निर्मला पुतुल' आत्मवि"वास के साथ कहती है कि बहुत नष्ट होने के बावजूद और भी बहुत कुछ खो गए नहीं है। बहुत कुछ बाकी है जिनकी रक्षा मनुष्य कर सकता है।– ''आओ मिलकर बचाएँ'' की पक्तियाँ है।

''जंगल की ताजी हवा
नदियों की निर्मलता
पहाड़ों का मौन
गीतों की धुन
मिट्टी का सौधापन/फसलों की लहलहाहट
और इस अवि"वास भरे दौर में
थोड़ा सा– वि"वास
थोड़ी–सी उम्मीद
थोड़े से सपने/आओ, मिलकर बचाएँ
कि इस दौर में भी बचाने को
बहुत कुछ बचा है, अब भी हमारे पास।''[67]

समकालीन कवि ओम प्रकाश बाल्मीकि मानव की स्वार्थी प्रवृत्तियों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते है। वह कहना चाहते है कि आज का मानव पूरी तरह से वैि"वकरण की चपेट में आ गया है। वह हर चीज में लाभ–हानि के बारे में सबसे पहले सोचता है। वह किसी चीज को लेकर ढोना नहीं चाहता। उसकी प्रवृत्ति ही युज एण्ड थ्रो वाली हो गयी है। पेड़ों के संबंध में अपना विचार व्यक्त करते है–

''पेड़ तुम उसी वक्त तक पेड़ हो,
जब तक पत्ते
तुम्हारे साथ है
पत्ते झरते ही

[67] हरि"चन्द्र पाण्डेय – भूमिकाएँ खत्म नहीं होती, पृ0 62

पेड़ नहीं ठूठ कहलाओगे
जीते जी मर जाओगे।''[68]

मानव के इस रुप को, जो अपने स्वार्थता में सभी कुछ को नष्ट करने पर तुला है । कवि ने वृक्ष का मानवीकरण करते हुए स्वयं वृक्ष से उसका बयान कहलवाता है–

''मत छुओ, हमें मत छुओ बंसत/ हो सके तो लकड़हारों को बुलाओ।
जो काट डाले हमें/आग में झोंक दे
हमारे स्वप्न में जब कोई जगह नहीं
फलों और फूलों से लदे होने के
स्वप्न के लिए/ अब हमारी रात में/हमारी नींद में
सिर्फ मृत्यु घूमती है नंगे पाव/दौड़ते, भागते, हॉफते /
असमय मरते है बच्चे, औरत पुरुष निरपराध।''[69]

जहाँ हर तरफ संहार का वातावरण विद्यमान हो। सबका विनष्टीकरण हो रहा हो, सबकी जिंदगी क्षणिक हो गयी हो। मृत्यु का खौफ सबकी ऑखों में, नींद में और सपनों में व्याप्त हो गया हो। इस प्रदूषित वातावरण में मौत रूपी प्रदूषण हर तरफ अपना जहरीला प्रभाव दिखा रहा, वे समकालीन कवि पंकज सिंह कहते है।

''अनेक सदियों से होता हुआ
चट्टानों में बंद जीवा"मों में सुरक्षित यह
यहाँ तक आया है प्रदूषित हवाओं और
लालसाओं का जहर समेटने,
काठ होते सपने और अपने गिलहरियों की
मौत के दुःखांत में, दुर्भाग्य की शीत में अकड़ी ऑखें हिलाता
आ"ांकित पक्षियों को शायद पास बुलाता।''[70]

---

[68] नगाड़े की तरह बजते शब्द – निर्मला पुतुल, पृ0 77, पंच"ील शोध समीक्षा
[69] वस्स बहुत हो चुका – ओमप्रका"ा बाल्मीकि, वाणी प्रका"ान, 21–ए, दरियागंज, नई दिल्ली–110002, प्र0सं0 1997
[70] जैसे पवन पानी – पंकज सिंह, राजकमल प्रका"ान दिल्ली – प्र0स0 2001

कवि पंकज सिंह पेड़ की प्राचीनता की ओर इंगित करते है। पेड़ कैसे चट्टानों से दबा होकर भी संघर्ष करता हुआ, अपना विकास करता है। और अपने जीवन को जीते हुए दूसरों के जीवन को भी सूखी बनाता है। कि आज के इस प्रदूषित वातावरण में उसका अस्तित्व खुद खतरे में पड़ गया है। ऊपर से मनुष्य उसका लगातार–"ोषण कर रहा है। उसकों नष्ट कर रहा है। जिसके कारण पेड़ के अंदर वह भयावह स्थिति पैदा हो गयी है। कवि विनोद कुमार शुक्ल ने 'एक हरे पेड़ को' नामक कविता में इसी ओर संकेत किया है–

''एक हरे पेड़ को
देखने में लगता है डर पूरा
दस हरे पेड़ों को देखू तो दस गुना
डर एक–एक पेड़ को कट जाने का
डर हरे–हरे जल जाने का एक दम
लपटों की छाया देते, ऐसे पेड़ के नीचे से गुजर
गुजर गया जहाँ पहुँचा, वह दिन यह दिन है।
जिसमें सुख और दिनों
जैसा जलता है।''[71]

पेड़ के अंदर व्याप्त भय के बोध को बड़ी ही सहानुभूति के साथ कवि प्रदर्"ित करता है। पेड़ों को भय इस बात का है कि उनके हरे–हरे डालों को काट दिया जा रहा है। उन्हें जिंदा जलाया जा रहा है। पेड़ों के इस दुःख को नरे"ा सक्सेना 'एक वृक्ष भी बचा रहे' नामक कविता में व्यक्त किया है। सक्सेना जी यहाँ तक कह दिये है कि जब मैं इस संसार से विदा होऊ तब मुझे जलाने के लिए लकड़ियों का प्रयोग न कर बिजली का प्रयोग किया जाय, यह उनकी अंतिम इच्छा है। आगे वह कहते है –

''अंतिम समय जब नहीं जायेगा
कोई साथ /एक वृक्ष जायेगा

[71] 'सब कुछ होना बचा रहेगा' विनोद कुमार शुक्ल, राजकमल प्रका"ान, प्रा0लि0, नई दिल्ली–110002, प्र0सं0–1992

अपने गौरेयों–गिलहरियों से बिछुड़कर
साथ जायेगा एक वृक्ष
अग्नि में प्रवे"ा करेगा वही मुझसे पहले
'कितनी लकड़ी लगेगी'
श्म"ाान की टाल वाला पूछेगा
गरीब से गरीब भी सात मन तो लेता ही है।
लिखता हूँ अंतिम इच्छाओं में
कि बिजली के दाहघर में हो मेरा संस्कार
ताकि मेरे बाद
एक बेटे और एक बेटी के साथ
एक वृक्ष भी बचा रहे संसार में।''[72]

कहते का तात्पर्य है कि पेड़ और मनुष्य का जो आत्मीय संबंध है वह मृत्यु के बाद भी नहीं खत्म होता। मृत्यु के बाद पेड़ सभी जीवों को छोड़कर अंतिम चिता पर जाता है। कहने का अर्थ यह कि वह मनुष्य के साथ ही जीता है और मरता है। यानी मनुष्य के साथ उसका संवेदनीय लगाव हो गया है। पेड़ न केवल मानव के साथ बल्कि प्रकृति के हर जीव–जन्तु के प्रति सम्बद्ध है। पेड़ भी स्वच्छन्द होना चाहते है। वह पक्षियों की तरह आका"ा में उड़ना चाहते है किन्तु उनका उतना ही लगाव धरती मॉ से जिनके हृदय में उसकी जड़े फैली है। कवि प्रमोद जो"ाी में 'पेड़' नामक कविता में पेड़ की इसी भावनाओं को व्यक्त किये है।

''चाहता था मैं भी/कि उड्ु आसमान में
जहाँ न हो/ कोई रोक–टोक
लाल हरी बत्तियाँ/पुलिस या सीटियाँ
लेकिन मैंने पाया/ कि मेरे पाँव
जमीन ने पकड़ लिए है/और उनमें उग आयी है जड़ें
जो बढ़ती जा रही है। लगातार जमीन के भीतर
और मैने पाया/कि जड़े कितनी फैल रही थी

[72] 'वहाँ हवा रही होगी', प्रमोद जो"ाी – आधार प्रका"ान, पंचकूला (हरियाणा), प्र0सं0–1994

जमीन की ओर/उतना ही हरा
होता जा रहा था मैं।''[73]

पेड़ के अंदर भी एक हृदय निवास करता है। उसमें भी जीवंतता रहती है तभी तो वह स्वच्छन्द वातावरण में उड़ना चाहता है। लेकिन उसे क्या पता था कि उसकी स्वतंत्रता में मनुष्य ही गंधक है जिसके लिए वह सब कुछ अपना न्योछावर करता है। मनुष्य पेड़ों को काटकर ऐसा महसूस करता है। कि उसने कोई विजय हासिल कर लिया है। उसके चेहरे पर मुस्कुराहट होती है। किन्तु उसे यह पता नहीं है कि कल जब ये पेंड़ नहीं होंगे तो उसपर निवास करने वाले पक्षी जो सुबह हमारी आगवानी करते है कौन करेगा। पेड़ के नष्ट होने साथ पक्षी के भी अस्तित्व पर खतरा नजर आता है–

''पंछी का बसेरा था वह आम का पेड़
जो कल काट डाला गया
पत्तियों अभी हरी थी उसकी
वौर फूट इस वसंत में
कोयल भी कूकी थी!
लेकिन आदमी की हवस के आगे
आखिर कर भी क्या सकते है थे ये पंछी
बस चे–चें करते मँडराते रहे
कटते हुए पेड़ के ईद–गिर्द।''[74]

रामदर"ा मिश्र की कविता 'पेड़' पेड़ों की विभिन्नता को व्यक्त करती है। जिनमें आम, जामुन, महुआ, कटहल, जो अलग–अलग जातियों के है। अलग–अलग फूल तथा फल देते हे। ये अपने फूलों,फलों, छॉव, का स्वयं भोग नहीं करते। इसका सारा लाभ अन्य जीव ही उठाते है। ये पेड़ आंधियों में तनकर खड़े होते है, क्रोध में बजने लगते है। इनपर पक्षी फूदकते है, चहचहाते है। लेकिन

[73] समुद्र पर हो रही बारि"ा – नरे"ा सक्सेना, राजकमल प्रका"ान, प्र0स0 2001
[74] 'पक्षी बेघर होते हैं' – संजय कृतांत

''कोई पेड़ यह नहीं कहता–
तुम उस पेड़ पर क्यों जाते हो?
कोई किसी और से यह नहीं कहता
''तुम मेरा रस पीकर
उस पेड़ पर क्यों गुनगुनाते हो?
कोई किसी हवा को नहीं बांधता
और किसी को छूकर आयी हुई हवा
किसी के लिए अछूत नहीं होती।
किसी के भी पत्ते से भी झरकर
पानी किसी की भी जड़ में चला जाता है
धूप हो या चांदनी
सभी उसमें एक साथ नहाते है।''[75]

पेड़ों का यह जो समर्पण है, त्याग है, मानव उसकां अनदेखा करता है। उसका आज से नहीं जमाने से शोषण करता आया है। कवि डॉ0 f"kवनारायण मानव के कुकृत्यों से उत्पन्न दुष्परिणामों की ओर संकेत करते है– उनकी कविता 'एक पेड़ का निवेदन' में पेड़ मानव समुदाय से लगातार यह निवेदन करता है कि मुझे मत काटो मुझे बचाओं। जब भी मानव ने शस्त्रों से पेड़ को अलग किया है उस समय उसका अस्तित्व खत्म हो गया है। साथ ही सारी मनुष्यता नंगी हो गयी है। पूरी नैतिकता बेपर्द हुई है और सभ्यता विलुप्त हो गयी है। इसलिए कवि कहता है कि वे मनुष्यों–तुम पेड़ों की रक्षा करो, इनको बचाओं, क्योंकि........

''जब–जब तुमने मुझे छेड़ा है
प्रकृति का संतुलन बिगड़ा है
मचा है धरती पर विना"। का तांडव
और हुआ है हरण
जीवन की सहजता का
मेरी हरीतिमा के विध्वंस से

[75] पेड़ – 'राम दर"ा मिश्र' – पृथ्वी के पक्ष में, सं0 राधे"याम तिवारी इन्द्रप्रस्थ प्रका"ान, दिल्ली – प्र0सं0–2006

रचना चाहते हो
अपने आराम के साधन
और चाहते हो/तृप्त करना अपनी मानसिक,
क्षुधा को, बनाकर मेरा प्रसाधन।''[76]

आज पेड़ों को अपने नेह जल से सींचने की आव"यकता है। क्योंकि यह सांस है हमारे जीवन की, इनकी सुरक्षा हमें आदमी के हिंसा से करना है। ये हमारी ही मुहब्बत की छॉव है। इतना ही नहीं ये हमारे आदमी होने का पैगाम भी है इसलिए इनकी रक्षा करना अति आव"यक है। क्योंकि

''धूप मेरे घर की समृद्धि है
पेड़ दे"ा की समृद्धि
पेड़ के साथ जन्म से लेकर
मेरा घनिष्ठ संबंध है
पेड़ पैदा होने से लेकर मरने तक
जिस्म के जलने की
जिद शहादत है
पेड़ भागती हुई जमीन को पकड़ने वाली
बाहों का नाम है
पेंड़ जंगल में भटकी
रोटी की खु"ाबू है।''[77]

वृक्ष से मानव जाति का प्राचीन संबंध बहुत गौरव"ााली रहा है। वह जिस तरह से हमारे सभ्यता, संस्कार और संस्कृति से जुड़ा हुआ है। इसका उत्तर मनुष्य खुद जानता है। पेड़ों के साथ मानव की यह घनिष्ठता उसके सहयोगात्मक प्रवृत्ति की ओर संकेत करती है। तभी तो पेड़ आदमी के छोटे होने पर अपनी टहनियों को झुका देता है, बच्चों को फल, स्त्रियों का फूल, चाहने वालों को प्रेम तथा इसके

[76] 'एक पेड़ का निवेदन : डॉ0 ि"ावनारायण, पृथ्वी के पक्ष में – सं0 राधे"याम तिवारी, इन्द्रप्रस्थ प्रका"ान, दिल्ली–2, प्र0स0 2006, पृ0 257
[77] युवा कवि : नये हस्ताक्षर–सं0 बलदेव वं"ाी किताबघर प्रका"ान शीलतारा हाउस–241486, प्र0सं0 1987

अलावा छाव और आड़ भी देता है। लेकिन मनुष्य पेड़ों की पसलियों तक से वसूल करता है। कवि चन्द्रकांत देवताले कहते है–

''पेड़ों का हरापन मनुष्यों की
भूरी–भुरसट दुनिया में
निचाटपन के विरुद्ध
पानी की हलचल है
पानी की हाथों की तरह
पेड़ों की टहनियां
लगातार हिलती है
और पत्तियों की स्निग्ध भाषा
आदमी की आँखों को
बंजर होने से रोकती है।''[78]

इस प्रकार समकालीन कवियों ने पर्यावरण के मुख्य घटक वृक्ष को चिंतन में लाने का प्रयास किया है।

fu"d"k

इसमें पर्यावरण का सामान्य परिचय, समकालीन कवियों की पर्यावरणीय चिंता, प्राचीन कवियों की अपेक्षा विराट रूप में है। समकालीन कवि प्रकृति में विद्यमान उसके सभी घटकों को उद्घाटित किया है। इसमें पर्यावरण विनाश के प्रति चिंता, मनुष्य और पर्यावरण के बीच सहज सम्बन्ध की चिंता तथा पर्यावरण के साथ तादात्म्य, एकात्म्य तथा उसके संरक्षण और सुरक्षा के प्रति चिंता, इस अध्याय का प्रमुख विषय है। इसलिए पर्यावरण के प्रमुख घटकों को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया गया है जिसमें पृथ्वी, पत्थर, जंगल, पानी, नदियाँ, समुद्र, आदिवासी, वृक्ष, बसंत और विविध आदि को उद्घाटित किया गया है।

[78] पेड़ – चंद्रकांत देवताले, पृ0 124

v/;k;&N%

समकालीन हिन्दी कविता में पर्यावरण संरक्षण की प्रतिबद्धता

1- lkSUn;Z fp=.k vkSj fpUrk

2- ifjj{k.k dh vkfnoklh Hkwfedk

3- laj{k.k dh L=h Hkwfedk

4- fofo/k

fu"d"kZ

1- I kUn;I fp=.k vkj fprk

धूमिल ने 'बसंत ऋतु का वर्णन किया है। उसके आगमन के वे सारे लक्षणों का बया करते है। समय और हालात के बीच बसन्त का आगमन अपने आप में महत्वपूर्ण है। टिमटिमाते हुए आदमी की आँखों में ऊब है। और पड़ोसी के लिए लम्बी यातना के बाद किसी तीखें शब्द का आ"ाय अप्रत्यार्"ात ध्वनियों के समानान्तर एक खोखा मैदान है। और मासिक धर्म में डूब हुए लते–सा खड़खाड़ाता हुआ दिन, जाड़े की रात में, जले हुए कुत्ते का घाव सूखने लगा है। धूमिल कहते है–

''मेरे लिए वसन्त
बिलों के भुगतान का मौसम है
और यह वक्त है कि मैं भी वसूल करूँ
टूटती हुई पत्तियों की उम्र
जाड़े की रात जले हुए कुत्ते का दुस्साहस
वारण्ट के साथ आये अमीन की उतावली और पड़ोसियों का तिरस्कार
या फिर
उन तमाम लोगों का प्यार
जिनके बीच
मैं अपनी उम्मीद के लिए
अपराधी हूँ।''[1]

रघुबीर सहाय के लिए बसंत का आगमन किसी बँगले के किसी तरू पर कोई चिड़ियाँ कुऊकी, चलती सड़क के किनारे लाल बजरी पर चुरमुराये पॉव तले, ऊँचे तरूवर से गिरे, बड़े–बड़े पियराये पत्ते जैसे महसूस होते है।

''कोई छः बजे सुबह जैसे गरम पानी से नहाई हो
खिली हुई हवा आयी, फिरकी–सी आयी चली गयी।
ऐसे फुटपाथ पर चलते–चलते
कल मैने जाना की वसन्त आया।''[2]

[1] पृथ्वी के पक्ष में – सं0 राधे"याम तिवारी, धूमिलः– बसन्त, पृ0 79
[2] 'बसंत आया' – रघुवीर सहाय – 'पृथ्वी के पक्ष में' सं0 राधे"याम तिवारी, पृ0 83

रामदर"ा मिश्र के यहा बसंत बंद दि"ााओं को तोड़ती धूल–भरी हवाएँ बंहा रही है, उदास लय में झरते चले जा रहे है पत्ते आका"ा में लदा हुआ लम्बा सा सन्नाटा, चट्टान की तरह यहाँ वहाँ दरक रहा है। एक बैचैनी लगातार चक्कर काट रही है सारे ठहरावों के बीच जमी हुई आंखे अपने से ही लड़ती हुई अपने से बाहर जाना चाहती है। तभी मालूम होता है कि बसंत का आगमन हो रहा है–

''पत्तियों की उदास लय में से उगता
नये हरे स्वरों का एक जंगल
नंगे पेड़ों के बीच कसमसाता
लाल–लाल आभाओं का एक नया आका"ा
तुम कब तक प्रतीक्षा करते रहोगे बसंत की
बंद कमरों में
तुम्हें पता नहीं
बाहर तो बसंत आ चुका है।''[3]

रघुवीर सहाय के 'बसंत आया' कविता में बसंत के आगमन पर उसके आरम्भिक लक्षणों को दिखाने का प्रयास है। कवि प्रकृति को अपने साथ लेकर चलता है। कवि कहना चाहते है कि बसंत के जाने पर किस प्रकार से जंगलों के किसी पेड़ पर कोई चिड़ियाँ कुहकती है, चलती सड़क के किनारे लाल वजरी पर पेड़ से गिरे पत्ते किस प्रकार पैर के नीचे आने पर चुरमुराने की आवाज करते है। हवाओं में ताजगी हो गई है। इस प्रकार बसंत के आगमन की सूचना प्राकृतिक माध्यम से होती है। बसंत के आने का संकेत सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' की भी कविताओं में हुआ है। जहाँ बसंत के आने पर सखियों का मन हर्ष से भर जाता है। इतना ही नहीं।

''किसलय–वसना नव–वय–लतिका
मिली मधुर प्रिय उर तरू पति का
मधुप –वृन्द बन्दी

[3] बाहर तो बसंत आ गया है राम दर"ा मिश्र, पृथ्वी के पक्ष में, पृ0 90

पिक स्वर नभ सरसाया
लता –मुकुल–हार–गन्ध –भार भर
वही पवन बन्द मन्द मन्दतर
जागी नयनों में वन
यौवन की माया।''[4]

नेमिचन्द्र जैन ने अपनी वसन्त की एक और कविता नामक शीर्षक कविता में बसंत के आगमन के रूपायित किया है। किन्तु आज का मनुष्य अपनी भौतिक समस्याओं में इस प्रकार उलझ गया है। कि वह प्रकृति से लगातार दूर जा रहा है। उससे बिछड़ रहा है। लगातार प्राकृतिक संस्कृतियों से अपने को अलग पा रहा है। इसलिए मनुष्य प्रकृति क्रियाकलापों को समझ नही पा रहा है क्योंकि उसको–

''आजकल
दिन में बिजली घर की चिमनियों के धुएँ
और रात में सड़कों पर
फ्लोरेसेण्ट ट्यूबों की रो"ानी की सिवा
कुछ नहीं दीखता
फूल सारे
सलाना फ्लावर सो में चले गये है
सफाई कर्मचारियों की हड़ताल से
सड़ते हुए कूड़े की गन्ध ही
हर तरफ सब जगह पीछा करती है''[5]

कवि सर्वे"वर दयाल सक्सेना ने 'आये महन्त बसन्त' नामक शीर्षक कविता में बसंत के आगमन को महन्त के रूप में निरूपित किया है। यहाँ बसंत का आना एक दा"ानिक पृष्ठभूमि के रूप में स्वीकार किया गया है।

''श्रद्धानत तरुओं की अंजलि से झरेपात, कोंपल के मुँदे नयन थर–थर–थर
पुलकगात/अगरू धूम लिये झूम रहे सुमन–दिग–दिगन्त।

[4] सखी बसंत आयाः सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'पृथ्वी के पक्ष में– पृ0–25
[5] पृथ्वी के पक्ष में पृ0–92

आये महन्त बसन्त।''
खड़–खड़ करताल बजा नाच रही विसुध हवा,
डाल–डाल अलि–पिक के गायन का बंधा समॉ
तरू –तरू की ध्वजा जय–जय का है न अन्त।
आये महन्त बसंत।''[6]

विजेन्द्र बसन्त की उत्पत्ति की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित करते है। यहॉ कवि ने बसंत का मानवीकरण किया है। मानवीकरण के रूप में बसंत के बारे में अपना विचार व्यक्त करते है।

''जिस धरती से जनमता है अंकुर
उसी से फूटता हूँ मैं
मेरी खाल बचपन में
फूल जैसी नरम थी/अब गाढ़ी धूप में/काली और
कठोर हुई है।''[7]

समकालीन कवि विनय दुबे ने भी बसन्तागमन को पूरी तरह व्याख्यायित करने का प्रयास किया है। बसंत के आने पर किस प्रकार से एक रोमांच भरा माहौल हो जाता है। हर तरफ हर जगह वही रोमांचित भावनाएँ, वही मधुरता, वही मिठास, वही रूपमाधुर्य, वही सौम्यता व्याप्त नजर आती है। ऐसे ही आनंन्दित वातावरण की ओर विनय दुबे का इ"ाारा है। वह मौसम की मधुरता वह सिहरन, वह आनन्दित भावनाएँ जो वसन्त ऋतु लेकर आती है सबकों बस में कर लेती है।

''तुम बन जाओं निर्झर
कल–कल बहता
दूर गॉव का
मै लड़की की प्यास
पेड़ के नीचे बैठी
भैस चराती

[6] आये महन्त बसन्त – सर्वे"वरयाल सक्सेना, पृथ्वी के पक्ष में, पृ0 113
[7] बसंत–विजेन्द्र– पृथ्वी के पक्ष में पृ0–149

हम–तुम प्रेम–प्रेम खेले
राधा रानी आओ
देखों बसंत का महीना है यह
आ गये है वौर आम में।[8]

इस प्रकार हम देखते है कि बसंतागमन एक प्रेम का संदे"ा लेकर हमारे सामने उपस्थित होता है तथा सबको प्रेममय कर देता है। उसी बात को कवि आग्नेय बड़े ही सहज ढंग से व्यक्त करते है। जब बसंत आता है इस क्षण हिलता पीपल, फूलता नीम, उड़ती तितली, आका"ा का गोल नीला टुकड़ा, सीढियों पर चढ़ती धूप, मेज पर बिखरी किताबें, हरे–हरे रंग की पत्ती दीवाल, कमरे को अलग करता नीला पर्दा, बाहर के फैलेपन की जोड़ती खिड़की, रेडियों पर रानी अलार्म घड़ी, स्मरण की गहरी गाँठ लोग भूल जाते है। इसकी सुध–बुध भूल जाते है। साथ ही बसन्त के आगमन के इस प्रकार से भी व्यक्त करते हुए।

''हर चीज मुझसे बोलती है।
निः"ाब्द हो आये।
अभी इसी क्षण।
हर चीज जो मुझे जोड़ती है।
अलग हो जाये
अभी इसी क्षण।
तब मैं अकेले वन की भीड़ में
बहुत सी चीजो के अंधकार में
कटावों की डूबती शाम में
बहुत सारा नया जीवन
बहुत बड़ी आयु बसंत की
''जी जाऊँगा।''[9]

[8] बसंत में–विनय दूबे पृथ्वी के पक्ष में– पृ0 200
[9] बसंत की आयु – आग्नेय, पृथ्वी के पक्ष में, पृ0 205

समकालीन कवियों ने बसंत की महत्ता के बाद प्रकृति के और कई विषयों की ओर संकेत किया है। इस प्रकृति ने मनुष्य को क्या नहीं दिया है? जीवनयापन करने के लिए समस्त साधन और सुविधा। वनस्पतियाँ, तना, छाल, जड़े, फूल, पत्तियाँ, बीज के भीतर विद्यमान खनिज पदार्थ भी प्रकृति की ही देन है। इसके अतिरिक्त प्राकृतिक जीवों और मनुष्यों को बचाने के लिए विभिन्न प्रकार की औषधि भी प्रकृति ने दिया है किन्तु मानव ने प्रकृति द्वारा प्रदत्त इस अनमोल उपहार को नष्ट करने से पीछे नहीं रहा है। समकालीन कवि 'कुमार अम्बुज' ने अपनी कविता 'आयुर्वेद' में लिखा है –

अब कोई नहीं पहचानता जड़ी–बूटियाँ
जो कहते हैं कि हम पहचानते है – वे उद्योग है
शहद बनाती है मधुमक्खियाँ
और कम्पनियों के डंक।[10]

मानव केवल अपने लाभ और स्वार्थ में प्रकृति की हर वस्तु का स्वरूप अपने हिसाब से बदल दे रहा है। प्रकृति की स्वाभाविकता को पहचाने के लिए मजबूर कर देता है। मनुष्य अपने स्वभाव के अनुसार परिवर्तित करने का प्रयास कर रहा है।

जिस प्रकार से बसंत ऋतु का आगमन मानव मन को तृप्त करता है उसी प्रकार प्रत्येक ऋतु मानव मन से जुड़ी है। ग्रीष्म ऋतु का चित्रण करते हुए कवि सूर्यभानु गुप्त ने 'ग्रीष्म' कविता में कहते है –

रेत सहरा गई है मन तक।
गर्मियाँ आ के ये कहाँ ठहरीं
जी में आये, उतार दे तन तक[11]

ग्रीष्म ऋतु के आगमन से प्रकृति में गर्मी का आना स्वाभाविक है। गर्मी के मौसम में पृथ्वी पर विद्यमान सभी जीव–जन्तु, पशु–पक्षी यहाँ तक कि मानव सभी

[10] पृथ्वी के पक्ष में – स0 राधेश्याम तिवारी, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली, प्र0स0 – 2006, पृ0 199
[11] ग्रीष्म – सूर्यभानु गुप्त, प्रकाशन वही, पृ0 216

व्याकुल हो उठते हैं। इसी ओर समकालीन कवयित्री अलका सिन्हा ने संकेत किया है – उन्होंने अपनी कविता 'दोपहर गरमी की' में लिखा है –

पसरी है दोपहर लम्बी गरमी की
बैठी है चिड़ियाँ चुप
ताकती है टुक–टुक।
पत्ता तक नहीं हिलता
नही छेड़ती हवा
रूठी है क्या?[12]

वर्षा ऋतु का महत्व पृथ्वी पर अतुलनीय है। वर्षा के कारण प्रकृति सदाबहार के रूप में भी जानी जाती है। साथ ही इससे कभी नुकसान होता है तो कभी लाभ भी। वर्षा ऋतु जीवंतता का प्रतीक है। वर्षा होने से प्रत्येक छोटे–छोटे जीवों की उत्पत्ति स्वयं हो जाती है, घास–पूस स्वयं धरती की छाती भेदकर निकलने लगते हैं। प्रकृति हरी–भरी हो जाती है साथ ही मानव का जीवन भी हरा–भरा हो जाता है। इसी ओर समकालीन कवि गिरधर राठी ने 'बारिश' नामक कविता में लिखा है–

बारिश
जहाँ जोड़ती है
ठीक वही तोड़ती है
गुनगुनाती है
अपने–आप
लहराती
हहराती है
अपने–आप
चुप हो जाती है।[13]

---

[12] दोपहर गरमी की – अलका सिन्हा पृथ्वी के पक्ष में – सं0 राधेश्याम तिवारी, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन – कृष्णनगर दिल्ली–110051

[13] 'बारिश' गिरधर राठी, प्रकाशन वही, पृ0 139

वर्षा ऋतु के महत्व को अलका सिन्हा ने भी दर्शाया है।

> बूँद के पड़ते ही/चमक जाती है पत्ती/सहज रंग से घुल जाते है /सभी धुँधलके/और स्निग्ध, सौम्य हो जाता है/मौसम।[14]

बरसात होते ही मौसम में जो परिवर्तन होता है कवयित्री का उसी ओर संकेत है। हर जगह सुन्दरता व्याप्त हो जाती है। मौसम हरा भरा हो जाता है। वर्षा ऋतु के पश्चात् शिशिर ऋतु का आरम्भ होता है। धरती का तापमान धीरे–धीरे कम होने लगता है। सुन्दरता परिपक्व होती दिखाई देती है। इस मौसम में हमारी उफनती बेचैनी को मादक नशीली थपकियों से धीरे–धीरे सुलाने की कोशिश होती है। सरसों के फूल के रंग चटक नजर आते है। हमारे रक्त में बर्फ की बुरादे भरते हुए ये मौसम धीरे–धीरे ठंडा हो रहा है। समकालीन कवि मदन कश्यप 'शिशिर आ रहा है' नामक कविता में कहते है –

> धीरे–धीरे ठंडा हो रहा है मौसम
> कमजोर पड़ रही हैं
> पृथ्वी को गर्म रखने की
> सूरज की कोशिशें
> शिशिर आ रहा है।[15]

इस प्रकार समकालीन हिन्दी कविता में प्रत्येक ऋतुओं का सौन्दर्यात्मक चित्रण किया गया है।

2- ifjj{k.k dh vkfnoklh Hkkfedk

इस धरती पर मानव की एक प्रजाति ऐसी भी निवास करती है जिसका संबंध प्रकृति से है। वे प्रकृति के गोद में ही अपना जीवन बीताते है तथा प्रकृति को ही अपना सहचर समझते है। वे लोग सदियों से निष्कासित तथा सताए हुए लोग है। जिनकी निर्बल हड्डियों के बीच केवल उनकी आंते चमकती है जो पैसे की मार से काँपती है। वे निरा"ा लोग है लेकिन हता"ा नहीं है। इनकी अपनी आवाज छीन

---

14 बूँद के टपकते ही : अलका सिन्हा, प्रकाशन वही, पृ0 318
15 शिशिर आ रहा है – मदन कश्यप प्रकाशन वही, पृ0 289

ली गई हैं, अपनी थकान में भी वह टहलना चाहते है। इनकी उम्मीद कच्चे सूत से आज भी बंधी है फिर भी वह अपने जीवन से लड़ते है। वे केवल पुरातन पेड़ की थोड़ी सी छाया चाहते है।

''वे जो सृष्टि को केन्द्र है मगर
बरसों से गिरे हुए परिधि के बाहर
जिनके जीवन का हो रहा है व्यापार वि"ााल
जो हँस रहे है अभावों में
खाँसी के लिए खोदते हुए कटीली की जड़े
जिनसे टकराकर भीग रही है हवाएं
कोई ओट नहीं है जिनके तलुओं और जमीन के बीच
वे पहाड़, वे असभ्य, वे बर्बर
वे फिर भी मर मिटने को तैयार
उल्लसित खड़े जरुरतों के चौराहो पर
गलियों में, पठारों में, कोनों में, होते निर्वासित।''[16]

आदिवासी जीवन के संदर्भ में 'निर्मला पुत्तुल' धरती के दुःख को पहचानने का प्रयास करती है। धरती आदिवासी जनता के लिए जीवनदायिनी है। ऐसी धरती की धड़कन जो समझ नहीं पाते, कवयित्री उनपर अपना शेष प्रकट करती है–

''बूढी पृथ्वी का दुःख कविता में वे लिखती है
कभी ि"ाकायत न करने वाली
गुमशुम बूढ़ी पृथ्वी से उसका दुःख?
अगर नही ंतो क्षमा करना
मुझे तुम्हारे आदमी होने पर संदेह है।''[17]

इस बूढ़ी धरती माँ की कोख में अनेकों प्रकार के जीव–जन्तु, प"ाु–पक्षी निवास करते है। साथ ही धरती का सुसभ्य मानव भी निवास करता है। जो अपनी भोग–लिप्सा के धरती माँ का शोषण कर रहा है। तथा पेड़–पौधों, का ना"ा कर

16 अतिक्रमण–कुमार अंबुज, राधाकृष्ण प्रका"ान – नई दिल्ली
17 'नगाड़े की तरह बनते शब्द' निर्मला पुत्तुल पृ0–32

रहा है। किन्तु धरती मॉ के वे भी सपूत है। जो आज भी जंगलों में निवास करते। वे जंगलों में ही रहकर अपना जीवन सहचर के रूप में बीताते है, वे है आदिवासी। जिनका संबंध न केवल धरती से है बल्कि उन पेड़–पौधों से भी है जिनसे उनका भरण–पोषण होता है। पेड़ के पत्तों से वे अपना तन ढकते है उसके फलों को खाकर जीवन यापन करते है। इसलिए पेड़ों को भी आदिवासी जैसा मान लिया गया है कवि सूर्यभानु गुप्त 'पेड़ अब भी आदिवासी है' कविता में इसी चित्र को उभारा हो वे कहते है –

'' छोड़ते'' हैं ओढ़कर ऋतुएँ
आत्मा के अमर रहने की कथा–सी है।
पेड़ अब भी आदिवासी है।
घुट रहा है जिन्दगी का दम
पेड़ इतने हो गये हैं कम,
खो चुका अपना हरापन जो,
उन अभागी जर्द नस्लों की उदासी है
पेड़ अब भी आदिवासी हैं।''[18]

जंगलों में ठेले गए या वहाँ से भी खदेड़े जा रहे आदिवासी वंचित, भटके, विस्थापित, बंजारे या प्रकृति के मित्र है जिनको हम नजर अंदाज करते आ रहे हैं। सदियों से यह समाज लय–ताल से समृद्ध सुरों का धनी और पूर्ण मानवतावादी होते हुए भी इन्हें अक्षर से दूर रखा गया है। आदिवासी की गति में नृत्य है, वाणी में गीत है। जब वह चलता है तो थिरकता है और जब बोलता है तो गीत के स्वर फूटते हैं। वह अकेला नहीं समूह में रहता है, समूह में सोचता है, समूह में जीता है। इतनी समृद्ध संस्कृति के धनी को सभ्यता की दौड़ में किसी षड़यंत्र या साजिश के तहत दंभी विजेताओं के समूह द्वारा अलग–थलग कर दिया गया। आज भी यह प्रक्रिया जारी है अब तो उसे खत्म करने की मुहिम चलाई जा रही है। कहीं उसका

18 पेड़ अब भी आदिवासी है'–सूर्यभान गुप्त पृ0–212 पृथ्वी के पक्ष में– स0 राधे"याम तिवारी इन्द्रप्रस्थ प्रका"ान, नई दिल्ली–2006

प्रदर्शन करके उसे भरमाया जा रहा है तो कहीं उत्सव लगाकर उसे दिग्भ्रमित किया जा रहा है। जिससे उनकी पहचान तथा अस्तित्व दोनों खतरे में पड़ गया है। आने वाले दिनों में यह प्रश्न खड़ा होगा की आदिवासी कौन है? इस पर समकालीन कवयित्री रमणिका गुप्ता कहती है –

> संविधान की भाषा में हम/अनुसूचित जाति या
> अनुसूचित जन जाति है/मनु की भाषा में 'शूद्र'
> कम्यूनिस्टों की भाषा में शोषित/भाजपाइयों की भाषा में/
> पिछड़े हिन्दू/मैं पूछता हूँ तुम सबसे/आखिर इस देश में,
> इस प्रजा तंत्र में/हम क्या है, हम क्या है?[19]

आदिवासियों के अस्मिता का सवाल आज बड़े पैमाने पर बहस का विषय बन गया है। उनके अस्तित्व पर लगातार खतरा मडरा रहा है। वर्तमान समय में तो उन्हें धन का प्रलोभन देकर बच्चे से लेकर बुढ़े तक का नसबंदी कराया जा रहा है। ताकि आने वाले समय में उनका पूरा समाज ही खत्म हो जाय। समकालीन युवा कवि अनुज लूगुन कहते है –

> और वे जो नंगे पैर
> चुपचाप चले जाते हैं जंगली पगडडियों में
> कभी नहीं कहते कि
> हम आदिवासी हैं
> वे जानते हैं जंगली जड़ी–बूटियों से
> अपना इलाज करना
> वे जानते है जन्तुओं की हरकतों से
> मौसम का मिजाज समझना
> सारे पेड़–पौधे पर्वत–पहाड़
> नदी झरने जानते हैं
> कि वे कौन हैं।[20]

---

[19] आदिवासी स्वर और नई शताब्दी, स0 – रमणिका गुप्ता, पृ0 49

प्रकृति और आदिवासी दोनों का अस्तित्व अलग–अलग नहीं है। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। एक के बिना दूसरा अधूरा है। प्रकृति और वे परस्पर पहचाने जाते हैं। किन्तु आज भी प्रकृति की गोद में बसा वह काला, मटमैला, आदमी बीहड़ जंगलों में पहाड़ की तराइयों में, सरिता की धाराओं में अपना जीवन तय कर रहा है। इस आधुनिक पाशविक सत्ता और समूह के छल–कपट से वह दूर है। भूखे होकर जीवन–संघर्ष करने वाले इन लोगों का शोषण कर आलीशान महल में आराम से जिंदगी बिताने वाले लोगों की सच्चाई से कवि बिल्कुल परिचित है। समकालीन कवि सहदेव सोरी ने इसी ओर इशारा किया है।

> लगाए सिर्फ लंगोट / जूझता / धूप / वर्षा / ठंड से सना हुआ है /
> अशिक्षा / भूख / बेकारी की दलदल में / बने हुए किंवदंती–सा /
> आधुनिकता के दौर में भी / पिछड़ता गया / उन्नति के शिखर पर।[21]

एक सामान्य आदिवासी के दुःखद एवं त्रासद जीवन यथार्थ से अवगत कराकर तब भी प्रकृति के ताल–लय में ही सुख महसूस करने वाले आदिवासी जीवन के बेहद गुंगेपन का अनावरण करते हुए आदिवासी कवि यह कहना चाहते है कि वर्तमान संदर्भ में उनका शोषण बाहर की दुनिया द्वारा चल रहा है। लेकिन अजीब बात तो यह है कि इसके लिए अपने पुरूष ही सारी मदद दे रहे हैं। दिल से भोली–भाली अनपढ़ काली आदिवासी स्त्री जब उन्मुक्त होकर हँसती है तब उनकी हँसी आसमान तक पहुँचती है। समकालीन आदिवासी कवियत्री निर्मला पुतुल कहती है–

> जुड़े से खोसकर पलाश के फूल जब नाचती कतारबद्ध माँदल की थाप पर
> आ जाता तब असमय बसंत
> वे करती प्रेम जंगलों से, फसलों से
> उनके नाते–रिश्ते की परिधि में आते
> गाय, बकरी, सूअर भी।[22]

---

[20] 'वाक' (नये विमर्शों का त्रैमासिक) अंक–20, सं0–सुधीश पचौरी, वाणी प्रकाशन 21–ए0 दरियागंज, नई दिल्ली–110002

[21] आदिवासी स्वर और नई शताब्दी, सं0–रमणिका गुप्ता, पृ0 56

पहाड़ों–सा दुःख झेलकर, पहाड़ों–सा धीरज भरकर जंगल की ये वीरांगनाएं जीवन को हमेशा संगीतमय बनाती है। बीहड़ जंगलों में जाकर कंद–मूल–फल, लकड़ी–झूरी, दातुन–पत्तियाँ ले आकर हाट–बाजारों में जाकर बेंचती हैं। कड़ी मेहनत करती है घर के काम के साथ–साथ उन्हें उनके जानवरीय व्यवहार की शिकार भी बनना पड़ता है।

> चादर में बच्चे को/पीठ पर लटकाए/धान रोपती पहाड़ी स्त्री/
> रोप रही है अपना पहाड़–सा दुःख/सुख की एक लहलहाती
> फसल के लिए।[23]

बढ़ते वैज्ञानिक उपकरण तथा साधन सम्पन्नता ने साधन विहिन व्यक्ति को सम्बन्धों से अलग कर दिया है। हर व्यक्ति साधन की सुविधा को भोगने में लगा है। यह आधुनिक वैज्ञानिक प्रगति कहीं न कहीं व्यक्ति को उसके जमीन, मिट्टी और जमीर इन सभी से अलग करने का प्रयास किया है। चूँकि आदिवासी प्रकृति की गोद में पैदा और पला–बढ़ा या हम कह सकते है कि प्रकृति की असली संतान तो आदिवासी ही है। जिनके जीवन तथा संस्कृति का हिस्सा कृषि संस्कृति है। उनके लिए सबसे बड़ी चीज उनकी मिट्टी है जिसे वह जकड़कर पकड़ लेता है। उसके सारे सपने इसी से जुड़े है। इसलिए अनुज लुगुन लिखते है –

> हमारे सपनों में रहा है
> एक जोड़ी बैल से हल जोतते हुए
> खेतों के सम्मान को बनाए रखना।[24]

आदिवासी हर तरह से प्रकृति से जुड़ा हुआ है। नृत्य हो, संगीत हो, दुख हो, सुख हो, पीड़ा हो, संवेदना हो, त्रासदी हो या भौतिकता हो। वह नृत्य का प्रदर्शन नही करता बल्कि उससे वह अनुशासित होता है। साथियों के संग वह सब बाँट देता है। वह व्यक्ति नही समूह है। उस समूह का अपना एक व्यक्तित्व है।

[22] आदिवासी स्त्री अपने घर की तलाश में : निर्मला पुतुल, पृ0 6
[23] पहाड़ी स्त्री अपने घर की तलाश में : निर्मला पुतुल, पृ0 29
[24] हमारी अर्थी शाही हो नहीं सकती – अनुज लुगुन, 'वाक' (नये विमर्शो का त्रैमासिक) अंक–20, सं0–सुधीश पचौरी

उसकी माँदल और नगाड़ों में बादलों की गंभीरता गूँजती है। उसकी बाँसुरी से समस्त पक्षियों की पीड़ा और आनन्द का स्वर घनीभूत होकर निकलता है तो प्रकृति, मानव–मन और पशु–पक्षी बेचैन हो उठते हैं। लेकिन उनकी संस्कृति में जो हस्तक्षेप हुआ अथवा जो क्षीणता आई उसे व्यक्त करते हुए उसकी संस्कृति को बनाने वाले चिह्नों और प्रतिमानों पर खूब विस्तार से प्रकाश डाला गया है। ग्रेस कुजूर की कविता 'एक और जनी–शिकार' में इसी ओर संकेत किया गया है –

कहाँ है वह फुटकल का गाछ
जहाँ चढ़ती थी मैं
साग तोड़ने
और गाती थी तुम्हारे लिए
फगुआ के गीत
कोयल पत्तियों वाला
कोयनार का गाछ
जिसके नीचे तुम
बजाया करते थे
माँदर और बाँसुरी?[25]

मनुष्य की कथा प्रकृति और जंगल के साथ मनुष्य के बदलते रिश्तों के आधार पर कही जा सकती है। अंग्रेजी शासन के पूर्व मुगल सम्राटों के समय से ही आदिवासियों को अपने भूमि से वंचित करने की प्रक्रिया शुरू हो चूकी थी। अंग्रेजों द्वारा जमींदारी प्रथा को थोपे जाने के वाद आदिवासियों एवं अन्य गरीब किसानों से लगातार जमीन छीने जाने का इतिहास रहा है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद वाह्य उपनिवेशवादी अर्थतंत्र से प्रभावित होकर भारतीय शासकों ने औद्योगिक विकास नीति के तहत संम्पूर्ण देश में औद्योगिक विकास कार्यक्रम को व्यापक पैमाने पर लागू किया था। विकास के नाम पर बरती हुई नीतियों के कारण आदिवासी लोग केवल अपनी जमीनो, जंगलों, संसाधनों और गाँवो से ही बेदखल नही हुए बल्कि

[25] समकालीन आदिवासी कविता, सं0–हरिराम मीणा, पृ0 18

अपने मूल्यों, नैतिक अवधारणाओं, जीवन शैलियों, भाषाओं एवं संस्कृति से भी विस्थापित होने लगे। आज भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया से यह विस्थापन तेज रफ्तार से हो रहा है। इस विस्थापन में सरकारी हस्तक्षेपों के साथ मुख्य धारा के समाज द्वारा उनके संसाधनों पर कब्जा करके उन्हें बदेखल कर दिया जा रहा है। ऊर्जा, खनिज, भारी उद्योग, सिचाई जैसे क्षेत्रों में बड़ी मात्रा में विकास हुआ। इन तमाम परियोजनाओं से देश की प्रगति तो हुई, लेकिन झारखंड जैसे प्रदेशों से हजारों लोग विस्थापित हुए। विस्थापन का सिलसिला चल रहा है। इसकी पहचान आदिवासी कविता में हैं।

बाजार वाद का प्रभाव लगभग सभी क्षेत्रों में पड़ा हैं। न तो शहर बचा है और न गाँव। न अमीर बचा है न गरीब। न पढ़ा–लिखा वर्ग बचा है न अनपढ़। इसलिए जंगलों में पायी जानी वाली तमाम कीमती लकड़ियाँ औषधियाँ, खनिज पदार्थ, तथा कीमती धातु को कुछ ऐसे प्रकृति शोषक प्रकृति दोहन कर रहे हैं। इन प्रकृति शोषक लोगों का प्रकृति के साथ कोई मानवीय रिश्ता नहीं है बल्कि उनका शोषक और शोषित का रिश्ता है। जिससे प्रकृति लगातार असंतुलित हो रही है। युवा कवि अनुज लुगुन गाँव को शहर जाते हुए देख कर दुःखी होते हे और कहते है –

> बाजार भी बहुत बड़ा हो गया है
> मगर कोई अपना सगा दिखाई नही देता
> यहाँ से सबका रूख शहर की ओर कर दिया गया है
> कल एक पहाड़ को ट्रक पर जाते हुए देखा
> उससे पहले नदी गई
> अब खबर फैल रही है कि
> मेरा गाँव भी यहाँ से जाने वाला है।[26]

[26] 'वाक' (नये विमर्शो का त्रैमासिक) अंक–20, सं0–सुधीश पचौरी, वाणी प्रकाशन 21–ए0, दरियागंज, नई दिल्ली–110002

कवि इस बात से परेशान है कि जिस प्रकार से गाँव शहर की ओर भाग रहा है। उसी प्रकार गाँव की संस्कृति कहीं न कहीं नष्ट हो रही है। संस्कृति का नष्ट होना आदिवासी का नष्ट होना है। और आदिवासियों का नष्ट होना पर्यावरण का नष्ट होना है। महादेव टोप्पो ने अपनी कविता 'बिन मुर्गे के झारखंड में सुबह' में नष्ट होती झारखंडीय संस्कृति पर दुःख प्रकट करते हैं। डॉ0 राम दयाल मुंडा ने 'विकास का दर्द' शीर्षक कविता में विकास का जो असह्य दर्द है उसमें मर मिटते आदिवासी का दुःख प्रकट करते है। दर्द के बहाने आदमी गाँव छोड़कर भाग गया था। या उसे छोड़कर गाँव भाग गया है। यह संदेह वे प्रकट करते है। आदिवासी कवि हरिराम मीणा भूमण्डलीकरण से कारण असंतुलित हुए पर्यावरण तथा दम घुटने वाले विस्थापित आदिवासियों को बचाने का उपाय सोच रहे है।

> वीरान घोटुल, उजड़े हाट, उमंगहीन पर्व
> थके मांदल और सिसकती बांसुरी को थामे
> पथराई आंखों के सहारे
> अपने हरे–भरे आंगन में जीवन अवलंब ढूढ़ता कोई
> कैसे बचे वैश्विक वात्याचक्र से
> दिक्कू और देसी दलालों के 'ाडयंत्र से।[27]

हरिराम मीणा जी जंगलों के वीरान होते, गाँव उजड़ते तथा देशी दलालों को, अपनी कविता में इंगित करते है। इन्हीं के विचारों का समर्थन करते हुए कवि अशोक सिंह अपनी कविता में संताल परगना का दुःख, कविता में मिट जाने वाले वन एवं कई प्रकार से विस्थापित होते संताल परगना का विस्तृत ब्यौरा देने का प्रयास करते है–

> संताल परगना दुःखी है
> कि यहाँ के जंगल उजड़ते जा रहे हैं
> गायब होते जा रहे हैं यहाँ के पहाड़
> गायब होती जा रही हैं यहाँ की पहाड़ी लड़कियाँ।

[27] समकालीन आदिवासी कविता : सं0–हरिराम मीणा, पृ0 107

आदिवासियों के दुःख को कवि संवेदनापूर्ण रूप से व्यक्त करता है। उनके संसाधनों तथा जीवन यापन के स्रोत गायब हो रहे है। इसके साथ–साथ आदिवासियों की बहु–बेटियाँ, भी प्रकृति के नष्ट होने कारण गायब हो रही है। उनका दैहिक शोषक 'ाडयंत्रकारी देशी दलाल बड़ी आसानी से कर रहे है। कवि आगे कहते है –

> निरंतर कम पड़ते जा रहे हैं उसके खेत
> बिलाते जा रहे है नदी, तालाब, जारिया
> धीरे–धीरे न जाने कहाँ?
> यहाँ तक कि जंगल तो जंगल
> गाय, बैल, बकरी, सूअर, जैसे पालतू जानवर भी
> घटते जा रहे है लगातार..........।[28]

आदिवासी विलूप्त होते इन तमाम पर्यावरण घटकों को बचाने का उपाय सोचते है। उनकी आँखो के सामने से उनका खेत, नदी, तालाब, जंगल तथा उनके पालतू जानवर भी लगातार कम हो रहे है। इन्हें बचाने के लिए वह संघर्ष करना चाहते है। क्योंकि वे अपनी सामूहिक जीवन प्रणाली में जीते रहे हैं – समाज और समूह में रहते हैं। सभ्य जनता द्वारा दी गई कठिन जिन्दगी को अपने गीतों, नृत्यों से भुलाते रहे है। हमने उन्हें सभ्यता से दूर ठेला, विस्थापित किया। उन्होंने बाँसूरी और नगाड़े के माध्यम से अपना संवाद जारी रखा। अब यह संवाद नाद बनकर फूट पड़ा है। अब यह देश और कबीलों के दायरे लांघकर वे अपने समूचे समाज को रोशन करने के लिए संकल्पबद्ध हो गए है। भाषाओं ने कलम थाम ली है। वे लिखने लगे हैं। उन्होंने अपनी अस्मिता पहचान ली है। वे प्रकृति के संग–संग पैदा हुए, इसके साथ पले–बड़े आदि मनुष्य हैं। वे प्रकृति को बचाए रखने में उसके साथ सहयोग और सहभागिता से जीने में विश्वास रखते है। आदिवासी कवि महादेव टोप्पो ने लिखा है –

> अब यदि छिड़ेगा कोई महायुद्ध
> मैं धन–दौलत कुछ नहीं बचाऊंगा

[28] समकालीन आदिवासी कविता – सं0–हरिराम मीणा, पृ0 67

बचांऊगा अपना और पुरखों का
जंगलीपन
क्योंकि तब मनुष्य का
सम्पूर्ण अस्तित्व हो जायेगा खत्म
तो यही आदिवासीपन ही
जंगलीपन ही/बचाएगा/बचाएगा/सिरजोगा
चौथे महायुद्ध के बाद जन्मे मनुष्य को।[29]

खत्म होते प्राकृतिक साधनों, जंगलों की स्वाभाविकता पूर्वजों का जंगलीपन तथा तमाम पर्यावरण घटक को बचाने की अपील आदिवासी करते है।

वे अपनी छीनी गई जमीनें, अपने जंगल, वापस लेने के प्रयास में हैं। वे अपना इतिहास भी खोज निकालेंगे। हमने उनके बलिदान और विनाश पर ही तो विकास किया है। वे मिथकों, प्रतीकों, साहित्यों में हमारे द्वारा विकृत की गई छवि को, हमारे 'ाड़यंत्र को उजागर करेंगे। कवि अनुज लुगुन कहते है कि हमारा न्याय, हमारा सम्मान किसी नदी या पहाड़ के बदले में दिया गया मुआवजा नही है बल्कि उसके लिए दी गई शहादत है। सम्मान तथा गरिमा का सवाल तो उनकी रगों में दौड़ता हुआ खून है। वे आगे कहते है –

न कि उन पोथियों में
जिन्हें किसी राजा ने बनवाया है
हम गीत गाते हुए लड़ सकते है
हम जीवन की संभावनाएँ बचाकर रखते हैं
उन प्रतीक चिह्नों में
जिन्हें पुरखे बना गए हैं
नदी, पहाड़, पेड़ और
आकाश गंगाओं की
छोटी–छोटी टहनियों में।[30]

[29] जंगल का कवि – महादेव टोप्पो आदिवासी स्वर और नई शताब्दी, सं0–रमणिका गुप्ता : वाणी प्रकाशन, संस्करण–2008, पृ0 47–48

आदिवासियों का सम्बन्ध नदी, पहाड़, पेड़ तथा आकाश गंगाओं से है। न कि कोरी कल्पना से निहित पोथियों से। जिनको किसी खास वर्ग ने तैयार करवाया है। जिसमें जीवन तथा मनुष्य दोनों को नष्ट करने का सफल उपाय दिया गया है। आदिवासियों का अस्तित्व और इतिहास तो उनकी अपनी संस्कृति में निहित है जिसमें जीवन की संभावनाओं को बचाकर रखने का प्रयास किया है। मुख्य धारा के इतिहास द्वारा निर्मित आदिवासियों का पूरा चित्र गलत है। वे उनके लोक साहित्य की समृद्धि परंपरा और पाँच हजार वर्षों के अपने इतिहास को खुद नए इतिहास में दर्ज करना चाहते हैं। क्योंकि उनका इतिहास न तो शब्दों में गढ़ा गया और न ही ग्रन्थों में दर्ज किया गया है। आदिवासी कवि महादेव टोप्पो ने इसी ओर संकेत किया है –

तुम्हारी – विजय गाथाओं
और संघर्षों के गवाह
पेड़ हैं, नदिया हैं, चट्टानें हैं
पुरखों की आत्माए हैं
सस बदिरी हैं
जाहोर – थाल है
तुम्हारे लोक गीत हैं।[31]

मुख्य धारा में रहने वाले लोग आदिवासियों के इतिहास को नकारना चाहते है। उन्हें बहिष्कृत करते हैं। उसको हाँसिए पर डालने का प्रयास किये हैं। उनको राक्षस, भालू आदि नाम देकर उनकी सही अस्मिता को नजर अंदाज किया। लोक गीतो–लोक कथाओं, वीर गाथाओं, पर्वो, त्योहारों के गीत और अनुष्ठानों की महान परम्परा रही है। जिनमें उनका ही नहीं बल्कि पृथ्वी का इतिहास छिपा है। वे अपना इतिहास खोज रहे हैं। उनके मंत्रो में ज्ञान का स्रोत व्याख्यायित हो रहा है। उनकी कथाओं में सृष्टि की सृजन–गाथाएँ भरी है। उनके लोक गीत प्रकृति के असीम

[30] अघोषित उल गुलान : अनुज लुगुन 'वाक' (नये विमर्शो का त्रैमासिक) संपादक – सुधीश पचौरी, वाणी प्रकाशन – 21–ए0 दरियागंज, नई दिल्ली–110002

[31] रचने होगे स्वयं ग्रन्थ : महादेव टोप्पो आदिवासी स्वर और नई शताब्दी, सं0 रमणिका गुप्ता, वाणी प्रकाशन, संस्करण–2008, पृ0 48

विकास की कथा कहते हैं। कवि ग्रेस कुजूर खत्म होती प्रकृति की स्वाभाविकता की ओर संकेत करते है –

> कहा गई वह सुगंध / महुआ और डोरी की
> गूलर और केयोंद की / कहाँ खो गया बासों का संगीत
> और जाने कहाँ उड़ गई / संघना की सुगंध /
> × × × × × ×
> सखुआ की पत्तियों में / किसने किए हैं सुराख
> कैसे बीनूंगी उनकी पत्तियाँ / कैसे सीऊंगी दोना और पतरी
> अब बढ़ने लगे हैं / दातून भी / टेढ़े मेढ़े।[32]

'हे समय के पहरेदारों' कविता में पर्वतों की पीड़ा को उजागर किया गया है। आज स्वार्थी मनुष्य अपने लोभ–मोह के कारण उसे नष्ट कर रहा है। जहाँ की फिजाओं में आवाज आती थी। जिनकी गुफाओं में प्रकृति सोती थी। जिनकी कन्दराओं में हवाएँ झूलती थी। जहाँ ऋषियों और मुनियों की भाषाए मौन रूप में व्याप्त है और वन प्रांतर की अनेक कथाएं जिनकी तराइयों में बहती है। आज वह कही खो गयी है। कवि इसी को खोजने की तलाश करता है –

> क्या तुमने कभी देखा है
> पर्वत को रोते
> क्या कभी सुनी है
> उसके हृदय की आवाज
> क्या कभी देखा है
> उसका टुकड़े–टुकड़े होकर
> बिखर जाना?[33]

प्रकृति के साथ आदिवासियों की सानिध्यता को दिखाने का प्रयास आदिवासी कवि हरिराम मीणा करते हैं। वह आदिवासियों की उत्पत्ति की ओर संकेत करते। वे

---

[32] एक और जनी–शिकार – ग्रेस कुजूर आदिवासी स्वर और नई शताब्दी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली–110002, प्र0सं0–2002
[33] वही, पृ0 23

जानना चाहते है कि हम क्या है? हमारी पूर्वजों की पीढ़ी क्या थी? इससे मतलब नहीं है। हम जैसे भी थे। हम प्रकृति के खिलाफ कोई मुहिम नहीं छेड़ा। घर न होते हुए भी कभी बेघर महसूस नही किया। जंगली जानवरों के सानिध्य में रहा किन्तु कभी खरोच तक नहीं आया। जहरीले सापों, समुद्री जीवों, भूकम्पों, ज्वालामुखियों तथा नारियल के ऊँचे दरख्तों ने भी उनका कुछ नुकसान नही किया। किन्तु उनके बीच ज्यों ही सभ्य मानव का प्रवेश हुए त्यों ही प्रकृति और आदिवासी दोनों का नुकसान हुआ। हरिराम मीणा इसी ओर संकेत करते हुए कहते हैं –

मगर –

जिन्होंने हमें गोलियों से भूना
वे इंसान थे
जिन्होंने हमें टापुओं के इधर–उधर खदेड़ा
वे इंसान हैं
और जो हमारी नस्ल को उजाड़ेगे
वो इंसान होगें।[34]

इस प्रकार समकालीन आदिवासी कवियों ने पर्यावरण संरक्षण की ओर ध्यानाकर्षित किया तथा पर्यावरण संरक्षण में आदिवासियों के योगदान को भी रूपायित किया।

3- laj{k.k dh L=h Hkfedk

स्त्री भावी विश्व की शक्ति है, रक्षिकाएँ है,। पर्यावरण के प्रति उनका लगाव व सजगता कालान्तर से ही रहा है। क्योंकि विश्व में नारियों के बिना न तो कोई लौकिक कार्य में सफलता प्राप्त होती है और न ही साधना में सिद्धि। प्रकृति व महिला दोनों जननी है। दोनों का रिश्ता आपस में अटूट है। इसलिए एक के विनाश से दूसरे का विनाश स्वाभाविक है। इसलिए समकालीन कवयित्रियों ने भी

[34] खत्म होती हुई एक नस्ल – हरिराम मीणा आदिवासी स्वर और नई शताब्दी, पृ0 28

पर्यावरण संरक्षण में अपना योगदान देने से पीछे नहीं हटती है। समकालीन कवयित्री रंजना जायसवाल अपनी कविता में कहती है –

सीखना चाहती हूँ/पक्षियों की भाषा
उड़ना चाहती हूँ/उनके साथ
सूदुर आकाश में/छू लेना चाहती हूँ
क्षितिज का छोर।[35]

यहाँ पक्षियों का मानवीकरण किया गया है। यहाँ स्त्री को पक्षियों की भाँति स्वतंत्र होने की बात हो रही है। रंजना जायसवाल कहना चाहती है कि जिस प्रकार से चिड़ियाँ पर्यावरण में रहकर स्वतंत्र होकर विचरण करती है उसी प्रकार स्त्री की भी स्वतंत्रता होनी चाहिए। परन्तु आज जिस प्रकार पक्षियों के लिए प्रदूषित वातावरण उपलब्ध है उसी प्रकार स्त्रियों को भी सामाजिक प्रदूषण रूपी वातावरण विद्यमान है। इस कविता में इससे मुक्त होने की अपील है।

इस सृष्टि में बहुत सारी आकर्षक चीजें विद्यमान है। जिसको मानव देख नहीं पाता है। वह आज भी इस प्रकार स्वार्थों में लिप्त है कि उसे फूल की खूबसूरत और सुगंध, गिलहरी की स्वाभाविकता, पतंग की गतिमयता, बच्चे की किलकारी कुछ भी दिखाई नहीं देता है। क्योंकि वह अंधाधुंध विकास की चकाचौंध में इस प्रकार लिप्त है कि प्रकृति में लुप्त होती चीजें दिखाई नहीं देती है। 'सृष्टि में' नामक कविता में रंजना जायसवाल कहती है –

सृष्टि में/फूल/चिड़ियाँ/गिलहरी/
पतंग/बच्चा/कितनी सारी/खूबसूरत चीजें हैं/
नीरस दिन चर्या में/नहीं ठहरती/जिनपर नजर।[36]

[35] जिन्दगी के कागज पर – रंजना जायसवाल, शिल्पायन प्रकाशन, शाहदरा, नई दिल्ली–110032, प्र0स0–2009
[36] सृष्टि में – रंजना जायसवाल, जिंदगी के कागज पर – प्रकाशन – उपरोक्त

रंजना जायसवाल अपनी कविता 'कुल्हाड़ियाँ' में नष्ट होते वृक्षों को दिखाया है। वह वृक्ष के महत्व को जीवन के आरम्भ से लेकर जीवन पर्यन्त तक दर्शाती हैं। वह कहती है –

> बचपन से/एक बीज था/मेरे मन में
> बीज/जो पेड़ बना/और बढ़ता रहा/
> छतनार हुआ/छाया दी/फल दिए/
> कितने ही बसंत दिए/लिया नहीं किसी से कुछ/
> फिर भी पेड़ को/काटने के लिए/तैयार खड़ी रही
> कुल्हाड़ियाँ।[37]

'जड़ों का रिश्ता' नामक कविता रंजना जायसवाल पर्यावरण संतुलित करने के लिए, प्रकृति को बचाने के लिए, मनुष्यों तथा पर्यावरणीय घटकों के आपसी सम्बन्ध की बात करती है। ताकि मनुष्य के दुर्व्यवहार से प्रकृति बची रहे। यदि प्रकृति बची रहेगी तो मनुष्य का अस्तित्व भी बरकरार रहेगा। इसी सम्बन्ध को वह जड़ों का रिश्ता कहती है।

> छोड़ देते है साथ
> पतझर में पत्ते
> पर पेड़ और धरती का
> साथ नही छूटता पतझर में
> शिशिर में शरद में भी
> पेड़ और पृथ्वी का रिश्ता
> जड़ों का रिश्ता है।[38]

समाज में माँ का रिश्ता अनमोल है। उसका कर्ज व्यक्ति जिंदगी भर उतार नही पाता है। अपने संतानों को वह निस्वार्थ प्रेम करती है। उसी प्रकार प्रकृति है जो माँ के समान धरती पर विद्यमान तमाम जीव–जन्तु तथा मनुष्यों को दुलारती है,

---

[37] कुल्हाड़ियाँ – रंजना जायसवाल, प्रकाशन – वही
[38] जड़ों का रिश्ता – रंजना सायसवाल, प्रकाशन वही

प्रेम करती है। प्रकृति के इस महत्ता को समकालीन कवयित्री साधना त्यागी ने 'अंतहीन यादें' काव्य संग्रह के 'माँ' नामक कविता में व्यक्त की है –

माँ तुम प्रकृति का
अनुपम उपहार हो
इस सौन्दर्य जगत में
तुम स्वर्ग हो माँ।[39]

प्रकृति में विद्यमान तमाम ऐसे बहुमूल्य लकड़ियाँ और औषधियाँ है जो लूप्त होने की कगार पर हैं। उन्हें बचाने का कोई प्रयास नही हो रहा है। 'तुलसी' नामक कविता में रेवती रमण शर्मा इसी ओर संकेत करते है –

विशाल देवदार, सिलवर ओक, टीक
और लम्बे युक्लिप्टिस
सभा करते हैं अपने
साथियों के विलुप्त होने
अथवा उनके हुए असामयिक
वध के विरोध में, तब वे
गाते है शोक गीत या पढ़ते है मर्सिया/तब
घर–घर लहराती है तुलसी
अपने छोटे तुलसी–चौरे में।[40]

शहर में बढ़ती आबादी और संसाधनों की कमी कही न कही पर्यावरण को प्रदूषित करने में सहायक है। समकालीन कवयित्री रेवती रमण शर्मा ने बढ़ते हुए जनमानस की संख्या तथा उससे प्रभावित पर्यावरण की ओर संकेत करती है –

शहर के बीच आ गया है
उफान आबादी का
सरकाई जाती हैं
शहर के सीमान्त पर

---

[39] अंतहीन यादें – साधन त्यागी, एस0एस0 पब्लिसर्श एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली–2009
[40] एक दुनियाँ यह भी : रेवती रमण शर्मा, शिल्पायन प्रकाशन, शाहदरा दिल्ली–110032, प्र0स0–2011

उग आई बस्तियों को
शर्मिन्दगी करती है महसूस
पास खड़ी अट्टालिकाएँ।[41]

शहरीकरण की पलायनवादी मांसिकता का असर अब गाँव पर भी अपना प्रभाव डाल रहा है। सभी लोग शहर की ओर जा रहे हैं। जिससे गाँव उजड़ते चले जा रहे है। इसी ओर कवयित्री इशारा करती है –

नगरोपरान्त/न जंगल बचे है/न गदराए हरे वृक्ष।[42]

प्रकृति की स्वाभाविक प्रक्रिया में स्वार्थी मनुष्यों की दखलअंदाजी तथा उसके साथ छेड़–छाड़, शोषण, इस बात का प्रमाण है कि मनुष्य लगातार प्रकृति को नुकसान पहुँचाने का प्रयास कर रहा है। आने वाले समय इस कुकर्म का दुष्परिणाम प्राकृतिक आपदाओं के रूप में प्रकृति जरूर दिखायेगी। चाहे वह अतिवृष्टि, अनावृष्टि हो सुनामी तथा तमाम समुद्री तुफान हो। कवियत्री रेवती रमण शर्मा ने 'सुनामी' नामक कविता में व्यक्त की है –

लहरें इतनी उठी थीं/छू गई आसमान
दिखा, हो गया जैसे प्रलय
दो पल पहले तक थीं/चट्टानें तट पर
भारी भरकम–कहाँ गईं?
थे मछुआरों के गाँव
गाँव के गाँव कहाँ गए/हर तरफ बिछी थी लाशें और लाशें
जितना थी तट पर उससे अधिक
हो गई थीं उदरस्थ सागर के।[43]

प्रकृति की रक्षा करने में आदिवासी समाज का सबसे अधिक योगदान है। आदिवासियों के कारण ही थोड़ी बहुत प्राकृतिक संम्पदा बची हुई है। लेकिन हमारे सभ्य समाज के लोग, मुख्य धारा के लोग, उन्हें इंसान मानने की गलती भी नहीं

[41] प्रकाशक वही
[42] प्रकाशक वही
[43] एक दुनियाँ यह भी – रेवती रेमण शर्मा, शिल्पायन प्रकाशन, शाहदरा दिल्ली–110032, प्र0सं0–2011

करते। आदिवासियों को प्रकृति के प्रति जागरूक करने का कार्य समकालीन आदिवासी कवयित्री भी करती है। शक्ल–सूरत से भले ही काली हो, बदसूरत हो लेकिन दिल से भोली–भाली अनपढ़ आदिवासी स्त्री जब उन्मुक्त होकर हँसती है तब उसकी हँसी आसमान तक पहुँचती है। समकालीन आदिवासी कवयित्री निर्मला पुतुल कहती है –

जूड़े से खोंसकर पलाश के फूल
जब नाचती कतार बद्ध मांदल की थाप पर
आ जाता तब असमय बसंत
वे करती प्रेम जंगलों से, नदियों से, पहाड़ों से
मिट्टी से, गीतों से, फसलों से
उनके नाते–रिश्तों की परिधि में आते
गाय, बकरी, सूअर भी।[44]

पहाड़ों–सा दुःख झेलकर पहाड़ों–सा धीरज भरकर जंगल की ये वीरागनाएँ जीवन को हमेशा संगीतमय बना देती है। बीहड़ जंगलों में जाकर कंदमूल फल–लकड़ी–सूरी, दातुन पत्तियाँ ले आकर हाट–बाजारों में जाकर बेचती है। कड़ी मेहनत करती है। पर्यावरण के साथ संतुलन बनाए रखती है। साथ ही वे पृथ्वी, वृक्ष, नदी का दुःख सुनती है। निर्मला पुतुल कहती है –

सुना है कभी
रात के सन्नाटे में
अंधेरे में मुँह ढांप
किस कदर रोती है नदियाँ।[45]

आदिवासियों का सहचर, उनको अपनी छाँव में रखने वाला, विशाल हृदय वाला, तमाम प्रकार के पक्षियों को अपने हृदय रूपी पेड़ की कोतड़ो में रखने वाला, बरगद का महत्व पर्यावरण में विद्यमान है। प्रकृति के साथ मनुष्य की सहजीविता

---

[44] आदिवासी स्त्री अपने घर की तलाश में : निर्मला पुतुल, 'वाक' (नये विमर्शो का त्रैमासिक) अंक–20, सं0–सुधीश पचौरी
[45] जंगल, नदी, पहाड़ और गुमसुम बूढ़ी पृथ्वी का दुःख : प्रकाशन वही, पृ0 41–42

और सहभागिता तथा सहयोग की भावना का उसका अपना इतिहास रहा है। एक के बिना दूसरे का जीवन अधूरा सा लगता है। एक के न रहने पर दूसरे का अस्तित्व भी खतरे में पड़ जाता है। जैसे कि आदिवासियों का। क्योंकि जंगल नष्ट होने पर आदिवासियों का भी अस्तित्व नष्ट होने के कगार पर है। इसी ओर 'बूढ़ा बरगद' नामक कविता में सरिता सिंह बड़ाईक कहती है –

> आज क्या हो गया उन्हें
> जो बरगद के साथी थे
> उन सब की मारी गई मति
> यह प्रकृति की सम्पत्ति
> कैसे बनी विपत्ति
> आज क्या हो गया उन्हें।[46]

प्रकृति के साथ मनुष्य की सहजीविता आदिम समय से है। किन्तु समय की मार ने मनुष्य को प्रकृति का दुश्मन बना दिया है, वह उसको नष्ट करने को, आतुर है। किन्तु जब मानव प्रकृति को नष्ट करता है तो वह भूल जाता है कि प्रकृति और मानव के बीच कोई रिश्ता भी है। वह अपने स्वार्थो में अंधा हो जाता है। इसी ओर समकालन कवयित्री चन्द्रकला त्रिपाठी 'हमारे बीच' नामक कविता में स्पष्ट करने का प्रयास किया है –

> मेरे तुम्हारे बीच
> अनन्त पृथ्वी
> ×   ×   ×
> नदियाँ,
> चट्टानों,
> थके हुए स्वर –
> घर ढूँढते पखेरूओ के,
> अनुत्तरित लौटे हुए प्रश्न।[47]

[46] आदिवासी स्वर और नई शताब्दी, सं0 रमणिका गुप्ता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली–110002, प्र0सं0–2002

कवयित्री ने मानवीय रिश्तों के बीच प्रकृति को लाने का प्रयास करती है। क्योंकि यदि यह प्रकृति न होती तो शायद मानव का भी अस्तित्व कायम न रहता। इसलिए रिश्तों की आड़ में पर्यावरण को बचाये रखने की पहल करती है। इसी कड़ी में कवयित्री निर्मला गर्ग का विचार जुड़ता है। वह भी पर्यावरण को बचाने का प्रयास करती हैं। इसलिए वह समुद्र को पिता के रूप में देखने का प्रयास करती है। वह कहती है –

समुद्र पिता है आदमी का
आदमी/बच्चे की तरह
खेलता है उसकी गोद में
पर जब पिता बनता है
पहली बार
तो समुद्र सिमट आता
उसकी छाती में/बाहों में
उसके सम्पूर्ण में।[48]

समकालीन कवयित्री डॉ0 सविता मिश्र उदास नदी और झुलस रहे जंगल को देखकर बड़ी दुःखी होती है। वह ऐसा दृश्य देखकर अपने बचपन को याद करती हुई कहती है कि हमारे समय में बस्तियों में नदी के किनारे बाँसुरी के स्वर सुनाई देते थे। खिलखिलाती हुई पगडंडिया थीं, पायलों की छन–छन की आवाज करता मेमने उछलते–कूदते थे। चिड़ियों की कहानी में बरगद डूबा रहता था। आधी रात में चाँद आकाश से उतर कर खिड़की पर बैठ जाता था। पर आज ऐसा प्राकृतिक स्वभाव खत्म हो गया है। इसी अफसोस को वह व्यक्त कर रही है –

गाँव से गुजरती नदी
बहुत उदास है आज
और सुलगती बस्तियों के सीने में

---

[47] पृथ्वी के पक्ष में – सं0 राधेश्याम तिवारी, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, कृष्णा नगर दिल्ली–110051, प्र0सं0–2006, पृ0 246

[48] समुद्र छाती पर : निर्मला गर्ग, पृथ्वी के पक्ष में : स0 राधेश्याम तिवारी, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, कृष्णा नगर दिल्ली, पृ0 272

झुलस रहा है जंगल
× × × ×
बरस उठते है आँसू
उसकी आँखो से।[49]

इन्हीं के विचारों का समर्थन करती हुई रंजना जायसवाल भी अपने बचपन के गाँवों को याद करती हैं। वह अपने बचपन के प्राकृतिक परिवेश को आज से भिन्न मानती है। पहले जहाँ गाँव में सूरज कुँए की मुंडेर से उठता था, दुपहरी की छाँह अलसाई सी लगती थी, लोग बारिस में भीगते हुए गीत गाते थे, बैलों के कंधे पर बैठे कौवे उड़ाते थे। आम के टिकोरे बैगनी लाल, कुछ कल छौर दिखाई देते थे पर आज ऐसा नहीं है, कुछ भी पहले जैसा नहीं रहा। सब कुछ अलग–थलग हो गया है। इसी ओर सुशीला टाकभौरे संकेत करती है –

छोड़ दिए सारे वन खण्ड
नदी, पहाड़, सागर, उपवन
शेष भाग पृथ्वी का
केवल देखा
जहाँ तपन, पीड़ा रिसती है
जमीन आग उगलती हैं।[50]

कवयित्री यहाँ कहना चाहती हैं कि पृथ्वी आज किस प्रकार से मौसम की मार को झेल रही है। कभी सूखा, कभी गर्मी, कभी बरसात, कभी बर्फबारी, कभी तूफान, कभी तमाम प्राकृतिक आपदाएँ जिसका जिम्मेदार सिर्फ मानव है। इस प्रकार के प्राकृतिक हलचल से धरती पर विद्यमान तमाम जीव–जन्तु सभी प्रभावित हो रहा हैं। 'सूखा' नामक कविता में अमिता शर्मा इसी ओर इशारा करती हैं –

कटार–सी काटती
व्याकुल चिड़िया की पुकार

[49] कोई तो आया : डॉ0 सविता मिश्र, पृथ्वी के पक्ष में : डॉ0 राधेश्याम तिवारी, प्रकाशन–वही, पृ0 314
[50] यह तुम भी जानो तुमने उसे कब पहचाना – सुशीला टाकभौरे, स्वराज प्रकाशन अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली–110002, प्र0सं0–2013

धूसर होते तालाब की कोख में
कंकाल जंगल के खाली हाथ
तंग आसमान के सामने
कब से फैलाए पथरा गए,
धूल भर गई है जीवन रेखा में।[51]

इस प्रकार पर्यावरण संरक्षण और चिंतन में समकालीन स्त्री रचनाकारों ने अपना योगदान दिया तथा पर्यावरण चिंतन को बड़े पैमाने पर उद्घाटित करने का प्रयास किया।

4- fofo/k

बदलते वातावरण में, बिगड़ते मौसम में, प्रकृति के असंतुलित हो जाने से, भूमण्डल में विद्यमान सभी जीव–जन्तुओं पर गहरा असर पड़ा है। धीरे–धीरे तमाम जीव जो इस वातावरण में अपने–आपकों व्यवस्थित नहीं रख पाते, उनकी बहुत सी जातियाँ लूप्त हो गयी है या फिर लूप्त होने के कगार पर है। जिस प्रकार से जंगली जीवों में बब्बर शेर लूप्त हो गया है उसी प्रकार से पक्षियों में गिद्ध लूप्त होने की कगार पर है। गिद्ध का होना हमारे लिए बहुत उपयोगी माना गया है। यह धरती पर विद्यमान शवों की सफाई करता है किन्तु आज गिद्ध दिखाई ही नहीं देते। समकालीन कवि हरजेन्द्र चौधरी ने इसी चिंता को व्यक्त किया है–

''ताऊ ने बताया –
गिद्ध नहीं दिखते आजकल
कहीं भी
गांव में
इधर–उधर पड़े सड़ते रहते है
मरे हुए प”ु
यह उन्हीं की सडांध है।''[52]

[51] हमारे झूठ भी हमारे नहीं – अमिता शर्मा, राधाकृष्ण प्रकाशन – प्रा0लि0 जगतपुरी दिल्ली–110051, प्र0सं0–2001

प्रकृति से इस जीव–जन्तु और प”ाु–पक्षी के लूप्त होने का कारण प्रकृति का असंतुलित होना है। प्रकृति को असंतुलित करने वाला मनुष्य ही है। गिद्ध या अन्य पक्षी हमारे वातावरण से गायब हो रहे है जिसका मूल कारण प्रदूषण है। विभिन्न प्रकार की रासायनिक दवाओं, गैसों तथा प्लास्टिकों से यह प्रदूषण लगातार बढ़ रहा है। आज का मनुष्य अपने भौतिक सुख के लिए विभिन्न प्रकार के वस्तुओं का उपयोग कर रहा है जिससे प्रकृति का संतुलन बिगड़ रहा है। समकालीन कवि उदय प्रका”ा इसी ओर संकेत कर रहे है–

''चली आ रही है इस्पात, फाइबर और अज्ञात योगिक
धातुओं की तमाम अपरिचित–अभूतपूर्व चीजें
किसी विस्फोट के बादल की तरह हमारे संसार में
बैटरी का हनुमान उठा रहा है प्लास्टिक का पहाड़
डरावनी चीज डींप–डींप–डींप।''[53]

बढ़ते इस्पात की सामग्री, फाइबर सामग्री, और रासायनिक योगिकों की बनी वस्तुओं, धातुओं, का प्रयोग मानव जीवन के लिए खतरनांक है। हमें कुछ ऐसा सोचना और करना चाहिए जिससे सभी जीव–जातियाँ बची रही और प्रकृति संतुलित रही। किन्तु उदय प्रका”ा कहते है।–

''बचाना ही हो तो बचाये जाने चाहिए
गॉव में खेत, जंगल में पेड़, शहर में हवा,
पेड़ों में घोंसले, अखबारों में सच्चाई
राजनीति में नैतिकता, प्र”ाासन में मनुष्यता,
दाल में हल्दी।''[54]

उदय प्रका”ा का विचार व्यापकता की ओर संकेत करता है। जो हमारी प्राकृतिक सम्पदा में मौजूद है, उसे संभालकर रखने की आव”यकता है। क्योंकि गांव में खेतों को बड़ी–बड़ी कम्पनियों, फैक्टरियों, उद्योगों के मालिकों की नजर पड़

[52] जैसे चाँद पर से दिखती धरती – हरजेन्द्र चौधरी, राधाकृष्ण प्रका”ान प्रा0लि0, जी–7 जगतपुरी, दिल्ली–110057, प्र0स0 2006
[53] रात में हारमोनियम – उदय प्रका”ा, वाणी प्रका”ान, 21–ए दरियागंज, नयी दिल्ली–110002, प्र0सं0 1998
[54] वहीं, पृ0 22

रही है। उसे अच्छी कीमत पर खरीदते है। और अपना उद्योग–धंधा लगाते है जिससे गाँव की जमीन तथा वहॉ का वातावरण सब कुछ नष्ट हो जाता है। जंगल में जितने भी कीमती पेंड़ थे, उनकों बड़े–बड़े तस्कर लोग कटवाकर बेच दिया तथा जंगल में रहने वाले जीवों को नष्ट कर दिया। मनुष्य ही जंगली जानवरों से भी खूँखार होकर उपस्थित हो जाता है। 'हिरणों का दुःख' शीर्षक कविता में त्रिलोचन कटु शब्दों में इस यथार्थ को रेखाकिंत करते है।

''हिरणों की अनेक जातियां लोगों के पेट में
समा चलीं
हिरण सुन्दरता के उपमान थे
हिरण के दु"मन जंगल में ही कम न थे
शेर, बाघ, तेन्दुए, भेड़िए तो थे ही
आदमी इन सबसे बढ़ चढ़कर है।''[55]

प्रकृति को मार गिराने वाली पूँजीवादी नीति से समकालीन कवि बखूवी परिचित है। प"िचमी व्यवसायीकरण से प्रेरणा पाकर पारिस्थिकी को अनदेखा कर व्यवसाय के पीछे भागने से उत्पन्न खतरे एवं पूँजीवादी शोषण को कवि अनदेखा छोड़ नहीं पाते–

''हरे–भरे पेड़ों को छाल की तरह पहने
खुद को छुपाये
वहां खड़ी है? आलिंगन में लेने वाली बाहों को झुलसाने वाली
एक उत्तप्त चिमनी
एक धमन भट्टी में दहकते âत्पिंडवाली।''[56]

विकास का रट–रटकर भारतीय जीवन की स्नायु को ही तोड़ने वाली पूँजीवादी शासकों को लुटेरे घोषित करने में कवि हिचक का अनुभव नहीं करते। आदिवासी बस्तियों से नयी सड़क का निर्माण करने के बाद

55 हिरणों का दुःख – त्रिलोचन, समकालीन भारतीय साहित्य, मार्च–अप्रैल 2003, पृ0 18
56 गंगातट – ज्ञानेन्द्रपति, राधाकृष्ण प्रका"ान प्राइवेट लिमिटेड, 2/38, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली–110002, प्र0स0 1999, पृ0 49

''आये तमाम
इस मिट्टी की छाती से
खनिज खँखारने वाले तातारी लुटेरे।''[57]

भारत एक कृषि प्रधान दे"ा है और रहा भी है। प्राचीनकाल से ही गायों का बहुत महत्व रहा है। मनुष्य और मनुष्यता के विकास में भी इनका महत्वपूर्ण योगदान रहा है। और आज भी इतनी अत्याधुनिक तकनीकी विकसित होने के बावजूद भी बैलों का उपयोग लगातार हो रहा है। या तो उनका शोषण किया जा रहा है या फिर उनका मांस विदे"ाों में भेजा जा रहा है। जिससे इनकी संख्या लगातार कम हो रही है। बैल इतने सीधे और सरल होते है कि वे ठेले के ऊपर तक लदा हुआ माल स्टे"ान से गोदाम तक, चुपचाप धीरे–धीरे आंखे बाहर को निकाले हुए, त्यौरी चढ़ी हुई, कॉंधे पर से जोर लगाते हुए सीना और छाती आगे को झुककर जोर लगाते हुए, राने भरी हुई गर्म पसीने से तर मगर जोर लगाती हुई, नथुने फूले हुए, सांस और दम, अपनी जोर आजमाइ"ा में लगे इुए, अपनी शाम और अपनी सुबह में बधें हुए, मालिक के खर्राटे, मालकिन की बच्चों की थपकियाँ, किसी बच्चे का रात में रो उठना, उसे महसूस होता है कि ढेले को लगातार सारी आतों ओर नसों के तनावों से खींचते हुए भी जैसे वह सो जाता है। वह गहरा लगातार श्रम पुट्ठओं को श्लथ कर देने वाला श्रम, स्वयं उसकी नींद का कब्र बन जाता है। मालिक उसकी नस–नस को जानता और समझता है। वह उसकी मूक भाषा में अच्छी तरह बात करता है। वह उसे इस तरह निचोड़ता है जैसे पानी में एक–एक चीज कस कर दबाकर पेरा जाता है। इससे वह लगातार दुःखी होता है और सोचता है आखिर तेरे लहू की एक–एक बूँद किसके लिए समर्पित है। केवल पेट के लिए, चारे के लिए ही– वह कहता है–

''कि वह चारा है और मैं बेचारा
मेरा मालिक भी शायद एक अन्य दो टाँगों पर खड़ा
और मुँह वाला कपड़ा पहनने वाला
बैलः एक गंदा–सा, नाटा–सा बैल

[57] गंगातट – ज्ञानेन्द्रपति, राधाकृष्ण प्रका"ान, प्र0स0–1999, पृ0 50

कमजोर मगर बहुत और गीत गुन–गुनाने वाला
बैल–वो गीत मुझे अच्छे लगते है मगर
कभी–कभी मैं अपने इसी श्रम में
कहाँ खों जाता हूँ, कुछ पता नहीं चलता।''[58]

धूमिल अपनी 'कुत्ता' नामक शीर्षक कविता में कुत्ते की बेबसी तथा मनुष्य का उसके साथ व्यवहार और मनुष्य के प्रति उसकी वफादारी, और ईमानदारी का जिक्र किया है। कुत्ते की सारी शख्सियत नखों और दातों की वसीयत है। दूसरों के लिए वह एक शानदार छलांग है। अंधेरी रातों का जागरण है, नीदं के खिलाफ, नीली गुर्राहट है। उसकी लपलपाती हुई जीभ और हिलती हुए दुम के बीच भूख का फालतूपन लगातार हरकत करता है उसे तो सिर्फ अपने पेट की चिंता है, जीवन को चलाने की चिंता है, इसलिए सारी बहसों से अलग वह हड्डी के एक टूकड़े और कौरभर अनाज की ओर अपना ध्यान लगाए रहता है।

''उसके दॉतों और जीभ के बीच
लालच की तमीज है और तुम्हें
जायकेदार हड्डी के टुकड़े की तरह
प्यार करती है
और वहाँ हरदर्जे की लचक है
लोच है, नर्मी है
मगर मत भूलों कि इन सबसे बड़ी चीज
वह बे"ार्मी है
जो अंत में तुम्हें भी उसी रास्ते पर लाती है।
जहाँ भूख है।
व वह"ाी को
पालतू, बनाती है।''[59]

[58] बैल – शम"ोर बहादुर सिंह, पृथ्वी के पक्ष में – पं0 राधे"याम तिवारी, इन्द्रप्रस्थ प्रका"ान, के–71, कृष्णानगर, दिल्ली–110051, प्र0सं0 2006
[59] कुत्ता – धूमिल, पृ0 82

'गाय का महत्व हमारे प्राचीन साहित्य में मिलता है। गाय को माता के रूप में पहचाना गया है। वह हमारा पोषण करती है वह हमें पालती है। लेकिन आज के मानव इस भौतिकवादी समाज में लोभ और मोह से युक्त दुनिया में, स्वार्थी और पापी लोगों के बीच, चकाचौधँ करते व्यापार और बाजार में, लगातार उसका मोल–भाव कर रहा है। गाय का सम्बन्ध जहाँ पहले हृदय से था आज उसका संबंध केवल दिमाग की व्यावसायिक वृत्ति से हो रहा है। पहले जहाँ उसका दूध जीवन दायी होता था। उसके गोबर से घर आँगन पवित्र होता था आज उसके मांस को खाकर अपने को लोग पवित्र समझ रहे हैं उसका सारा शोंषण करने के बाद भी उसके जिन्दगी तक को खा जाते है। इस बात से समकालीन कवि कैला"। बाजपेयी बहुत दुःखी है और मानव इस स्वार्थपरकता पर अपना क्षोभ व्यक्त करते है।

''तुम्हारी हरियाली / हथिया ली हमने
छोड़ दिया तुमकों सड़कों पर
कूड़ा, अखबार, प्लास्टिक चबाने को
चूस लिया गोरस तुम्हारा,
वत्स काम आ गया
हमें माफ करना मां
बाजार में आह का
कोई मूल्य नहीं।''[60]

समकालीन कवि ललित कुमार लगातार बीतते हुए समय, बीते हुए समय और आने वाले समय के प्रति आगाह करते है। उनका विचार है कि मनुष्य वर्तमान में जीते हुए भी जिस प्रकार अपने भविष्य की चिंता करता है उसी प्रकार अपने प्राचीन समय, इतिहास, सभ्यता और संस्कृति परम्परा, धरोहरों का भी भलि–भाँति ध्यान रखे। वही एक ऐसा प्रमाण है जो हमें आरम्भिक मनुष्य और मनुष्यता के साथ तमाम प्रकार के जीव–जन्तुओं, प"ाु–पक्षियों से अवगत कराते है। क्योंकि आज इस भागती हुई दुनियां में, वै"वीकरण के समय में, अति उत्तर आधुनिकता के युग में

[60] गाय – कैला"ा बाजपेयी, पृथ्वी के पक्ष में – सं0 राधे"याम तिवारी, पृ0 132

जहाँ मनुष्य सिर्फ और सिर्फ लगातार प्राकृतिक भौतिक चीजों का उपभोग कर रहा है जिससे ये चीजें लगातार विलुप्त होने की कगार पर है। इसी चिंता से दुखी होकर ललित कुमार जी कहते है –

''ये कंकाल बनते
नंगे पहाड़, पर्वत
विलुप्त होते जंगल/सुप्त होती नदियॉ/और सूखते झरने/
लगातार/जहरीली होती हवाएँ/
ये सब मिलकर/एक न एक दिन/ हमें लौटने पर/
मजबूर कर देंगे।''[61]

हर तरफ विकास की आँधी चल रहीं है। विकास के साथ–साथ हम जिस प्रकार से अदृ"य या परोक्ष विना"ा की ओर कदम रख रहे है उसका आभास आज की पीढ़ी को नहीं हो पा रहा है। लोग गॉव से शहर की ओर पलायन कर रहे है। जिसके कारण शहर में जनसंख्या घनत्व तेजी से बढ़ रहा है जिसके कारण सभी सुविधाओं का अभाव होता जा रहा है। जनसंख्या बढ़ने के कारण यातायात के साधन बढ़ रहें है जिससे शहर का वातावरण प्रदूषित हो रहा है। जनसंख्या के कारण मल–मूत्र, कूरा–करकट, नदियों में गिराया जा रहा है। जिससे जल प्रदूषित हो रहा है। जनसंख्या घनत्व के कारण यातायात के लिए सड़कें छोटी पड़ जा रही है। जिससे पूर्ति के लिए महानगरों में फ्लाई ओवरों का निर्माण हो रहा, किन्तु मानवीय प्रदूषण कम नहीं हो रहा हें इसी ओर हरजेन्द्र चौधरी संकेत करते है–

''अब सड़कें
फ्लाई ओवर है
फ्लाई ओवरों पर और फ्लाई ओवर है
आसमान में तेज चौराहे बनाते हुए
दुनियां भर के महानगरों में
सड़के बहती है फ्लाईओवरों के नीचे–ऊपर
ट्रैफिक का पीछा करते कुत्ते सा भाग रहा समय

[61] डायनासोर : ललित कुमार, पृथ्वी के पक्ष में : सं0 राधे"याम तिवारी पृ0–153

सब ओर
किसी भी ओर– जाता हुआ।''[62]

जिस प्रकार शहर में उत्तर आधुनिकता व्याप्त है। उसी प्रकार की कुछ हवा गांवों में भी पहुँचती नजर आ रही है। अत्याधुनिक–तकनीकी के दौर में गॉव और शहर के बीच की दुरी कम हो गई है। गॉव में एक से बढ़कर एक म"ाीन नजर आ रही है। गॉव के भी आदमी पहले प्रकृति से लगाव रखता था किन्तु आजकल वह भी म"ाीनों के साथ जी रहा है, उसी की सुविधाओं का भोग करता हुआ अपनी परम्परा में विद्यमान प्रकृति को भूल रहा है।– कवि का संकेत कुछ ऐसी ही है।

''गांव में इच्छाएँ बढ़ रही है।
कारें बढ़ रही है
म"ाीने बढ़ रहीं है
सूख रहे है पीपल और पोखर
सूख रही है सोच।''[63]

मनुष्य इस भागती दुनियां में लगातार उसके साथ भाग रहा है। यह उसकी दौड़ अंतहीन है। वह गलियों से लेकर सड़कों, घरों की छतों, तहखानों, तनी हुई रस्सी पर भी दौड़ना चाहता है। उसको हमे"ाा अकेले पीछे छुट जाने का भय लगा रहता है। वह इसी आपाधापी में प्रकृति की ओर अपना ध्यान ले जाता है और उसके पुराने दिनों को याद करता है कि उस समय प्रकृति में खेत, पहाड़, जंगल, मैदान, पुल, नदियाँ, खिलौने, पक्षियों की आवाजें, समुद्र का शोर तथा हवा का संगीत सभी कुछ मौजूद था–किन्तु

''अब नहीं दिखता कुछ भी
न बारि"ा न धुंध, न खु"ाी न बेचैनी
न उम्मीद न संताप
न किताबें न सितार

[62] जैसे चाँद पर से दिखती धरती – हरजेन्द्र चौधरी, ''नदी में रहता था समय जल', राधाकृष्ण प्रका"ान प्रा0लि0, जी–17, जगतपुरी, दिल्ली–110051, प्र0स0 2002, पृ0 43
[63] उपरोक्त लेखक पृ0–39

दिखाई देते है सब तरफ एक जैसे लहुलुहान पॉव
और सुनाई देती है सिर्फ उनकी थकी और भारी
और लगभग गिरने से अपने को संभालती
धप–धप्प–धप्प–सी आवाजें।''[64]

आज प्रकृति से जो व्याप्त है उसका स्वरूप कुछ और है, भिन्न है, विपरीत है। कवि ई"वर से लगातार दुहाई देता हुआ कहता है तूने प्रकृति का इतना विस्तार किया, इतनी बड़ी सृष्टि की रचना की, सबकुछ पृथ्वी पर विद्यमान था, किन्तु आज ऐसा कुछ नहीं हो रहा है। मै पूछना चाहता है। ये तुम्हारे कार–बार क्यों बंद हो गए? क्यों किसी नदी का निर्माण नहीं हो रहा है? क्यों किसी अन्य समुद्र, और पहाड़ों का निर्माण नही हो रहा है? इन सभी प्र"नों के साथ अंत में कवि कहता है–

''बाढ़ें तो आयीं खैर भरपुर, काफी भूकम्प, तूफान
खून से लबालब हत्याकांड अलबत्ता हुए खूब
खूब अकाल, युद्ध एक से एक तकनीकी चमत्कार
रह गयी सिर्फ एक सी भूख, लगभग एक सी फौजी
वर्दियों जैसे
मनुष्य मात्र की एकता प्रमाणित करने के लिए
एक जैसी हुंकार, हाहाकार।''[65]

पर्यावरण में दिनोंदिन फैलने वाले प्रदूषण के कारण जीव लगातार लूप्त हो रहे है। उनकी संख्या लगातार घटती जा रही है। उनमें में से एक जीव मेढ़क भी हे। जो जल और थल दोनों पर निवास करता है, दोनों को जोड़ने का कार्य करता है। किन्तु वह दुर्लभ होता जा रहा है। उसकी संख्या लगातार कम होती जा रही है। साथ ही इसके दुर्लभ होने का एक और कारण है कि इसका व्यापार हो रहा है। इसको विदे"ाों में भेजा जा रहा है जहां इनके मांस को बड़े ही सादगी से खाया जाता है। इसी द"ाा में चित्रण करते हुए समकालीन कवि ज्ञानेन्द्रपति कहते है –

---

[64] कीवाड़ – कुमार अंबुज, राधाकृष्ण प्रका"ान, 7/31 अंसारी रोड, दरियागंज–100002, प्र0स0 1996, पृ0 30
[65] 'दु"चक्र में स्रष्टा' – वीरेन डंगवाल, राजकमल प्रका"ान, 1–बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली–110002, प्र0स0–2002

''हॉ भाई मेढ़क! आखिर तुम
एक गरीब मुल्क के वासी
बेचे जाते, खरीदे जाते
यहाँ के खनिजों कंकालों में भावी मस्तिष्कों के साथ
खरीदे जाते उनके द्वारा
जो खरीदते है सबकुछ, सबकुछ, सबकुछ
संस्कारों, शरीरों, आत्माओं को भी
व्यापारी जो धन्ना सेठ
समाए दुनिया ऐसा पेट।''[66]

जिस प्रकार से मेढ़क को विदे"ाों में बेचा जा रहा है और बड़े–बड़े व्यापारी अपना धन्धा फैलाए हुए है उसी प्रकार से कछुओं को भी हमारे दे"ा से विदे"ाों में भेजा जाता है। जहाँ इनके मांस से योनोत्तेजना पैदा करने वाली दवाएं बनाई जाती है, जैसे वियाग्रा, पि"चमी च्यवनप्रास। इसलिए एक कछुआ चालीस से सौ डालर के बीच बिकता है। ज्ञानेन्द्रपति 'नजात दि हन्दा' नामक कविता में इसी ओर संकेत कर रहे है–

''आंख गड़ाकर देखा तो भी कहीं नहीं उस खबर में
गंगा में कितने दिन जिएँगे वे भाग्य"ााली कछुएँ
जबकि जलजीवों की प्रजातियों की हुई जाती अभागी
गंगा का प्रदूषण
खा रहा है उनकी उम्र, नाबूद कर रहा बजूद
मुटा–बढ़ा रहा जो भले ही किसी के सुनामी–बेनामी
बैंक अकाउण्ट और औद्योगिक विकास के आकड़े,
दिला रहा हो गंगा को चंगा करने के दावेदार
किसी अपर भगीरथ की अन्तर्राष्ट्रीय पर्यावरण–पुरस्कार।''[67]

[66] सं"ायात्मा – ज्ञानेन्द्रपति : राधाकृष्ण प्रका"ान प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली–110051, प्र0सं0–2004
[67] सं"ायात्मा : ज्ञानेन्द्रपति राधाकृष्ण प्रका"ान प्रा0लि0, नई दिल्ली

ज्ञानेन्द्रपति की सबसे बड़ी चिंता यह है कि गंगा में लगातार प्रदूषण बढ़ रहा है जिससे उसमें रहने वाले जलीय–जीव नष्ट हो जा रहे है। किन्तु इस ओर किसी का ध्यान नहीं जो रहा है। गंगा सफाई के लिए आया करोड़ो रूपया लोग हजम कर जा रहे है और उसमें प्रदूषण दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है। जैसे आज नदियों से कछुआ तथा अन्य जलीय जीव लूप्त हो रहे है या लूप्त होने के कगार पर है उसी प्रकार एक जमाने में डायनासोर भी लूप्त हो गयी । ज्ञानेन्द्रपति 'ओ–ओ, आ–आ, का विदा गीत' नामक कविता में इसी ओर संकेत करते है।

''बहसों और बुझौबलों के बीच
कि लाखों वर्ष पूर्व कैसे लूप्त हुए डायनासोर
पृथ्वी जेता भीमकाय डायनासार
किसी वि"ााल धूमकेतु से टकराई थी पृथ्वी
कि विराट–अलग–प्रस्तर बरसा था पृथ्वी पर।''[68]

पर्यावरण पर लगातार बहस हो रही है। पर्यावरण में व्याप्त तमाम जीव–जन्तु धीरे–धीरे विलूप्त हो रहे है। ज्ञानेन्द्रपति के अन्तःकरण में यह आवाज सुनाई देती है, कि एक समय में यह धरती असंख्य जीव–जन्तुओं से भरी थी किन्तु आज सभी समाप्त हो रहे है। समय अधिक दुस्सह और अधिक दुर्दान्त हो रही है। आने वाले दिनों में शताधिक ये विलुप्त जातियां म्यूजियम का दृ"य बनकर रह जायेगी। जिसका जिम्मेदार मानव और पर्यावरण प्रदूषण दोंनों है। समकालीन कवि मदन क"यप मानवीय कुकृत्यों से नष्ट हो रही उन हाथियों का चित्रण करते है जो मानव अपने स्वार्थ की खातिर उन्हें मार रहा है और उसकी हड्डियों और दांतों का व्यापार विदे"ाों में कर रहा है। उन्होंने बूढ़ा हाथी नामक कविता में इस समस्या को चित्रिण करने का प्रयास किया है।

''यह हाथी मर जायेगा
तब निकाले जायंगे इसके दांत
और उनपर रेखांकित की जायेंगी अजंता–एलोरा की मूर्तियाँ

---

[68] सं"ायात्मा – ज्ञानेन्द्रपति, राधाकृष्ण प्रका"ान प्राइवेट लि0, जी–17, पृ0 149

इसके पॉव बन जायेगे पलंग के पाये
और इस तरह मरने के बाद भी ?
यह हवेली के मेहमान खाने की शोभा बढ़ायेगा।''[69]

अगर जानवरों का इसी तरह विना"ा रहा तो आने वाले दिनों में पृथ्वी पर से सारे जीव–जन्तु खत्म हो जायेगे। इनकों सच्चे मन से बचाने की जरुरत है। खासकर–

''सबसे पहले उन रक्षकों के बचाओं
जो अपनी हवि"ा के लिए
बचा रहना चाहते है पृथ्वी को
बम बरसाकर धुएँ की चिन्ता करते है
जंगल काटकर भू–स्खलन पर शोध कराते हैं
सागर के सीने में भरते है जहर
नदियों में कचरे
खेतों में विषैले रसायन
मेढ़कों की शान और बंदरों के सिर के साथ
करते है हमारी मनुष्यता का भी सौदा।''[70]

कहने का अर्थ यह है कि हमें प्रकृति को उनसे बचाने की आव"यकता है जो प्रकृति को बचाने का ढोंग करते है। जिनकी आकांक्षाए छेद रही है ओजोन की रक्षा परत। जिनकी एषणाएँ पर्वतों की छातियों को रौंद रही है, जिनकी तृषा सारी नदियों का स्वच्छ जल पी जाती है। जिनकी लिप्सा ''वसुधा की हरियाली निगल जाती है। जिनकी लालसा अम्लमेघ बनकर बरसती है। यही सभ्य और महान लोग है जो हथियारों के सौदागर, न"ीली दवाओं के तस्कर पृथ्वी को बचाने की योजनाए बना रहे है, इनसे भी पृथ्वी को बचाने की जरूरत है।

[69] लेकिन उदास है पृथ्वी – मदन क"यप, पृ0 22
[70] लेकिन उदास है पृथ्वी – मदन क"यप, आधार प्रका"ान, 372 / सेक्टर–17, पंचकूला–134109 (हरियाणा) प्र0सं0 1992

fu"d"k

इसमें सौन्दर्य चित्रण और चिंता, परिरक्षण की आदिवासी भूमिका, संरक्षण की स्त्री भूमिका तथा विविध उप–शिर्षक हैं। इसमें पर्यावरण के प्रति मानव की प्रतिबद्धता को स्पष्ट करते हुए पर्यावरण संरक्षण में आदिवासियों की भूमिका, स्त्री की भूमिका तथा पर्यावरण के सौन्दर्य चित्रण को उद्घाटित किया गया है।

v/;k;&lkr

समकालीन कविता का भाषा–शिल्प पर्यावरण चिंतन सन्दर्भ में

1- Hkk"kk vkSj dkO;&Hkk"kk

2- ledkyhu dfo dh Hkk"kk&lEcU/kh vo/kkj.kk

3- ledkyhu dfo;ksa dh dkO;&Hkk"kk vkSj 'kCn&fo/kku

- 3-1 ns'kh 'kCn
- 3-2 fØ;k,¡
- 3-3 'kCn&;qXe
- 3-4 fons'kh 'kCn

4- ledkyhu dfork % dkO;&Hkk"kk vkSj fcEc&fo/kku

5- ledkyhu dfork vkSj izrhd ;kstuk

fu"d"kZ

1- Hkk"kk vkSj dk0;&Hkk"kk

मानव सभ्यता मूल रूप से अनुभूतियों के आदान–प्रदान पर आधारित है। भाषा मनुष्य की सर्वोत्कृष्ट सामाजिक, सांस्कृतिक एवं अनुभूतिजन्य उपलब्धि होती है। जिसमें भावानुरूप रचना की निर्धारित करने की शक्ति पाई जाती है। सामान्य रूप से भाषा उन सभी माध्यमों को बोध कराती है। जिनसे भावाभिव्यंजन का काम लिया जाता है। भाषा जहाँ भाषा विज्ञान के लिए साध्य है, वहीं साहित्य के लिए अभिव्यक्ति का साधन। चूँकि भाषा के द्वारा मानव चेतना का विचारात्मक एवं रागात्मक बोध होता है। इसलिए यह एक तरफ हमारे मानसिक व्यापार का आधार है तो दूसरी तरफ सम्प्रेषण का सामाजिक धरातल। संभवतः इसलिए विल्हेन वान हमवोट ने भाषा को सीमित साधनों का असीमित उपयोग कहा है।

भाषा केवल अपनी प्रकृति में ही जटिल और बहुस्तरीय नहीं है अपितु अपने प्रयोजन में भी बहुमुखी है। इसी कारण विद्वानों का एक वर्ग जहाँ इस मानव मन की सामाजिक अनिवार्यता के रूप में स्वीकार करता है। भोलानाथ तिवारी ने 'भाषा विज्ञान' नामक अपने ग्रन्थ में लिखा है – ''भाषा मानव, उच्चारण अवयवों से निर्मित यादृच्छिक ध्वनि प्रतीकों की वह सार्थक संरचनात्मक व्यवस्था है जिसके द्वारा मनुष्य समाज में अन्य प्राणियों से विचार विनिमय करता है ।''[1]

'हिन्दी साहित्य कोश' में भाषा को कला पक्ष का निर्माता मानते हुए इसे भाव–पक्ष के प्रस्तुति का माध्यम बताया गया है। हिन्दी साहित्यकोश में भाषा को परिभाषित करते हुए कहा गया है–''भाषा मनुष्य के केवल विचार–विनिमय का ही साधन नहीं है, विचार का भी साधन है। भाषा का विचार से अटूट सम्बन्ध है।''[2]

भाषा के सम्बन्ध में डॉ0 नामवर सिंह का कहना है–''भाषा एक स्वतः सम्पूर्ण सर्जनात्मक प्रतीक प्रणाली है जो इसकी सहायता के बिना इतर साधनों से प्राप्त अधिकांश अनुभव का ही संकेत ग्रहण नहीं है बल्कि वह अपनी रूपात्मक पूर्णत के कारण हमारे लिए अनुभव को परिभाषित भी करती है। इसका एक कारण यह भी है

1 भाषा विज्ञान–भोलानाथ तिवारी, पृ04–5
2 भाषा विज्ञान की भूमिकाः देवेन्द्र नाथ शर्मा, पृ0 2001

कि हम भाषा में निहित अपेक्षाओं को अनुभव के क्षेत्र में अनजाने ही प्रक्षेपित करते हैं।'[3]

जहाँ तक बात काव्य–भाषा की है तो यही कहा जा सकता है कि काव्य–भाषा गतिशील भाषा होती है। कवि की जद्दोजहद तीन आयामों में एक साथ होती है। दुःख से मानसिक शारीरिक संघर्ष, दूसरे से मदद की माँग और अपने दुःख को श्रोता के दुःख में रूपान्तरण। तभी यह संभव है कि कवि अब अपने श्रोता की भाषा, मानसिकता और बौद्धिक क्षमता से परिचित हो। कुल मिलाकर कह सकते हैं कि काव्य–भाषा भोक्ता द्वारा अपने भाव एवं विचार को श्रोता की भाषा में प्रस्तुत करने का प्रयास है।

काव्य–भाषा की चर्चा करते हुए नंद किशोर नवल लिखते हैं कि–''ध्वनियों का जब अर्थ से संयोग होता है, तब शब्दों का निर्माण होता है। शब्दों के मिलने से वाक्य बनते हैं और वाक्यों से भाषा। भाषा का सम्बन्ध इन्द्रिय बोध से होता है तब उसमें बिम्बात्मकता आती है।''[4]

2- ledkyhu dfo dh Hkk"kk& lEcU/kh vo/kkj.kk

समकालीन कवियों की कवितायें भाषा की एक विशिष्ट प्रविधि के रूप में देखे जाने की माँग करती हैं। कविता में सबसे पहले कवि द्वारा बरती गयी भाषा पर ही ध्यान दिया जाता है क्योंकि इसमें विषयवस्तु का ही नहीं भाषा का उपचयीकरण होता है। समकालीन कवियों की काव्य–भाषा स्वयं संचालित नहीं है। उनकी कविता से गुजरते हुए भाषा के रचाव को साफ–साफ महसूस किया जा सकता हैं। वे सामान्य भाषा को अवरोधित तथा विखंडित करके अपनी काव्य–भाषा को निर्मित करते हैं। उनकी कविताओं को पढ़ते वक्त शब्दों की बनावट, संयोजन और संरचना के प्रति अतिरिक्त सजगता जरूरी है। भाषा के विषय में समकालीन कवि ज्ञानेन्दपति कहते हैं–''समकालीन कविता का शब्दकोश यथासंभव तद्भव पड़ता है, तक महदूद रहे तो बेहतर तत्समय से कविता के कंधों पर बेवजह बोझ,

3 कविता के नये प्रतिमानः डा0नामवर सिंह , पृ0 105
4 कविता की मुक्तिः नंद किशोर नवल

और देशज को छूते अंगुलियाँ मैली होती है। मेरी कविता इस नजरिये को नकारती है। निराला, मुक्तिबोध और नागार्जुन के उदाहरण मेरे सामने है। विशाल भाषिम संपदा के रहते भाषिक विपन्नता की स्थिति मुझे मंजूर नहीं।''[5]

दरअसल जब से सूचना एवं तकनीकी का विकास हुआ तब से साहित्य पाठक–समुदाय के बदले श्रोता–समुदाय की चीज बनती जा रही है। इसलिए कविता में भी क्या कहा गया है कि साथ–साथ कैसे, किसे और क्यों कहा गया है पर जोर दिया गया है। समकालीन कवियों की कविताओं में जीवनानुभवों को साझा होने के कारण उसका मूल स्रोत संघर्ष और आम–आदमी की उपस्थिति है। इसलिए विविध वर्णी काव्यानुभव में वे भाषा की समस्या को भी 'अंतर्वस्तु के साथ सम्पृक्त कर देखते हैं। डा0 कृष्ण मोहन ने 'साखी नामक पत्रिका में लिखा है– ''बहुत से महत्वपूर्ण कवि ऐसे होते हैं जिनकी कविता में 'कैसे कहा गया है' इसको प्रत्यक्ष न किया जाए। दरअसल यह विशेषता हर 'जेनुइन' कवि की होती है इसलिए समकालीन कवि ज्ञानेन्द्रपति की कविता में अन्तर्वस्तु जीवन–द्रव्य बनकर व्याप्त रहती है।''[6]

कविता में सामन्यतया विचारों को भावों के संदर्भ में ही व्याख्यायित किया जाता है। पूर्णतः नहीं तो अंशतः यह बात सही भी हो लेकिन कविता या किसी भी साहित्यिक विधा के लिए इस प्रकार का पूर्वाग्रह नहीं रखना चाहिए। इसलिए आज कविता वैचारिकता को अपने में ही आत्मसात् कर जीवन के उन तमाम पहलुओं को छूती है जो अप्रत्यक्ष या प्रत्यक्ष दोनों ही रूपों में हमें प्रभावित करती है। इसलिए कविता की गद्यात्मकता समकालीन रचनाकारों को संघर्ष से जोड़ती है। समकालीन कवि ज्ञानेन्द्रपति ने भी कविता को शब्दों के बजाय वाक्यों में लिखे जाने पर जोर देते हुए लिखा हैं कि ''जनता के जीवनानुभवों में साझा होने के कारण मैंने पाया है कि मेरे काव्य–पाठ के दौरान उपस्थित आदमी तक कविता पहुंचती है और समझ

5 पढ़ते–गढ़तेः पृ0 18
6 साखीः कृष्णमोहन पृ0 6–7

से चमकती आँखों के साथ नहीं जाती है। वस्तुतः कविता शब्दों से नहीं वाक्यों में लिखी जाती है, वाक्य गद्य की ही नहीं, कविता की भी इकाई है।''[7]

चूँकि समकालीन कविता की संवेदना का श्रेय अपने आस–पास से लेकर विश्व तक और वर्तमान से लेकर भविष्य तक फैला हुआ है। इसलिए उसमें तत्सम, तद्भव, देशज, विदेशी सभी का प्रयोग स्वाभाविक रूप से हुआ है। उदाहरण के रूप में कुछ शब्दों को देखा जा सकता है।

3- ledkyhu dfo;k dh dk0;&Hkk"kk vkj 'kCn&fo/kku

प्रकृति, शक्ति, तरंगायित, पुरातन विज्ञान, नक्षत्र, महाविवर, विद्युत्कण, स्पन्दन, संघर्षण, भौतिकवाद, तत्तान्वेषण, परमाणुकेन्द्र, अणु, परमाणु, ब्रह्मास्त्र, दिककाल, तारागण, गुरूत्व, यंत्रबद्ध, अनुसंधान, घूमायमान, बारूद, शक्तिपूंज।

3-1 n'kh 'kCn

किरण, दलितन, पुरखा, आसीस, पीतरपख, भटकटैया, गदगद, हल्लूक, फुरसत, झंडू, जोड़ीदार, किरकिराता, दर्मर, रतिया, पंचटकिया, टभकना, खुटियायी, गोबर, मेहरारू, माइ, सतुआ,झकाझक, परात, भूअर बादर, झीसी, पेट पोछना, खचपच चाऊर, सनीचर, सहजन, गोड़तारी, होरहा, दिहाड़ी,उझंख आदि।

3-2 fØ;k,¡

हरसाना, अझुराना, हेरना, डॉकना, चिचोड़ता, पतियाना, चोथना, चपतियाना, उचारना, कहरना, उकतना, कलौंछिपाना, घुरघुराना, बकोटना, लँगड़ाती, गलगलाना, थर्राना, सुरसुराना, ठकठकाना, भरभराना, चिचियाना आदि।

3-3 'kCn&;qXe

जर्रा–जर्रा, जगह–जगह, करोड़ों–करोड़ों, रोज–रोज, होन्हु, अभी–अभी, कीच–कीच, डरते–डरते, ढक–ढक, गली–गली, जहाँ–तहाँ, टेढ़ा–मेढ़ा, भूखे–नंगे, ठीक–ठिकाने, रात–विरात, दिया–बाती, दिशा–मैदान, अगल–बगल, धूल–धूसरित,

7 ज्ञानेन्द्रपतिः पढ़ते–गढ़ते पृ0 18–19

बित्ता– भर, क्षितिज–रेखा, जल–ध्वनि, पेप्सी–पिपासा, हुटर–सुटर, हंबर–दवर, आनन–फानन, गोल–मटोल, इक्का–दुक्का, कोटि–कोटि, लास–रास, गडड–मडड, पर्वत–वलय, बर्फीले–गर्वीले, ताने–बाने, लचर–पचर आदि।

3-4 fon'kh 'kCn

स्टेशन, फिल्म, ट्रैक्टर, सर्कस, सिनेमा हाल, विटामिन, काम्प्लेक्स, एपिसोड, सिम्पटम, पारसल, रिटायर्ड, टेलीविजन, स्क्रीन, क्लोजप, बायोस्कोप, पार्किन्प्सन्स, डिसीज, परम्फ्यूम, इलेक्ट्रान, हाइड्रोजन, वैक्टीरिया, रिक्टोरिया, स्पायरोकीटस, वायरस, क्लोरोफिल, कम्प्यूटर, फ्लापी, टरबाइन, गैमक्सीन, एटमबम, हाइड्रोजन बम, रेडियो आदि।

4- ledkyhu dfork % dk0;&Hkk"kk vkj fcEc&fo/kku

कविता में अर्थग्रहण का माध्यम बिम्ब–ग्रहण है। कविता में जो अर्थग्रहण होता है वह भाव में लिपटा होता है। बिम्ब के बारे में डा0 विमल कुमार का कहना है– ''बिम्ब विधान कला का क्रियापक्ष है जो कल्पना द्वारा उत्थित होता है।''[8]

इसी संदर्भ में मुक्तिबोध का कहना है– ''संवेदनात्मक उद्‌देश्यों द्वारा परिचालित और आत्मपूर्ति की विशेष दशा में प्रवाहित यह अनुभव पूँज कल्पना द्वारा विस्तृत और मूर्तिमान हो उठता है, किन्तु साथ ही प्रवाहशील भी। अनुभव प्रवाह चित्र–प्रवाह में परिणत हो जाता है।''[9]

समकालीन कविता में बिम्बों के विविध प्रकारों को देखा जा सकता है। जिसमें ऐन्द्रिय–बिम्ब, गन्ध–बिम्ब, रस–बिम्ब, शब्द–बिम्ब, स्पर्श–बिम्ब, रूप–बिम्ब, गतिशील–बिम्ब,स्थिर–बिम्ब, अलंकृत–बिम्ब आदि बिम्बों के लक्षण दिखलाई पड़ते हैं जैसे–समुद्रों के तलांतों से निकल आयेगी ज्योतितन मछलियाँ।''[10]

8 सौन्दर्यशास्त्र के तत्त्व–डा0 विमल कुमार–पृ0 201
9 नये साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र
10 ज्ञानेन्द्रपति –भिनसार पृ0 175

–''बर्फ की सफेद चादर ओढ़कर सो नहीं गये थे।''[11]

–''हमारी जीभ अब केवल फुसफुसाती है।''[12]

–''पृथ्वी की टेबुल पर रख देगा, आदमी अभी लैम्प।''[13]

पसरी है दोपहर लम्बी गरमी की
बैठी है चिड़ियाँ चुप
ताकती है टुक–टुक
नही छेड़ती हवा
रूठी है क्या।[14]

चादर में बच्चे को
पीठ पर लटकाए
धान रोपती स्त्री
रोप रही है अपना पहाड़ सा दुःख
सुख की एक लहलहाती फसल के लिए।[15]

हमारे सपनों में रहा है
एक जोड़ी बैल, हल जोतते हुए
खेतों के सम्मान को बनाए रखना।[16]

अनजान सूरज
सड़ी हुई लाशों की
रोटियाँ सेंक रहा है।[17]

नदी एक माँ हैं
बूढ़ी दिखती है
पर बूढ़ी नही होती
फूल पैसे से प्रसन्न

11 वहीं –पृष्ठ 173
12 वहीं–पृष्ठ 169
13 वहीं –पृष्ठ 175
14 दोपहर गरमी की – अलका सिन्हा, पृथ्वी के पक्ष में – सं0 राधेश्याम तिवारी
15 पहाड़ी स्त्री अपने घर की तलाश में – निर्मला पुतुल
16 हमारी अर्थी हो नहीं सकती – अनुज लुगुन
17 तुम अपने – राजेन्द्र मिश्र

थ्हरनी सी कुलाँचे भरती
भविष्य को जिंदा रखती
अतीत और वर्तमान की आहुति दे कर।[18]

5- ledkyhu dfork vkj i:rhd ;kstuk

समकालीन कवि अपनी बातों को स्पष्ट करने के लिए प्रतीक का भी सहारा लेते हैं। प्रतीक वास्तव में ज्ञान का एक उपकरण है जो सीधे–सीधे अभिधा में नहीं बंधता उसे आत्मसात करने या प्रेरित करने के लिए प्रतीक काम आते है। 'प्रतीयते अनेन इति प्रतीकम्' अर्थात् जिससे प्रतीती हो या किसी व्यक्ति की अभिव्यक्ति हो, वह प्रतीक है। प्रतीक अप्रस्तुत, अमूर्त, अप्राप्य का प्रतिविधान,मूर्तरूप में करता है। यह कलाकार के गूढ़ एवं गहन संदर्भों की निजी कलात्मक अभिव्यंजना है। इसका कार्यस्थूल को सूक्ष्म बनाना भी है। इसी संदर्भ में युग कहते हैं–''प्रतीक आद्य रूप कल्पना बिम्ब है जो प्रारंभ में उपचेतन के स्तर पर प्रतिभाषित होता रहता है।''[19]

समकालीन कवि सामाजिक सरोकार के कवि हैं। इसलिए वह अपनी कविताओं में, पर्यावरण, राजनीति और व्यवस्था को प्रतीकात्मक रूप में व्यक्त करते हैं। रोशनी ढोता जिस्म,चीटियाँ, चमगादड़, साँप, आलमारी के पीछे, नेवला का निकलना बरसाती रात के कीड़े, एक मृत कौवा , जंगल, पहाड़, वृक्ष, नदी, समुद्र आदिवासी आदि प्रतीकात्मक कविताएँ है। नक्सलवादी आंदोलन की वैचारिक ऊष्मा लेने के बावजूद समकालीन कवियों में उनके अन्तविर्रोधों की पहचान करने का मुद्रा भी शुरूआती दौर से मौजूद है। रोशनी ढोता जिस्म और चीटियाँ, चमगादड़, साँप, आलमारी के पीछे, नेवला का निकलना बरसाती रात के कीड़े, एक मृत कौवा, जंगल, पहाड़, वृक्ष, नदी, समुद्र, आदिवासी आदि प्रतीकात्मक कविताएँ हैं। नक्सलवादी आंदोलन की वैचारिकी ऊष्मा लेने के बावजूद समकालीन कवियों में उनके अन्तविर्रोधों की पहचान करने का माद्दा भी शुरूआती दौर से ही मौजूद है।

18 अब सब कुछ – चम्पा वैद
19 सायकोलॉजीः पृ0 235

रोशनी होता है जिस्म औरी चीटियों में जुगनू और चींटी नक्सली क्रांति और जिजीविषा की प्रतीक है।

(क) मछलियों की तरह रलमलाना

(ख) दाँतों के खोखल में सिपसिपाते कीड़ों

(ग) टेलीविजन का चश्मा, कम्प्यूटर का दिमाग

(घ) झुराये पत्तों की तरह टूट रहे।

(ड़) इतिहास हवा की तरह फैल गया

(च) उसकी नींद में सारी लोकल ट्रेनें स्थगित हो गई है

(छ) लोहे की पटरियों पर बर्फ गिर रही है।

(ज) घर के भीतर उल्लास की जगह अंगीठी जल रही है।

fu"d"k

इसमें भाषा और काव्य भाषा के सम्बन्ध में विद्वानों का विचार, समकालीन कवियों की भाषा सम्बन्धी अवधारणा, समकालीन कवियों की काव्य–भाषा और शब्द–विधान, बिम्ब–विधान तथा प्रतीक योजना आदि पर संक्षेप में चर्चा की गयी है।

उपसंहार

पहला अध्याय – पर्यावरण : 'आशय एवं स्वरूप' में पर्यावरण को स्पष्ट किया गया है। जैसा कि हम जानते है कि – ''भारतीय चिंतन में कहा गया है कि ''क्षिति जल, पावक, गगन, समीरा, पंच तत्व यह अधम शरीरा'' जिसका आशय है कि हमारा यह शरीर धरती, जल, अग्नि, आकाश एवं वायु से मिलकर बना है। यह चिंतन आज के परिवेश में भी वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी सही माना गया है। पर्यावरण का अर्थ ही है इन सभी घटकों के मध्य समुचित संतुलन।

इस प्रकार पर्यावरण शब्द 'परि+आवरण' दो शब्दों से मिलकर बना है जिसका अर्थ है 'परिवृत्ति'। अंग्रेजी भाषा में पर्यावरण के लिए 'एनवायरनमेण्ट' शब्द का प्रयोग किया जाता है। 'एनवायरन' का अर्थ है 'घेरना' तथा 'मेण्ट' का अर्थ है चारों ओर इस प्रकार 'एनवायरनमेण्ट' का शाब्दिक अर्थ है 'चारो ओर घेरना' पर्यावरण वह आवरण है जो जीव के चारों ओर उपस्थित है, अर्थात् जल, थल, नभ तीनों में प्राकृतिक अथवा अप्राकृतिक रूप से उपस्थित सभी अवयवों पर्यावरण का ही भाग है अर्थात् पर्यावरण समस्त सामाजिक, जैविक, भौतिक व रासायनिक कारकों का योग है जो सभी जीवों के चारों ओर एक आवरण के रूप में उपस्थित है। इसी को विभिन्न विचारकों ने अपने तरीके से व्यक्त किया है। किसी ने वैश्विक दृष्टिकोण के माध्यम से परिभाषित किया है तो कोई पर्यावरण को एक अविभाज्य समष्टि मानते हुए उसके अन्तर्गत भौतिक जैविक एवं सांस्कृतिक तत्वों वाले पारस्परिक क्रियाशील तंत्रों से इसकी रचना मानता है। पर्यावरण की संरचना में अजैविक तथा जैविक रूपों को लिया गया है जिसमें ठोस, द्रव तथा वायु अवस्था के साथ–साथ स्थल मण्डलीय, वायुमण्डलीय तथा जलमण्डलीय रूपों को दर्शाया गया है। इसके साथ–साथ पर्वत पर्यावरण, पठार पर्यावरण, मैदान पर्यावरण, झील पर्यावरण, सरिता पर्यावरण, हिमनद पर्यावरण, मरूस्थल पर्यावरण, सागर तटीय पर्यावरण तथा सागरीय पर्यावरण सामने आते है। बढ़ती हुई आबादी और सिमटते हुए वन से बिगड़ी परिस्थितिकी का परिणाम है कि हमारा पर्यावरण असुरक्षा के

कगार पर पहुँच गया है। वन विनाश के कारण ऊँची धरती और पहाड़ों की मिट्टी वृक्षों के अभाव में लगातार क्षरित हो रही है जिससे पर्यावरण संघटक प्रभावित हो रहे है। पर्यावरण से सम्बन्ध चाहे मानव का रहा हो, चाहे पशु–पक्षियों का सभी सहयोगात्मक रूप में रहे है। सभी एक दूसरे के साथ सहयोग की भूमिका में रहते थे। कही किसी के किसी से खतरा नही था। किन्तु समय की मार ने, औद्योगिक विकास ने, आधुनिकता ने, प्राकृतिक परिवेश को इस प्रकार अप्राकृतिक बना दिया कि आज सभी उस भयानक दुष्परिणाम को झेल रहे है।

पर्यावरण प्रदूषण चारों तरफ इस प्रकार व्याप्त हो गया है कि मनुष्य स्वयं अपने ही कुकर्मों के घेरे में फँस गया है। पर्यावरण प्रदूषण के प्राकृतिक स्रोत कम किन्तु मानवीय स्रोत अधिक जिम्मेदार है जिसके कारण वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण तथा ध्वनि प्रदूषण उत्पन्न हो गया है। वायु प्रदूषण से लगातार आक्सीजन की कमी हो रही है तथा विभिन्न प्रकार की बीमारियाँ जैसे टी0बी0, अस्थमा, ब्रोंकाइटिस आदि फेफड़े सम्बन्धी रोगों से लोग प्रभावित है तो औद्योगिकरण, नगरीकरण तथा मानव जनसंख्या के तीव्र वृद्धि के कारण लगातार जल प्रदूषण बढ़ रहा है। जिसके कारण हैजा, पेचिस, मलेरिया, पीलिया आदि रोग उत्पन्न हो रहा है। आम आदमी के स्वास्थ्य को सबसे बड़ा खतरा ध्वनि प्रदूषण से है। ट्रकों, बसों, स्कूटरों आदि के शोर से उत्पन्न बीमारियाँ मानव शरीर में घर कर चुकी है। प्रदूषण से केवल मानव समुदाय ही प्रभावित नही होता है बल्कि प्रकृति पर भी इसका ज्यादा असर पड़ता है। जिसके कारण मरूस्थलीकरण, हरित गैस प्रभाव, अम्ल वर्षा, विश्वव्यापी तपन, अलनीनो, स्मोज तथा शहरीकरण आदि समस्याएँ उत्पन्न हो रही है। साथ ही यह देखा जाय तो पर्यावरणीय समस्या तक न केवल भारतीय स्तर पर ही बल्कि विश्व स्तर पर भी व्याप्त है जिससे पूरा विश्व प्रभावित हो रहा है।

दूसरा अध्याय – समकालीन कविता : 'सीमांकन एवं स्वरूप' में हिन्दी साहित्य के इतिहास को देखा जाय तो आदिकालीन रासो वीर रस की कविता या सन्तों की भक्ति–भावना से ओत–प्रोत कविता, श्रृंगार एवं देह उत्सवों पर लिखी जाने वाली कविता या फिर आधुनिकता को ध्वनित करने वाली कविता ये सभी

अपने समय के यथार्थ से सीधी मुठभेड़ करती हैं। जीवन के भीतर से पाये गये दृश्य में अभिव्यक्त कुछ ऐसे बिन्दु है जो कई पीढ़ियों को एक ही मंच पर लाते है वह है समकालीनता का मंच। समकालीनता का सामान्य अर्थ वह चेतना जो अपने काल या समय से सम्बद्ध हो और सामयिक संदर्भों के दबावों और तकाजों को स्वीकार करती हुई काव्य को ताजगी व नवीनता प्रदान करने में समर्थ हो। समकालीनता एक बहुआयामी और व्यापक शब्द है जो आधुनिकता का आधार तत्व भी है तथा अनुभूत सत्य और भोगे हुए यथार्थ मूल्यगत विघटन एवं संक्रांत मनःस्थितियों का चित्रण भी है।

सन् साठ के बाद अनेक काव्यान्दोलन प्रारम्भ हुए। जहाँ मोहभंग और निराशा का एक नया दौर शुरू हो गया। सत्ता, जनतंत्र का खोखलापन और उसमें आम आदमी की दुर्दशा निश्चित ही साठोत्तरी कवियों की चिंता का विषय बना। समकालीन कविता में परिवेश महत्वपूर्ण है। इसमें एक ओर व्यक्तियों और स्थितियों की खास स्थानीयता की पहचान और दूसरी ओर उनके संदर्भों में सार्वजनिकता के तत्व ढूढ लेने की क्षमता होती है। कुछ विचारक समकालीन कविता को भविष्य के प्रति पक्षधरता का दूसरा नाम बताया। तो कुछ स्वतंत्रता की तीव्र इच्छा और उनके लिए पहल तथा उस पहल के समर्थन में लिया गया, साहित्य को ही समकालीन साहित्य मानते है। समकालीन कविता पुराने मध्यवर्ती और युवा कवियों की पीढ़ी लगभग साथ–साथ सर्जनरत है। और कुछ अपवादों को छोड़कर सभी सामयिक जीवन के दबावों को महसूस कर रहे है। अगर अंतर है तो केवल दृष्टि और अभिव्यक्ति का। यहाँ एक ओर त्रिलोचन एवं शमशेर जैसे कवियों को लेकर सप्तक से जूड़े कवि केदारनाथ सिंह एवं कुँवर नारायण जैसे रचनाकार अपने अनुभवों द्वारा नयी काव्यात्मक पहचान को प्रतिष्ठित कर रहे थे वही दूसरी ओर ज्ञानेन्द्रपति, राजेश जोशी, उदय प्रकाश, अरूण कमल, आलोक धन्वा, विष्णु खरे, प्रयाग शुक्ल, संजय चतुर्वेदी, अशोक वाजपेयी, मंगलेश डबराल जैसे रचनाकार अपने–अपने स्तर पर समय और समाज की गतिशीलता का परीक्षण कर रहे है। इसी अर्थ में समकालीन कविता अपने पूर्ववर्ती कविताओं से प्रवृत्तिगत बदलाव की कविता है। यह

बदलाव पारम्परिक कविता का एकदम से निषेध न होकर जीवन के प्रति निरंतर अपनी पहुँच बनाये रखने का बदलाव है। इसी आधार पर समकालीन कविता के तीन दौर माने जा सकते है। पहला दौर 1950 से 1960 तक का है। इस दौर को तीन वर्गों में विभाजित किया गया है। पहले वर्ग में शमशेर, अज्ञेय, कुँवर नारायण, रघुवीर सहाय, नरेश मेहता आदि कवियों की कविताएँ आती है। दूसरा वर्ग लोकप्रिय कविता का है जिनमें भवानी प्रसाद मिश्र, भारत भूषण अग्रवाल, गिरजा कुमार माथुर आदि कवियों की कृतियाँ आती है। तीसरे वर्ग में मुक्तिबोध, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, जैसे कवि आते है। इस पूरे दौर ने कविता अपने परिवेश की वास्तविकता का उद्‌घाटन करती है और उसे बदलने की प्रतिबद्धता के निर्वाह का सार्थक प्रयास करती है।

समकालीन कविता का दूसरा दौर (1960–1970), नकार, निषेध, विद्रोह, आक्रो"ा, अस्वीकृति का है। इस समय अनेक काव्यान्दोलन उभर कर सामने आये। भूखी पीढ़ी, बीटनिक पीढ़ी, युयुत्सावादी पीढ़ी, सनातन सूर्योदयी कविता, अकविता आदि। इनमें से अधिका"ा आन्दोलन अल्पजीवी रहें किन्तु अकविता ने अपना वि"ोष स्थान बनाया। इस कविता के मुख्यतः दो पक्ष है पहले पक्ष में वे कविताएँ आती है जिसमें वर्तमान परिवे"ा की विसंगति को उजागर करके उसके प्रति नकार, निषेध, अस्वीकृति के भाव को अभिव्यक्ति दी है। इस वर्ग में जगदी"ा चतुर्वेदी, श्याम परमार, सौमित्र मोहन, गंगा प्रसाद विमल आदि की रचनाएँ है। दूसरा पक्ष उन कवियों का है जिन्होंने काव्य भाषा का आरम्भ तो अकविता आन्दोलन से किया किन्तु कालांतर में लोहियावादी समाज से प्रेरित होकर तत्कालीन व्यवस्था के विरूद्ध विद्रोह एवं आक्रो"ा को कविता का विषय बनाया। राजकमल चौधरी, धूमिल, रमे"ा गौड़ इसी वर्ग के कवि हैं।

समकालीन कविता का तीसरा दौर 1970 से अब तक का है। इस दौर की कविता में सामाजिकता का आग्रह प्रधान है। इस दौर के कवियों में चन्द्रकांत देवताले, कुमार विमल, विष्णु खरे, राजे"ा जो"ाी, अरूण कमल, मंगले"ा डबराल,

केदार नाथ सिंह, उदय प्रका"ा, लीलाधर जगूड़ी, बद्रीनारायण आदि नाम उल्लेखनीय है।

जहाँ तक सवाल समकालीन कविता के स्वरूप का है तो समकालीन कविता अपने समय के यथार्थ की अभिव्यक्ति है। समकालीन कविता उन विम"ाँ को उजागर करती है जो ज्वलंत होते हैं। समकालीन कविता में मुख्य रूप से, जन सामान्य की हित चिंता, व्यवस्था विरोध का उग्र तेवर, राजनीतिक अर्न्तविरोधों पर व्यंग्य, साम्प्रदायिकता का विरोध, आतंकवाद, पर्यावरण चिंता, आदिवासी जीवन की पीड़ा, रंगभेद और औपनिवे"िाक शोषण का विरोध आदि प्रवृत्तियाँ, समकालीन कवियों की कविताओं में पाया जाता है। यथार्थ की तीखी पहचान और जन साधारण की दुर्द"ाा के लिए जिम्मेदार तत्वों की "िानाख्त रामदर"ा मिश्र की कविता में होती है। तो धूमिल की कविता जन संघर्ष का खुला आह्वान है। ऋतुराज की कविता 'पंजाब' उस असुरक्षा और आतंक का तीखा बयान करती है जिसे कई सालों से पंजाब के बहुत से निर्दोष व्यक्ति झेलने को अभि"ाप्त है। कवि गोपाल दास 'नीरज' ने आतंकवादी गतिविधियों को व्यक्त करते हुए आतंकवादी समस्या के अर्न्तविरोधों और दुष्परिणामों को रेखांकित करते है। शम"ोर ने धर्म की आड़ में साम्राज्यवादी पूँजीवादी शक्तियाँ किस प्रकार शोषण करती है तथा इंसान ही इंसान का दु"मन बन जाती है की ओर इ"ाारा करते है। समकालीन कविता में आज के अत्याधुनिक विम"ा स्त्री–विम"ा को सांस्कृतिक प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त करते है। इन कवियों ने अपनी कृतियों के माध्यम से मुख्यतः पुरूष प्रधान समाज में नारी की नियति के प्र"न को उठाया है। रामकुमार वर्मा ने पुरूष प्रधान समाज के प्रति आक्रो"ा कम भारतीय नारी के प्रति सम्मान की चिंता मुखरित किया है।

तीसरा अध्याय – पर्यावरण चेतना : संस्कृति और साहित्य में इस प्रकार कहा जा सकता है कि प्राचीन भारतीय साहित्य में पर्यावरण संरक्षण सम्बन्धी प्रयास किया गया है। वेदों में वरूण देवता को पर्यावरण का सबसे बड़ा संरक्षक माना गया है जो रात्रि और दिन के अधिष्ठाता है। जिसने सूर्य की रचना की और अग्नि और जल का निर्माण किया। जिसका आदे"ा वायु मानता है जिसके प्रका"ा से चन्द्रमा

प्रकाि"ात होती है नदियाँ भी उसी के आदे"ा से बहती हैं, समुद्र उसके नियंत्रण में रहता है तथा मेघ जिसके आदे"ा से पानी बरसाता है। इसके साथ ही पर्यावरण संरक्षण में संहिताएँ भी चर, मनुष्य जंगल, प"ाु–पक्षी आदि प्राणधारी पर्वत, पृथ्वी, सूर्य का वर्णन करती है जो पर्यावरण को शान्तिदायक बनाये रखती है तो धर्मसूत्र भूमि–"ाुद्धि, आहिंसा तथा शास्त्र विहित शौच नियमों का पालन करता है। उपनिषद् स्वच्छ और शांत वातावरण में सत्य, धर्म, समृद्धि, स्वाध्याय, एकात्मद"ार्न और आत्मकल्याण के साथ–साथ प्रमाद (आलस्य) न करने की अतिउत्तम धारणा को व्यक्त करता है तो ब्राह्मण ग्रन्थ यज्ञ की महत्ता, आहुतियों की महत्ता तथा प्रकृति के पंचभूत तत्त्व– पृथ्वी, जल, आका"ा, वायु और अग्नि के संतुलन को द"ार्या है। स्मृतियों में जल "ाुद्धि, वायु "ाुद्धि, भूमि शुद्धि, वनस्पति संरक्षण, प"ाु संरक्षण, वृक्षों तथा औषधियों को बिना प्रयोजन के काटने पर दण्ड और प्रायि"चत का विधान है तो रामायण में धर्म, लोक कल्याण, प्रकृति प्रेम, अहिंसा एवं प"ाु–पक्षी संरक्षण के प्रति उत्तम धारणा व्यक्त है। महाभारत में अहिंसा, कल्याण, प"ाु–पक्षी संरक्षण, वृक्ष–वनस्पति संरक्षण की बात कही गयी है तो पुराणों में धर्म, अहिंसा, शांति, पंचतत्व, प"ाु–पक्षी एवं वृक्ष–वनस्पति संरक्षण, यज्ञ की धारणा, सभी प्रकार के शांतियों का वर्णन, आका"ा, पृथ्वी सम्बन्धी महोत्पात पर, अतिवृष्टि एवं अनावृष्टि की धारणा व्यक्त है। भारतीय कला चित्र हो, मंदिर हो, स्तूप हो या मूर्तियाँ हो के माध्यम से पर्यावरण संरक्षण को मूर्त रूप में व्यक्त किया है तो भारतीय संस्कृति में मदार की उत्पत्ति भगवान सूर्य से, वृक्ष प्रजापति की हड्डियों से, दूब बासुकी नाग की पीठ से, लक्ष्मी जी का वाहन उल्लू, गणे"ा जी का वाहन चूहा, दुर्गा जी का वाहन शेर तथा गाय को माता कहा गया है तो जैनधर्म में बिना प्रयोजन का भूमि खोदना, वृक्षादि को उखाड़ना, फल–फूल पत्रादि को तोड़ना अनर्थ बताया गया है तथा पानी को कपड़े से छानकर पीने की प्रथा बताई गई है।

चौथा अध्याय – आधुनिक हिन्दी कविता में पर्यावरण की भूमिका में मुख्य बिन्दुओं पर विचार किया गया है – औद्योगिक क्रांति का प्रभाव दे"ा की तकनीकी, सामाजिक विकास, आर्थिक विकास एवं संस्कृति तथा साहित्य सभी पर पड़ा।

इसका आरम्भ वस्त्र उद्योग के म"ाीनीकरण से लेकर लोहा बनाने और शोधन करने की तकनीकी तथा क्रांति के नये विचारों का सूत्रपात होने तक हुआ। यह प्राचीन श्रृंखलाओं को तोड़कर नयी स्वतंत्रता की ओर अग्रसर होने की भावना के आर्थिक क्षेत्र को प्रभावित किया। जंगलों में खनिज क्षेत्रों के निकट नगर बसे, नगरों तथा अच्छी सड़को का निर्माण हुआ। दे"ा की व्यापारिक पूँजी, साहस तथा अनुभव को नया क्षेत्र मिला। व्यापार वि"वव्यापी हो सका। उपनिवे"ाों की स्थापना हुई। नई व्यापारिक संस्थाओं, बैकों और कमी"ान एजेंटो का प्रादुर्भाव हुआ। यातायात के नये साधनों द्वारा वि"वव्यापी बाजार का जन्म हुआ। इग्लैण्ड में माल बड़े पैमानों पर तैयार होने लगा और यह उपनिवे"ाों में बेचा जाने लगा। प्रथम और द्वितीय युद्ध से उद्योगों में निरंतर वृद्धि हुई। भारत में डीजल, इंजन, पंप, वाइसकिले, कपड़ा सीने की म"ाीन, कास्टिक सोडा, क्लोरीन आदि का उत्पादन प्रारम्भ हुआ तथा शक्कर, सीमेंट तथा साबुन के क्षेत्र में पूर्णतः आत्म निर्भर था तथा जूट के क्षेत्र में तो उसका आधिपत्य हो गया लेकिन श्रम के क्षेत्र में मानव का स्थान म"ाीन ने ले लिया, उत्पादन में मात्रात्मक और गुणात्मक परिवर्तन आया। धनसम्पदा में भारी वृद्धि हुई अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार बढ़ा। औपनिवे"िाक साम्राज्यवाद का विस्तार भी औद्योगिक क्रांति का ही परिणाम था एवं नये वर्गों का उदय हुआ। श्रमिक आन्दोलनों का जन्म हुआ। सांस्कृतिक रूपांतरण को गति मिली, तथा समाज में मनोवैज्ञानिक परिवर्तन आया। प्राकृतिक संसाधनों का अधिकतम दोहन एवं प्रयोग तथा प्रकृति पर अधिकार की योग्यता से मानव का आत्मवि"वास ऊँचा हुआ। औद्योगिक पूँजीवाद का जन्म हुआ। औद्योगिक एवं व्यापारिक निगमों का विस्तार हुआ। बदलते आर्थिक परिदृ"य ने गाँवों के कुटीर उद्योगों का पतन हुआ। शहरीकरण की प्रक्रिया तीव्र हो गयी। जनसंख्या वृद्धि को संभव बनाया, तीन वर्गों का उदय हुआ। पूँजीवादी वर्ग, मध्यम वर्ग तथा श्रमिक वर्ग।

औद्योगिक क्रांति के कारण पर्यावरण का जिस तेजी से विघटन हुआ उसकी चिंता सर्वप्रथम 1972 के स्टाक होम सम्मेलन में प्रकट हुई। पर्यावरण से जुड़ा हुआ विज्ञान परिस्थितिकी है। इसके अन्तर्गत पर्यावरण प्रदूषण तथा जैव विविधता पर

पर्याप्त लेखन हुआ जिससे जन सामान्य में पर्यावरण एवं प्रकृति के प्रति जागरूकता उत्पन्न हुई। प्रसाद की कामायनी पर विज्ञान का प्रभाव दिखाई देता है। कामायनी का मूल्यांकन विज्ञान और पर्यावरणीय परिप्रेक्ष में किया गया है। पंत के यहाँ भी विज्ञान–द"ान की आधुनिक प्रगति दिखाई देती है। मुक्तिबोध की रचनाओं में आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टि का अधिक शुद्ध रूप मिलता है जो परमाणु की संरचना के प्रति सजग होते हुए भी उसे सर्जनात्मक रूप में भावाभिव्यक्ति का माध्यम बनाते है। धर्मवीर भारतीय ने अंधायुग में जो ब्रह्मास्त्र का प्रभाव मानव जाति पर दिखाया है वह प्रत्यक्षतः आणविक बम का दुषित प्रभाव है जो पूरे पर्यावरण के असंतुलित कर भावी पीढ़ी को विकलांग बौना और कुंठा ग्रस्त बना देता है। विज्ञान का प्रभाव साहित्य पर इस प्रकार पड़ा की आज समकालीन दौर में पूरा साहित्य विज्ञानमय हो गया है। पूरा साहित्य विज्ञान की प्रस्थापनाओं तथा इसके खोजने से उत्पन्न दुष्परिणाओं को झेल रहा है, जो हमारे पर्यावरण को आगो"ा में लेने का प्रयास कर रहा है।

वीरेन्द्र जैन को मानवीय सम्बन्धों में भी हाइड्रोजन बम के महाना"ा की गंध तथा भभकते बारूद की एक लपट आती है तो बुद्धसेन नीहार असंतुलित होते ब्राह्माण्ड को लेकर चिंतित है। सुन्दर लाल कथूरिया मानते है मानव जीवन यांत्रिक और विज्ञान द्वारा संचालित होकर म"ाीन का पूँजी बन गया है। तो मुक्तिबोध परमाणु शक्ति के बढ़ते प्रयोग की ओर संकेत करते है। श्याम पटल पण्डित न्यूटन के क्रिया–प्रतिक्रिया की बात करते है तो भारत भूषण अग्रवाल व्यक्ति को चाँद पर पहुँचने के लिए प्रोत्साहित करते है। लीलाधर जगूड़ी वैज्ञानिक उपलब्धियों की उपयोगिता की ओर संकेत है। प्रका"ा दीक्षित अणु और परमाणु के विघण्डन तथा मुक्त ऊर्जा की उपयोगिता तथा विना"ाकारी दोनों रूपो की ओर संकेत करते है। धर्मवीर भारती परमाणु तत्वों को ब्रह्मास्त्र मानते हुए उसके दुष्परिणामों की ओर इ"ाारा किया है। मरूधर मृदुल ने परमाणु शक्ति के विना"ाकारी रूप की चर्चा करते है। गोपाल चतुर्वेदी कम्प्यूटर की आधुनिकतम तकनीकी की वैज्ञानिक उपलब्धि को व्यक्त करते है। मदन वात्स्यायन वैज्ञानिक आविष्कारों के दुष्परिणामों की ओर

संकेत करते है, तो राम कुमार कुंभज मनुष्य को ही मिसाईल के रूप में देखते है। डॉ0 देवराज वैज्ञानिक प्रगति तथा औद्योगिक विकास की अति"ायता से उत्पन्न संकट की बात करते है। कवि विमुक्तानंद औद्योगिक विकास के दुष्परिणाम, गोपाल दास नीरंज लूप्त होती सभ्यताओं की ओर, कवि कुमार चन्द्रÐास भोपाल गैस त्रासदी की दुःखद घटना तथा हीरो"िमा और नागा"ाकी पर अणु बम के दुष्प्रभाव को, डॉ0 रामदास नागर ने मनुष्य के सर्वना"ा रूपी ज्ञान, गिरिजा कुमार माथुर इलेक्ट्रानिक सभ्यता की ओर संकेत किया है।

पाँचवा अध्याय – समकालीन हिन्दी कविता में पर्यावरण चिंतन में – पृथ्वी सभी प्राणियों की माता है। यह रसवती, गंधवती है। वह जीवनदात्री के साथ–साथ पालन–पोषण करने वाली है जो माँ भी है। साक्षात ई"वर है, पूज्या है, आराध्या है। ग्लोबल वार्मिग के कारण धरती का तापमान बढ़ता जा रहा है। वर्षा कम और अनियमित होती जा रही है। सूखे के चपेट में वि"ाल भू–भाग आते जा रहे है। जल स्रोत सूख रहे है। प"ाु–पक्षी भूख–प्यास से मर रहे है। रेगिस्तानों का विस्तार हो रहा है। प्राणियों के प्राकृतिक आवास लूप्त होते जा रहे है। मनुष्य धरती को इस कदर बर्बाद कर रहा है कि आने वाले समय में समस्त पृथ्वी प्रभावित होगी। कवि नागार्जुन धरती माँ की दुर्द"ाा, मनुष्य का उसके साथ दुर्व्यवहार, मानव का अंधाधुंध भौतिक विकास जो पृथ्वी पर प्रलय का पर्याय है जिसे महाना"ा का मसीहा कहा जाता है की ओर ई"ाारा करते है। कवि शलभ श्री राम ने पृथ्वी की दैवीय द"ाा, मनुष्य के कुकृत्य से उत्पन्न भयानक दुष्परिणाम, मनुष्य का प्रकृति पर अत्यचार व शोषण, पृथ्वी का क्षय, की ओर संकेत करते है। नरे"ा सक्सेना ने पृथ्वी के भौगोलिक परिदृ"य के माध्यम से उसका मानवीकरण, उस पर निवास करने वाले पेड़–पौधे, पर्वत, शहर, नदी, गाँव, टीले आदि पृथ्वी के गर्भ में छिपे रहस्यों, खनिज पदार्थों तथा बहुमूल्य खदानों की चर्चा करते है। वेद प्रका"ा अमिताभ – धरती के द्वारा मिली सौगातों, एहसानों, मनुष्य के दुखःदर्द को समेटती है तथा उसे अथाह ह्रदय वाली मानव की इच्छाओं की पूर्ति करने वाली बताया है। राजेन्द्र मिश्र पृथ्वी के अंदर उत्पन्न हलचलों को सुनते हैं जिसमें कराह, पीड़ा, वेदना, उसकी तकलीफें

तथा उसका दर्द, मनुष्य का प्रकृति के साथ बिगड़ता व्यवहार, भूकम्प जो उसकी आत्मा को कम्पित करने वाला, मनुष्य का कुकृत्य और प्राकृतिक आपदाएँ की ओर संकेत करते है। तो सावित्री डागा ने विना"ा के नित नये रूप, प्राकृतिक संपदाओं का अंधाधुंध दोहन की ओर ध्यानाकर्षित करती है।

पर्वत भी एक बहुमूल्य सम्पदा है। प्रयाग शुक्ल ने पहाड़ों की खत्म होती स्वाभाविकता, पहाड़ों की कराह, बड़ी–बड़ी मल्टीमिडिया कम्पनियों की स्थापना, वातानुकुलित वातावरण, मनुष्य की स्वार्थ वृत्ति, पूँजीवादी संस्कृति में व्यापारी वर्ग का जन्म, तमाम प्राकृतिक वस्तुओं का शोषण की ओर इ"ाारा किये है।

भारतीय संस्कृति अरण्यों की संस्कृति रही है। जंगलो का सफाया प"ाुओं का ि"ाकार, पेट्रोलियम पदार्थों का अंधाधुंध प्रयोग चिमनियों से निकलने वाले धुँए, ग्लोबल वार्मिग, ग्रीन हाउस प्रभाव, मानवीय दु"िचंता मनुष्यता का लोप, क्रूर मानव भविष्य की ओर देखता हुआ, तड़पता वर्तमान, जंगली जानवरों पर मानव द्वारा हुए अत्याचार उदासी में डूबा हुआ जंगल इन सभी का कारण मनुष्य ही है। जो अपनी मानवता भूल गया है। कवि भवानी प्रसाद मिश्र को जंगलों का ऊँधना, ठाकुर प्रसाद सिंह को, मैदान में परिवर्तित जंगल, लीलाधर जगूड़ी को सभ्य बनने का दिखावा कर रहा मानव, सुन्दर चंद ठाकुर को जंगल का स्मृतियों में बचना, दिखाई देता है तो संजय चतुर्वेदी को मनुष्य की स्वार्थी प्रवृत्ति दिखाई देती है। वि"वनाथ प्रसाद तिवारी को पानी में बहने वाली समावे"ाी संस्कृति, सूखते तालाब में गूँजता सन्नाटा पानी के अभाव में फटी हुई भयावह दरारें दिखाई देती है, तो प्रभाकर श्रोत्रिय को पानी का पृथ्वी पर अभाव, लीलाधर मंडलोई को बोतल बंद पानी पर पूँजीवादियों का कब्जा दिखाई देता है।

प्राचीन काल से हमारा दे"ा नदियों का दे"ा रहा है। सहस्रों छोटी–बड़ी नदियाँ हमारे वि"ााल दे"ा को सिंचित करती है। इसलिए नदियों को हमारी संस्कृति में मातृरूपा स्वरूप माना गया है। किन्तु आज दुर्भाग्यव"ा औद्योगीकरण तथा शहरीकरण के कारण यूरोप तथा अमेरिका की नदियों की तरह भारत की नदियाँ भी

प्रदूषित हो गई है। समकालीन कवियों ने यह चिंता व्यक्त की है। चम्पा वैद ने नदी को माँ के रूप में जो अतीत और वर्तमान की आहुति देकर भविष्य को जिन्दा रखने वाली बताया है। नदियों के सूख जाने की पीड़ा मंगले”ा डबराल को सुनाई देती है। नरे”ा सक्सेना को नदियों के जल में सिर्फ कालिख और तेल दिखाई देता है। जिसमें जलीय जीवों का दम घुट रहा है। ज्ञानेन्द्रपति जिसे कंठ की प्यास बुझाने से बढ़कर अमरित बूँद समझते थे वह चंगे को बीमार करने वाली और बीमार के लिए मोक्षदा हो गयी है। हरजेन्द्र चौधरी, सरोवर, सेतु लूप्त होने से दुखी है। जिस पर महानगरीय विकास का प्रभाव उसके कारणों में शामिल है। अरूण कमल को इक्कीसवीं सदी में हर नदी का घाट श्यम”ाान और हर बगीचा कब्रिस्तान बनता दिखाई दे रहा है। त्रिलोचन नदी को कामधेनु की संज्ञा देते है। देवी प्रसाद मिश्र को नदी रेत में डूबी दिखाई देती है। शम”ोर को नदियों में तड़पती हुई लहर दिखाई देती है। तो अजित कुमार को भी नदी, थूक–नाक, मल–मूत्र, कचरे–छिलके से भरी दिखाई देती है।

पेड़ मनुष्य जीवन के लिए सहयोगी रहा है किन्तु मानव इसे लगातार काट रहा है जिसके कारण पर्यावरण में असंतुलन दिखाई देता है। लीलाधर मंडलोई को मानव के लिए वृक्षों का योगदान दिखाई देता है तो हरि”चन्द्र पाण्डेय पेड़ न काटने के पक्षधर है। ओमप्रका”ा बाल्मीकि मानव की स्वार्थी प्रवृत्तियों की ओर इ”ाारा करते है तो पंकज सिंह प्रदूषित हवाओं और लालसाओं का जहर समेटने वाला बताया है। नरे”ा सक्सेना वृक्ष को अंतिम समय से जोड़ते हैं तो बलदेव बं”ाी पेड़ को पैदा होने से लेकर मरने तक, जिस्म के जलने तक से जोड़ते है।

छठा अध्याय – समकालीन हिन्दी कविता में पर्यावरण संरक्षण की प्रतिबद्धता है। इसमें पर्यावरण के प्रति मानव की प्रतिबद्धता को स्पष्ट किया गया है। बसंत, ग्रीष्म, वर्षा आदि ऋतुओं के महत्व को दर्शाया गया है। साथ ही पर्यावरण संरक्षण में आदिवासियों की भूमिका बताते हुए, उनकी अस्मिता, पर्यावरण से उनका अनुराग, पर्यावरण और आदिवासियों को नष्ट करने वाले ‘ाडयंत्रकारी देशी दलालों, उजड़ते जंगल, विलुप्त होते तमाम पर्यावरण घटकों की ओर संकेत किया गया है। पर्यावरण

संरक्षण में स्त्री की भूमिका भी महत्वपूर्ण है। इसके साथ–साथ समकालीन कवि हरजेन्द्र चौधरी गिद्ध के लुप्त होने, उदय प्रकाश प्राकृतिक जीवों, वनस्पतियों को बचाने, त्रिलोचन खत्म होते हिरण, धूमिल कुत्ते के महत्व को, कैलाश वाजपेयी गाय के महत्व को, ज्ञानेन्द्रपति लुप्त होते मेढ़क, कछुआ, डायनासोर तथा मदन कश्यप हाथी के महत्व को दर्शाते हैं।

सातवां अध्याय – समाकलीन कविता का भाषा–ि"ाल्प : पर्यावरण चिंतन के संदर्भ में – भाषा और काव्य भाषा, समकालीन कवियों की काव्य सम्बन्धी अवधारणा, समकालीन कवियों की काव्य भाषा, समकालीन कवियों की काव्य भाषा और शब्द विधान जिसमें दे"ाी शब्द, क्रियाएँ, शब्द–युग्म तथा विदे"ाी शब्दों को स्पष्ट किया गया है। साथ ही समकालीन कवियों की काव्य भाषा और बिम्ब विधान तथा प्रतीक–योजना को भी अभिव्यक्त किया गया है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1- vk/kkj x:UFk
2- lgk;d x:UFk
3- i=&if=dk,¡
4- lekpkj&i=

vk/kkj&x:UFk

Ø0 l0	y[kd@yf[kdk	iLrd dk uke	idk'kd	o"k
1	राजेन्द्र मिश्र	‘तुम अपने’	साहित्य भारतीय प्रका”ान के–71 कृष्ण नगर दिल्ली–110031	2002
2	नरे”ा सक्सेना	‘समुद्र पर हो रही है बारि”ा’	राज कमल प्रका”ान प्रा0 लि0 1–बी0 नेताजी सुभाष मार्ग दरिया गंज, नई दिल्ली–110002	2001
3	प्रो0 श्री चन्द्र जैन	‘मेरी धरती मैया’	आगरा यूनिवर्सिटी बुक डिपो कालेज रोड, आगरा	1957
4	विजय कुमार	‘चाहे जिस शक्ल में’	राधाकृष्ण प्रका”ान प्रा0 लि0 2/3 अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली–110002	1995
5	सुधीर रंजन सिंह	‘और कुछ नही तो’	आधार प्रका”ान 372/सेक्टर 17, पंचकूला, 134109	1996
6	कुमार विकल	‘निरूपमा दत्त मैं बहुत उदास हूँ’	आधार प्रका”ान 372/से0 17, पंचकूला–134109	1993
7	प्रभात त्रिपाठी	‘सड़क पर चुपचाप’	परम्परा पब्लिके”ान सी–4 ईस्ट ज्योतिनगर, दुर्गापूरी चौक शाहदरा, दिल्ली–110093	2002

Ø0 l0	y[kd@yf[kdk	iLrd dk uke	idk'kd	o"k
8	कुमार अंबुज	'कीवाड़'	राधाकृष्ण प्रका”ान प्रा0 लि0 7/31 अंसारी रोड दरियागंज नई दिल्ली–1000002	1996
9	डा0 पुष्पिता	'अक्षत'	राधाकृष्ण प्रका”ान प्रा0 लि0 जी0–17 जगतपुरी दिल्ली–110051	2002
10	प्रयाग शुक्ल	'अधुरी चींजे तमाम'	राजकमल प्रका”ान प्रा0 लि0 8–नेताजी सुभाष मार्ग नई दिल्ली–110002	1987
11	रमे”ा रंजक	'हरापन नहीं टूटेगा'	अक्षर प्रका”ान प्रा0 लि0 2/36 अंसारी रोड नई दिल्ली–110006	1974
12	मदन क”यप	'लेकिन उदास है पृथ्वी'	आधार प्रका”ान 372/से0 17, पंचकूल, हरियाणा–134109	1992
13	सुन्दर चन्द ठाकुर	'किसी रंग की छाया'	राधाकृष्ण प्रका”ान प्रा0 लि0 जी0–17 जगतपुरी, दिल्ली–11005	
14	वि”वनाथ प्रसाद तिवारी	'चीजों को देखकर'	वि”वविद्यालय प्रका”ान वाराणसी	1970
15	हरजेन्द्र चौधरी	'जैसे चाँद पर से दिखती धरती'	राधाकृष्ण प्रका”ान प्रा0 लि0 जी0–17 जगतपुरी दिल्ली	2002
16	अरूण कमल	'सबूत'	वाणी प्रका”ान नई दिल्ली–110005	1989
17	केदारनाथ सिंह	'उत्तर कबीर और अन्य कविताएँ'	राजकमल प्रका”ान प्रा0 लि0 1–बी0 नेताजी सुभाष मार्ग नई दिल्ली–110002	1995

Ø0 l0	ys[kd@yf[kdk	iLrd dk uke	i:dk'kd	o"k
18	संजय चतुर्वेदी	'प्रका”ा वर्ष'	आधार प्रका”ान 372/से0 17, पंचकूला 134109 हरियाणा	1993
19	मंगले”ा डबराल	'पहाड़ पर लालटेन'	राधाकृष्ण प्रका”ान प्रा0 लि0 2/38 अंसारी मार्ग, दरियागंज नई दिल्ली–110002	1981
20	उदय प्रका”ा	'रात में हारमोनियम'	वाणी प्रका”ान 21–ए0, दरियागंज नई दिल्ली	1998
21	चम्पा वैद	'अब सब कुछ'	वैचारिकी संकलन बी0–65 मानस विहार, मयूर बिहार–1, दिल्ली–1100091	1993
22	पंकज चतुर्वेदी	'एक सम्पूर्णता के लिए'	आधार प्रका”ान प्रा0लि0 एस0सी0एफ0 267 सेक्टर–16 पंचकूला–134113	1998
23	सविता सिंह	'अपने जैसा जीवन'	राधाकृष्ण प्रका”ान प्रा0लि0 जी0–17 जगतपूरी, दिल्ली–110051	2001
24	ओमप्रका”ा बाल्मीकि	'बस्स बहुत हो चुका'	वाणी प्रका”ान 21–ए0 दरियागंज–110002	1997
25	वीरेन डँगवाल	'दुष्चक्र में स्रष्टा'	राजकमल प्रका”ान 1–बी0 नेताजी सुबाष मार्ग नई दिल्ली–110002	2002
26	ज्ञानेन्द्रपति	'गंगातट'	राधाकृष्ण प्रका”ान, दिल्ली	1999
27	ज्ञानेन्द्रपति	'सं”ायात्मा'	राधाकृष्ण प्रका”ान, दिल्ली	2004
28	राजे”ा जो”ाी	'एक दिन बोलेंगे पेड़'	सभावना प्रका”ान	1980
29	सुन्दर लाल बहुगुणा	'धरती की पुकार'	राधाकृष्ण प्रका”ान, नई दिल्ली	1996

Ø0l0	ys[kd@yf[kdk	iqLrd dk uke	izdk'kd	o"kZ
30	बोधिसत्व	'हम जो नदी के संगम है'	राधाकृष्ण प्रका”ान	
31	सविता सिंह	'नदी थी और रात थी'	राधाकृष्ण प्रका”ान	
32	लीलाधर जगूड़ी	'बची हुई पृथ्वी'	राजकमल प्रका”ान नई दिल्ली	
33	चन्द्रकांत देवताले	'भूखण्ड तप रहा है'	वाणी प्रका”ान दरियागंज, नई दिल्ली	
34	बलदेव वं”ाी	'वाकगंगा'	वाणी प्रका”ान दरियागंज, नई दिल्ली	
35	धर्मवीर भारती	'अंधायुग'	किताब महल प्रका”ान इलाहाबाद	
36	डा0 बुद्धसेन नीहार	'ब्राह्माण्ड का संगीत'	मीरा प्रका”ान अलीगढ	1977
37	गिरिजा कुमार माथुर	'कल्पांतर'	ने”ानल पब्लि”ाींग हाउस, नई दिल्ली	1983
38	नरे”ा मेहता	'मेरा समर्पित एकांत'	ने”ानल पब्लि”ाींग हाउस, नई दिल्ली	
39	निर्मला पुत्तुल	'नगाड़े की तरह बजते हैं शब्द'	भारतीय ज्ञानपीठ हाउस दिल्ली	2002
40	डॉ0 रमा द्विवेदी	'रेत का समन्दर	हिन्दी युग्म प्रकाशन–1 जिया सराय हौज खास, नई दिल्ली–110016	2010
41	रंजना जायसवाल	'जिंदगी के कागज पर'	शिल्पायन प्रकाशन – शाहदरा, दिल्ली–110032	2009
42	कु0 रमा सिंह	'समुद्रफेन'	उदयन प्रकाशन सिंहलाज, हसनगंज, लखनऊ	1957
43	रेवती रमण शर्मा	'एक दुनिया यह भी'	शिल्पायन प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली–110032	2011
44	साधना त्यागी	'अंतहीन यादें'	एस0एस0 पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीबूटर्स, दिल्ली	2009

Ø0 l0	y[kd@yf[kdk	iqLrd dk uke	izdk'kd	o"kZ
45	रमणिका गुप्ता	‘प्रकृति युद्धरत है’	नवलेखन प्रकाशन मेन रोड, हजारी बाग, बिहार	1988
46	रमणिका गुप्ता	‘आदिम से आदमी तक’	शुभम प्रकाशन शाहदरा, दिल्ली	1997
47	सुशीला टाक भौरे	‘यह तुम भी जानो तुमने उसे कब पहचाना’	स्वराज प्रकाशन, अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली–110002	2013

lgk;d&xzUFk

Ø0 l0	y[kd@yf[kdk	iqLrd dk uke	izdk'kd	o"kZ
1	डा0 मालती तिवारी	‘समकालीन कविता’	वि”वविद्यालय प्रका”ान वाराणसी	
2	डा0 जगदी”ा नारायण चतुर्वेदी	‘समकालीन कविता पर एक बहस’	चित्रलेखा प्रका”ान इलाहाबाद	1986
3	डा0 परमानंद श्रीवास्तव	‘समकालीन कविता का यथार्थ’	हरियाणा साहित्य अकादमी	1988
4	डा0 वेद प्रका”ा अमिताभ	‘समकालीन कविता का परिदृ”य’	अनंग प्रका”ान दिल्ली	2000
5	अनुपम मिश्र	‘आज भी खरे हैं तालाब’	वाणी प्रका”ान	
6	प्रो0 श”ि मुदिराज	‘छायावाद का समाज”ाास्त्र’	परिमल प्रका”ान 17–एम0 आई0जी0 बाघम्बरी आवास योजना अल्लापुर इलाहाबाद	1988
7	डा0 पवन कुमार मिश्र	‘प्रयोगवादी काव्य’	मध्य प्रदे”ा हिन्दी ग्रन्थ अकादमी 97 मानवीय नगर, भोपाल	1977
8	डा0 रामधारी सिंह दिनकर	‘”ुद्ध कविता की खोज’	श्री केदार सिंह उदयाचल राजेन्द्र नगर पटना	1966
9	डा0 हरदयाल	‘हिन्दी कविता का समकालीन’	आलेख प्रका”ान शाहदरा परिदृ”य दिल्ली	1998

Ø0 l0	ys[kd@yf[kdk	iLrd dk uke	izdk'kd	o"kZ
10	डेविड आर्नोल्ड अनु0 शैलेन्द्र	'औपनिवे”िाक भारत में विज्ञान प्रौद्योगिकी और आयुर्विज्ञान'	वाणी प्रका”ान, 21–ए0 दरियागंज, नयी दिल्ली	2005
11	स0 मानिक बच्छावत	'कविता इस समय'	आनंद प्रका”ान 176/178 रवीन्द्र सरणी कोलकाता–700007	2006
12	स0 वि”वनाथ प्रसाद तिवारी	'आठवें द”ाक की हिन्दी कविता'	कीर्ति प्रका”ान गोरखपुर	1982
13	डा0 त्रिलोचन पाण्डेय	'लोक साहित्य का अध्ययन'	लोकभारती प्रका”ान 15–ए0 महात्मा गांधी मार्ग इलाहाबाद	1978
14	श्री प्रका”ा शुक्ल	'साठोत्तरी हिन्दी कविता में लोक सौन्दर्य'	लोकभारती प्रका”ान 15–ए0 महात्मा गांधी रोड इलाहाबाद	
15	गंभदीप सिंह	'पर्यावरण प्रौद्योगिकी'	हिन्दी बुक सेंटर नई दिल्ली	
16	डा0 प्रभा कुमारी	'जनसंख्या विस्फोट और पर्यावरण प्रदूषण'	हिन्दी बुक सेंटर नई दिल्ली	
17	डा0 धनंजय वर्मा	'पर्यावरण चेतना'	मध्य प्रदे”ा हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल	
18	विलास चंदने	'प्रकृति और मानव'	हिन्दी बुक सेंटर नई दिल्ली	
19	भानचंद खंडेला	'पर्यावरण संरक्षण एवं सामाजिक दायित्व'	हिन्दी बुक सेंटर नई दिल्ली	
20	डा0 एम0 के0 ए0 सिद्दिकी	'भारत के आदिवासी'	भारतीय मानव–विज्ञान सर्वेक्षण भारत सरकार, कलकत्ता	1984
21	डा0 डी0 एन0 तिवारी	'वन आदिवासी एवं पर्यावरण'	शांति प्रका”ान इलाहाबाद	1989

Ø0 l0	y[kd@yf[kdk	iLrd dk uke	idk'kd	o"k
22	रमणिका गुप्ता	'आदिवासी स्वर और नई शताब्दी'	वाणी प्रकाशन, 21–ए0 दरियागंज, नई दिल्ली–110002	2002
23	विश्व रंजन	'कविता के पक्ष में'	शिल्पायन प्रकाशन, शाहदरा दिल्ली–110032	2011

i=&if=dk,¡

Ø0 l0	lEiknd	if=dk dk uke	vad
1	पर्यावरण एवं वन मंत्रालय की त्रैमासिक पत्रिका नई दिल्ली	'पर्यावरण'	वर्ष–15, अंक–4 सितम्बर–2003
2	डा0 राम निवास यादव	'पर्यावरण संजीवनी'	जून 2008
3	निदे”ाक अध्यक्ष कार्यान्वयन समिति	'संवाद पत्रिका'	छठा अंक अगस्त 15–2006
4	महेन्द्र जैन	'प्रतियोगिता दर्पण'	जनवरी 2010
5	पंकज विष्ट	'समयांतर'	दिसम्बर 2009
6	बाबू लाल शर्मा	'वैचारिकी' (त्रैमासिक)	
7	एकांत श्रीवास्तव कुसुम खेमानी	'वागर्थ–139'	फरवरी 2007
8	अरूण कमल	'आलोचना'	अंक–34, जुलाई–सितम्बर
9	सदानंद साही	'साखी'	अंक–17, जुलाई–सितम्बर
10	वि”वनाथ प्रसाद तिवारी	'दस्तावेज'	अंक, जनवरी–मार्च
11	विजेन्द्र, रमाकांत शर्मा	'कृतिओर'	अंक–51
12	कमला प्रसाद	'प्रगति”ील वंसुधा'	अंक–78
13	डा0 विजय नारायण तिवारी	'ज्ञान–विज्ञान' (मासिक)	अंक–23 नवम्बर–2010
14	सुधीश पचौरी	'वाक' (नये विमर्शों का त्रैमासिक)	अंक–20

प्रकाशित शोध लेख

1. ओम प्रकाश, ज्ञानेन्द्रपति का काव्य संसार, *शोध दृष्टि*, Vol. 6, No. 6: 205-208, July-Sep. 2015.

2. ओम प्रकाश, समकालीन हिन्दी कविता और पर्यावरण चेतना, *अनुकृति*, वर्ष–6, अंक–6, 279–282, जुलाई–सितम्बर – 2016

3. ओम प्रकाश, पर्यावरण के मुख्य घटक नदी और कविता में उनकी अभिव्यक्ति, Interdisplinary Journal of Contemporary Research, Vol. 3, No.-4, Year-3: 135-140, August-September - 2016.